कर्म कैसे करें?

(प्रवचन संग्रह)

मुनि श्री क्षमासागर जी

मैत्री समूह

ISBN : 81-7628-029-1

कर्म कैसे करें?

© मैत्री समूह

संस्करण :
प्रथम, अक्टूबर 2008, 1100 प्रतियाँ
द्वितीय, जनवरी 2009, 2100 प्रतियाँ

मूल्य : 60/- रुपये

प्राप्ति स्थान :

1. **गिफ्ट गारमेंट्स**
   माधोगंज, विदिशा (म.प्र.)
   फोन : (07592) 232205, 237356

2. **श्री पी.एल. बैनाड़ा**
   1/205/IV, प्रोफेसर कॉलोनी,
   हरि पर्वत, आगरा (उ.प्र.)
   फोन : (0562) 2151127, 098370-25087

3. **श्री राज प्रमोद शाह**
   2600, नागोरियों का चौक, घी वालों का रास्ता
   जौहरी बाजार, जयपुर (राज.)
   फोन : (0141) 2566098, 094147-95342

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स (प्रा.) लि.
एम.आई. रोड, जयपुर

अनुक्रमणिका

कर्म कैसे करें ?	भाग–1	--	1
कर्म कैसे करें ?	भाग–2	--	12
कर्म कैसे करें ?	भाग–3	--	23
कर्म कैसे करें ?	भाग–4	--	31
कर्म कैसे करें ?	भाग–5	--	42
कर्म कैसे करें ?	भाग–6	--	55
कर्म कैसे करें ?	भाग–7	--	63
कर्म कैसे करें ?	भाग–8	--	76
कर्म कैसे करें ?	भाग–9	--	87
कर्म कैसे करें ?	भाग–10	--	97
कर्म कैसे करें ?	भाग–11	--	105
कर्म कैसे करें ?	भाग–12	--	116
कर्म कैसे करें ?	भाग–13	--	126
कर्म कैसे करें ?	भाग–14	--	135
कर्म कैसे करें ?	भाग–15	--	146
कर्म कैसे करें ?	भाग–16	--	158
कर्म कैसे करें ?	भाग–17	--	171
कर्म कैसे करें ?	भाग–18	--	181

प्राक्कथन

कर्म कैसे करें?

संसारी जीव अनादिकाल से कर्म संयुक्त दशा में रागी-द्वेषी होकर अपने स्वभाव से च्युत होकर संसार-परिभ्रमण कर रहा है। इस परिभ्रमण का मुख्य कारण अज्ञानतावश कर्म-आस्रव और कर्म-बंध की प्रक्रिया है जिसे हम निरंतर करते रहते हैं। कर्म बंध की क्रिया अत्यन्त जटिल है और इसे पूर्ण रूप से जान पाना अत्यन्त कठिन है, लेकिन यदि हमें केवल इतना भी ज्ञान हो जाए कि किन कार्यों से हम अशुभ कर्मों का बंध कर रहे हैं तो सम्भव है हम अपने पुरुषार्थ को सही दिशा देकर शुभ कर्मों के बंध का प्रयास कर सकते हैं। जयपुरवासियों के पुण्योदय से सन् 2002 में मुनि श्री क्षमासागरजी का चतुर्मास वहाँ पर हुआ था और लगभग 7-8 माह तक प्रतिदिन प्रवचन आदि का लाभ उन्हें सहज ही उपलब्ध हो गया। इस अवसर पर मुनिश्री ने 18 प्रवचनों से जन-साधारण को कर्म सिद्धान्त के जैनदर्शन में प्रतिपादित विषयों से अवगत कराने हेतु अत्यन्त सरल भाषा में उन परिणामों को स्पष्ट किया है जिनके कारण हम निरन्तर अशुभ कर्मों का बन्ध करते रहते हैं। प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में कर्म सिद्धान्त पर विचार किया गया है, लेकिन जैन आचार्यों ने कर्म बंध और कर्म फल प्रक्रिया का जैसा सूक्ष्म वर्णन किया है, अन्यत्र प्राप्त नहीं है।

प्रवचन विषय

मुनिश्री ने अपने प्रवचनों को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया है - पहले छह प्रवचनों में संसार में दृश्यमान विविधता का कारण अपने स्वयं के कार्य हैं जो अज्ञानता और आसक्ति से किए जा रहे हैं, न कि ईश्वर के द्वारा सम्पादित और संचालित हैं, जैसा कि जैनेतर सिद्धान्तों की मान्यता है, पर प्रकाश डाला है। उन्होंने ईश्वर की कल्पना का तर्कपूर्ण खण्डन किया है। इस दृश्य जगत में सभी चीजें अपने स्वभाव व गुणधर्मों के अनुसार परिणमन करती हैं। हम जैसा करते हैं, वैसा हमें फल प्राप्त होता है। इस संसार परिभ्रमण का कारण मेरी अपनी अज्ञानता और आसक्ति है। जो भी प्रतिकूल परिस्थितियाँ

मुझे प्राप्त हुई हैं उनके लिए मैं स्वयं ही उत्तरदायी हूँ। कुछ कर्म हम करते हैं, कुछ कर्म हम भोगते हैं और कुछ कर्म हम नये बाँध लेते हैं। इस प्रकार यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यदि हम चाहें तो इस संसार परिभ्रमण की प्रक्रिया को अपनी सावधानी और अनासक्ति से क्रमशः कम करते-करते पूर्ण मुक्त हो सकते हैं।

कर्म हम अपने मन, वाणी और शरीर की क्रियाओं से निरन्तर करते रहते हैं, चाहे वह कर्म करने वाला हो, भोगने वाला हो या संचित होने वाला हो। कर्म बंध की प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन चीजों की भागीदारी है - आसक्ति या मोह, वर्तमान के पुरुषार्थ में गाफिलता या लापरवाही और हमारी अज्ञानता। आसक्ति या मोह पर मेरा वश नहीं है क्योंकि यह पुराने बँधे हुए कर्मों के फल का परिणाम है। लेकिन वर्तमान के पुरुषार्थ में सावधान होकर और कर्म बंध की प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त कर मैं कर्म फल भोगने और नये कर्म बंध होने की प्रक्रिया को निश्चित दिशा दे सकता हूँ। समीचीन ज्ञान प्राप्त कर मोह को घटाते हुए वीतरागता के प्रति अपनी रुझान बढ़ाकर मैं अशुभ कर्म बंध के स्थान पर शुभ कर्म बंध कर सकता हूँ।

जो कर्म मैंने पूर्व में बाँध लिए हैं, वे अपना फल तो अवश्य देंगे। लेकिन वे कर्म जैसे मैंने बाँधे हैं वैसे ही मुझे भोगना पड़ें या अपना मनचाहे फल दें, ऐसी मजबूरी नहीं है। इसलिए कर्म बंध की पूरी प्रक्रिया समझना आवश्यक है। मेरी अज्ञानता की वजह से मेरी पुरुषार्थहीनता बढ़ती है और उस कारण से मोह मुझ पर हाबी हो जाता है। ऐसे कर्म भी जो अपरिवर्तित फल देने वाले हैं उनमें भी मैं अपने पुरुषार्थ से परिवर्तन कर उनकी फल-शक्ति को कम या अधिक करने में समर्थ हूँ। कर्मोदय के समय यदि हम हर्ष-विषाद न कर संतोष और समता धारण करने का पुरुषार्थ कर सकें तो इन पूर्वोपार्जित कर्मों के फल को आसानी से भोगकर नवीन कर्मबंध की प्रक्रिया को नष्ट कर सकते हैं।

मुनिश्री ने कर्मों पर विजय प्राप्त करने के तीन उपाय बताये हैं -

1. बाह्य वातावरण से जितनी जल्दी हो सके, सामंजस्य स्थापित कर लेना,

2. शीघ्र प्रतिक्रिया न करें और यदि करना ही पड़े तो प्रतिक्रिया सकारात्मक और रचनात्मक ही करें, और

3. संसार के घात-प्रतिघात से बचने का प्रयत्न करें।

संसार के घात-प्रतिघात तो हमें सिर्फ अशुभ की ओर ही ले जाते हैं। मन को शुभ कार्यों में लगाये रखने पर हम अशुभ कार्यों से बच सकते हैं। धार्मिक क्रियाएँ करते समय हम संसार के प्रपंचों से बचे रहते हैं। शुभ कार्यों का फल हमेशा शुभ ही होता है, अशुभ

कार्यों का फल कभी शुभ नहीं हो सकता। शुभ क्रियाओं से हम अपने संचित कर्मों में निरन्तर परिवर्तन कर सकते हैं और अशुभ के दबाव को कम करने में सफल हो सकते हैं। घात-प्रतिघात से बचने की कुशलता इसी में है कि अगर कोई हमारे ऊपर घात करता है तो हम प्रतिघात न करें या कि स्वघात न करें। अपने प्राण ले लेना, जीवन को कष्ट में डालना, मन ही मन संक्लेषित होना - ये सब स्वघात हैं। प्रतिक्रिया सकारात्मक करना सरल है लेकिन घात होने पर प्रतिघात न करें, इसके लिए बहुत सजगता की आवश्यकता है। यदि हम इस प्रकार का अभ्यास कर सकें तो इस संसार परिभ्रमण से शीघ्र पार होने में सफल हो सकते हैं।

इस प्रकार इन छह प्रवचनों में मुनिश्री ने यह समझाने का प्रयास किया है कि हम कर्म प्रक्रिया को ठीक-ठीक समझ कर अपने वर्तमान के पुरुषार्थ द्वारा नवीन कर्म बंध को क्रमशः कम कर सकते हैं और पूर्व में संचित कर्मों में परिवर्तन कर उनकी फल-शक्ति को कम या ज्यादा करने में सफल हो सकते हैं।

जैन दर्शन के अनुसार कर्मों के मुख्य रूप से तीन भेद हैं - 1. द्रव्य कर्म, 2. भाव कर्म, और 3. नो कर्म। आत्म प्रदेशों के साथ बंध को प्राप्त पुद्‌गल कर्म वर्गणाओं के समूह को द्रव्य कर्म कहते हैं। द्रव्य कर्म बंध में कारणभूत संसारी जीव के परिणाम ही भाव कर्म हैं तथा शरीर, आहार, इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, भाषा, मन रूप पुद्‌गल परमाणु जो कर्म बंध में किंचित् कारण हैं, नो कर्म हैं। नो कर्म बिना, कर्म अपना फल देने में समर्थ नहीं हैं।

द्रव्य कर्म बंध के मुख्य रूप से चार भेद हैं - 1. प्रकृति बंध, 2. प्रदेश बंध 3. स्थिति बंध और 4. अनुभाग बंध।

प्रकृति बंध का अर्थ है कर्म का स्वभाव। संसार में विद्यमान प्रत्येक वस्तु या द्रव्य का स्वभाव भिन्न-भिन्न है। अतः वह उसकी प्रकृति कहलाती है। आत्मा के साथ बँधने वाले कर्मों की प्रकृति भी आठ प्रकार की है - 1. ज्ञानावरण, 2. दर्शनावरण, 3. वेदनीय, 4. मोहनीय, 5. आयु, 6. नाम, 7. गोत्र और 8. अन्तराय। मोहनीय कर्म सब कर्मों में बलवान है। इसके दो भेद हैं - दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। इसी प्रकार वेदनीय कर्म भी दो प्रकार का है - साता वेदनीय और असाता वेदनीय। इन आठों कर्मों के 148 उत्तर भेद हैं। आयु कर्म को छोड़कर शेष सातों कर्मों का बंध संसारी जीवों को निरन्तर होता रहता है। आयु कर्म का बंध तो निश्चित समयों पर एक निश्चित प्रक्रिया द्वारा ही होता है।

आचार्य उमास्वामी महाराज ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ तत्त्वार्थ सूत्र (अपर नाम मोक्षशास्त्र) के अध्याय छह में आठ कर्मों के आस्रव और बंध (दोनों क्रियायें एक समयावर्ती हैं) के कारणों को एक सूत्र में परिभाषित किया है। मुनिश्री ने इन्हीं सूत्रों को आधार बनाकर अपने अगले बारह प्रवचनों में सरल भाषा में दैनिक जीवन में घटित होने वाले उदाहरण देकर उन कारणों पर प्रकाश डाला है, जिनसे ये कर्मआस्रव/बंध को प्राप्त होते हैं।

1-2. ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के आस्रव/बंध के कारण

हमारे ज्ञान और दर्शन को आवरण करने वाले ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म हैं। इन कर्मों के आस्रव/बंध के कारणों के लिए तत्त्वार्थ सूत्र के अध्याय छह सूत्र 10 में कहा गया है - ''तत्प्रदोष निह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः।'' अर्थात् प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात - ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के आस्रव/बंध के कारण हैं। मुनिश्री ने इन कारणों की व्याख्या करते हुए बताया है कि प्रदोष का अर्थ है तत्त्व चर्चा के समय तत्त्वज्ञान और तत्त्वज्ञानी के प्रति भीतर ही भीतर ईर्षा का भाव होना और उसे नीचा दिखाने के भाव होना। जानते हुए भी ज्ञान की बातें दूसरे को न बताना या गुरु या शास्त्र जहाँ से ज्ञान प्राप्त किया है, उस ज्ञान को छिपाने के भाव होना निह्नव है। जानकारी होते हुए भी, दूसरा अधिक ज्ञान प्राप्त न कर ले, इस भाव से दूसरे को ज्ञान नहीं देना, मात्सर्य है। ज्ञान और ज्ञान-प्राप्ति में बाधक बनना अन्तराय है। दूसरे के द्वारा दी जा रही जानकारी का सम्मान न कर शरीर और वाणी से निषेध करना आसादना है। सही ज्ञान में दोष लगाना, उसे गलत साबित करना उपघात है। मुनिश्री ने अत्यन्त सरल भाषा में इन कारणों को रोजमर्रा में होने वाले उदाहरण देकर समझाया है कि यदि हमें ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के आस्रव/बंध से बचना है तो हम सावधान रहें और ऐसी क्रियाओं के भाव ही अपने मन में न आने दें। .

3.1. असाता वेदनीय के आस्रव/बंध के कारण

असाता वेदनीय कर्म के उदय में संसारी जीवों को दुःख के कारण उपस्थित होते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह में सूत्र 11 में असाता वेदनीय के आस्रव/बंध के कारण इस प्रकार कहे हैं - ''दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभय स्थानान्यसद्वेद्यस्य।'' अर्थात् स्वयं में, दूसरों में या दोनों में स्थित दुःख, शोक, ताप आक्रन्दन, वध और परिवेदन - असाता वेदनीय के आस्रव के कारण हैं। पीड़ा का अनुभव होना दुःख है। प्रिय या उपकारी वस्तु के वियोग में, उनके खोने या नष्ट होने से जो कष्ट या उदासी होती

है, उसे शोक कहते हैं। झूठे आरोपों से जो मानसिक व्यथा या खिन्नता होती है, उसे ताप कहा जाता है। विलाप करते हुए आँसुओं का आना आक्रन्दन है। प्राणों पर आघात से उत्पन्न पीड़ा को बध कहते हैं। प्रिय के वियोग में उनके गुणों का स्मरण करते हुए करुणाप्रद रुदन करना परिवेदन है। मुनिश्री ने अपनी सरल भाषा में बताया है कि पूर्व में हमने अपने या दूसरे को या दोनों को ऐसे कारण उपस्थित किए होंगे जिससे वर्तमान में असाता वेदनीय का उदय है और उनके फल में हमें दुःख का अनुभव हो रहा है। यदि भविष्य में हमें इस प्रकार के कष्टों से बचना है तो हम वर्तमान में अपने पुरुषार्थ से अपने लिए या दूसरों के लिए या दोनों के लिए ऐसे निमित्त पैदा न करें।

3.2. साता वेदनीय के आस्रव/बंध के कारण

संसारी जीवों को सुखों का अनुभव साता वेदनीय कर्मोदय के कारण होता है। तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह सूत्र 12 में इसके आस्रव/बंध के कारण इस प्रकार बताये गये हैं - ''भूत-व्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।'' अर्थात् प्राणीमात्र और व्रती व्यक्तियों पर विशेष रूप से अनुकम्पा के भाव होना, दान देना, सराग संयम के चारित्र क्रियाओं आदि के पालने का विशेष ध्यान रखना, क्षान्ति और शौच - ये साता वेदनीय के आस्रव/बंध के कारण हैं। दया से भीगकर दूसरे के दुःख को अपना ही दुःख मानने के भाव होने पर उन्हें दूर करने का उपाय करना अनुकम्पा है। प्राणी मात्र के प्रति और विशेष रूप से व्रती व्यक्तियों के प्रति अनुकम्पा होना साता वेदनीय के आस्रव/बंध के कारण हैं। दूसरे के अनुग्रह के लिए अपनी प्रिय वस्तु का विनम्रतापूर्वक त्याग करना दान है। संसार में विरक्त होकर संयमपूर्वक जीवन को नियंत्रित कर साधना करना सराग संयम है, ऐसे संयम के पालने में रागांश रहता है। इस संयम के पालने से भी साता वेदनीय का आस्रव/बंध होता है। समतापूर्वक क्रोध कषाय का शमन करने को क्षान्ति कहते हैं। लोभ कषाय के शमन के फलस्वरूप भावों में जो शुचिता आती है उसे शौच कहते हैं। ये सभी साता वेदनीय के आस्रव/बंध के कारण हैं। इनके अतिरिक्त भी अकाम निर्जरा, बाल-तप, अर्हंत पूजन में तत्परता, बाल-वृद्ध तपस्वी की वैयावृत्य आदि भी साता वेदनीय के आस्रव/बंध के कारण मुनिश्री ने बताये हैं। अपने प्रवचन में उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि यदि हम अगले जीवन में धर्म साधन के लिए समुचित वातावरण की प्राप्ति की आकांक्षा रखते हैं तो हमारा वर्तमान पुरुषार्थ इस प्रकार का हो कि हमें साता वेदनीय कर्म का ही आस्रव/बंध हो।

4.1. दर्शन मोहनीय कर्म के आस्रव/बंध के कारण

तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह सूत्र 13 में दर्शन मोहनीय के आस्रव/बंध के कारण इस प्रकार कहे गये हैं - ''केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।'' अर्थात् केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव का अवर्णवाद दर्शनमोहनीय के आस्रव/बंध के कारण है। जो केवलज्ञान से युक्त है, अठारह प्रकार के दोषों से रहित हैं, शरीर जिनका परमऔदारिक हो गया है, ऐसे केवली भगवान को कवलाहारी कहना उनका अवर्णवाद है। अर्थात् जो दोष उनमें नहीं है,उन्हें प्ररूपित करना। श्रुत अहिंसा का मार्ग प्रशस्त करता है, उनमें हिंसा को उचित बताना श्रुत का अवर्णवाद है। संघ से आशय ऋषि, मुनि, यति और अनगार साधुओं के समूह से है। संघ के साधुओं में ऐसे दोष लगाना जो उनमें नहीं हैं, संघ का अवर्णवाद है। अहिंसा धर्म ही परम धर्म है, उसे न मानकर हिंसा से भी धर्म होता है, ऐसा प्ररूपण करना धर्म का अवर्णवाद है। स्वर्ग के देवों का आहार अमृत है। इसके विपरीत ऐसा प्ररूपण करना कि वे तो मांस अेर सुरा का सेवन करते हैं, देव अवर्णवाद है। ये सभी कार्य दर्शनमोहनीय कर्म के आस्रव/बंध के कारण हैं। इसी कर्म के कारण हमारी दृष्टि में निर्मलता नहीं आ पाती है और हमें समीचीन श्रद्धान नहीं हो पाता है। अतः मुनिश्री ने अपने प्रवचन में इस प्रकार के कार्यों से बचने का उपदेश दिया है।

4.2. चारित्र मोहनीय कर्म के आस्रव/बंध के कारण

कषायें हमारे परिणामों को कलुषित करती हैं। जो कर्म बंध से बचना चाहते हैं उन्हें कषायों से बचना चाहिए। तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह के सूत्र 14 में चारित्र मोहनीय कर्म के आस्रव/बंध के कारण इस प्रकार कहे गए हैं - ''कषायोदयातीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य''। अर्थात् कषाय के उदय से होने वाले आत्मा के तीव्र परिणाम चारित्र मोहनीय कर्म के आस्रव/बंध के कारण हैं। कषाय का उदय हमारे पूर्व संचित कर्मोदय के कारण होता है, लेकिन उदय के समय हम अपने पुरुषार्थ द्वारा कषायों की तीव्रता को मंद कर सकते हैं, उनकी दशा और दिशा को बदल सकते हैं। कषाय चार प्रकार की होती हैं - क्रोध, मान, माया और लोभ। एक समय में एक ही प्रकार की कषाय का उदय रहता है, उस समय अन्य कषायें उसी रूप उदय में आती हैं। हम अपने पुरुषार्थ द्वारा इन कषायों को एक दूसरे में बदल सकते हैं और उनकी तीव्रता को मंद कर सकते हैं। सभी संसारी जीवों को दसवें गुणस्थान के अन्त समय तक अधिक या थोड़ा कषायों का उदय बना रहता है। इनसे हमारे आत्म-परिणाम प्रभावित होकर चारित्र को प्रभावित करते रहते हैं। अतः हमारा पुरुषार्थ ऐसा हो कि इन कषायों के उदय में हम अपने चारित्र में दोष न लगने दें।

5. आयु बंध के आस्रव/बंध के कारण

जैन दर्शन के अनुसार संसारी जीव निरन्तर चार गतियों में परिभ्रमण करता रहता है - नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव। मुनिश्री ने अपने चार प्रवचनों में उन कारणों की व्याख्या की है जिनसे जीव इन गतियों के आयु बंध का आस्रव करता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गति बंध तो जीव को शुभ या अशुभ परिणामों के कारण निरन्तर होता रहता है, लेकिन आयुबंध की एक निश्चित प्रक्रिया है और एक बार आयुबंध हो जाने पर जीव को उस गति में जाना ही पड़ता है। लेकिन जीव अपने शुभ या अशुभ परिणामों से अपनी बँधी हुई आयु में उच्च-नीच गोत्र, कम या अधिक स्थिति बंध कर सकता है।

नरक आयु के आस्रव/बंध के कारणों को तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह सूत्र 15 में इस प्रकार कहा है - ''बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।'' अर्थात् बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के भाव नरक आयु के आस्रव/बंध केकारण हैं। जीवों को दुःख पहुँचाने वाले सभी कार्य 'आरम्भ' कहे जाते हैं और चीजों की मूर्छा या उनके संग्रह की इच्छा करना परिग्रह है। ऐसे व्यापार जिनमें अधिक हिंसा होती हो, नरकायु के आस्रव के कारण हैं। अधिक धन संचय की आकांक्षा भी नरकायु के आस्रव का कारण है। नरकों में पाप की बहुलता है, माराथारी है। हम यहाँ पर भी अपने चारों ओर नरकों जैसा वातावरण निर्मित कर लेते हैं, ऐसे व्यापार करते हैं जिनमें हिंसा का बाहुल्य होता है। नरकायु के आस्रव के अन्य कारण हैं - पत्थर के समान कठोर क्रोध होना, दयाशून्य भाव होना, साधुजनों को आपस में लड़वाना आदि। मुनिश्री ने अपने प्रवचन में संतोष धारण कर नीति न्यायपूर्वक व्यापार आदि करने का उपदेश दिया है।

तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह सूत्र 16 में तिर्यंच आयु के आस्रव/बंध के बारे में कहा गया है कि ''माया तैर्यग्योनस्य।'' अर्थात् मायाचारी तिर्यंच आयु के आस्रव/बंध का कारण है। मायाचारी का अर्थ है दिखावा और झूठा प्रदर्शन, जो जैसा है वैसा न होकर कुछ और ही होना। यहाँ परिणामों की महत्ता है, हम वास्तविकता को स्वीकार नहीं कर पाते हैं, इसलिए मायाचारी का आश्रय लेते हैं, छल-कपट करते हैं, कुटिलता का भाव रखकर दूसरों को ठगते हैं। मुनिश्री ने कहा कि आज आजीविका के लिए हम धोखाधड़ी करने में जरा भी संकोच नहीं करते। इससे तिर्यंच आयु का बंध कर हम अगले भव में जीवन भर तिरस्कारित होते रहने का प्रबंध कर रहे हैं। मुनिश्री ने यह भी बताया कि बहुत अधिक आर्त परिणामों के साथ मरण होने से भी तिर्यंच आयु का बंध होता है। हमें इसलिए सावधानी की आवश्यकता है।

मनुष्य आयु के आस्रव/बंध के कारणों के लिये तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह में दो सूत्र 17 एवं 18 में कहा गया है कि "अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य।" एवं "स्वभाव मार्दवं च।" अर्थात् अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह का भाव और स्वभाव की मृदुता मनुष्य आयु के आस्रव/बंध के कारण हैं। मुनिश्री ने अपने प्रवचन में कहा कि मनुष्य पर्याय को पाने के लिए हमने पूर्व में अवश्य ही अल्प आरम्भ और परिग्रह के भाव रखे होंगे। लेकिन आज हम इसके विपरीत परिणाम कर लेते हैं। मृदुता के स्थान पर हमारे भावों में क्रोध का बाहुल्य है। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि मनुष्य आयु का बंध करना कठिन है। यदि हमें अगले जीवन में मनुष्य भव प्राप्त कर आत्म-कल्याण करने की आकांक्षा हो तो संतोषपूर्वक जीवनयापन करें और न्यायपूर्वक व्यापार करें, अन्यथा हमें तिर्यंच या नरक आयु का ही बंध होगा। हमें यह भी जान लेना चाहिए कि मनुष्य और तिर्यंच चारों आयु का बंध कर सकते हैं, लेकिन नारकी और देव केवल मनुष्य और तिर्यंच आयु का ही बंध कर सकते हैं।

देवायु के आस्रव/बंध के लिए तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह सूत्र 20 में जिन कारणों का उल्लेख है वे हैं - "सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य।" अर्थात् सराग संयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा और बाल-तप - ये देवायु के आस्रव/बंध के हेतु हैं। जहाँ रागांश हो वैसा प्रमत्त मुनि का संयम, संयमासंयम जो देशव्रती श्रावक पालते हैं, परवश होकर भूख-प्यास सहन करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, जमीन पर सोना आदि जो अकाम निर्जरा के कारण हैं तथा आत्म-ज्ञान से विमुख होकर पंचाग्नि आदि तप करना भी देवायु के आस्रव/बंध के कारण हैं। मुनिश्री ने अपने प्रवचन में बताया है कि संयमित और नियंत्रित जीवन दृष्टि की निर्मलता के साथ होना चाहिए, यश और ख्याति के लिए नहीं। पुण्य कार्य कर देवत्व प्राप्त करना कठिन नहीं है लेकिन महाव्रत धारण कर ध्यान के माध्यम से कर्मों की निर्जरा करना कठिन हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंनें तत्त्वार्थ सूत्र में अगले सूत्र 21 "सम्यक्त्वं च" की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा है कि सम्यग्दृष्टि जीव को एक मात्र देवायु का ही बंध होता है और यदि पहले से आयु बंध न हुआ हो तो केवल वैमानिक देवों में उत्पन्न होने का ही बंध होगा, नीचे के भवनत्रिक देवों में वह उत्पन्न नहीं होता है।

6. नामकर्म के आस्रव/बंध के कारण

हमारा शरीर, अंग और उपांग आदि हमें नामकर्म के फल से प्राप्त होते हैं। इस कर्म का विस्तार बहुत लम्बा है, इसके 93 उत्तर भेद हैं। हम प्रत्यक्ष में अनुभव करते हैं कि इस

संसार में प्रत्येक व्यक्ति के भिन्न-भिन्न प्रकार की शरीर संरचना, अंग, उपांग आदि पाये जाते हैं। इस विविधता का कारण प्रत्येक व्यक्ति के पृथक्-पृथक् नाम कर्म का उदय है। तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय 6 सूत्र 22 में कहा गया है कि "योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।" सूत्र 23 में कहा गया है कि "तद्विपरीतं शुभस्य" । अर्थात्-योग यानी मन, वचन, काय की क्रिया की वक्रता (यानी सोचना कुछ, करना कुछ और बोलना कुछ) और विसंवाद यानी विपरीत या मिथ्या आचरण करने के लिए दूसरों को प्रेरित करना, उन्हें मोक्षमार्ग से विपरीत मार्ग में लगाना आदि अशुभ नाम कर्म के आस्रव/बंध के कारण हैं। यहाँ यह भी समझाना आवश्यक है कि योग तो क्रिया है, उसमें कदाचित् वक्रता नहीं होती लेकिन क्रिया करते समय उपयोग में वक्रता होती है, उसी से अशुभ नाम-कर्म का आस्रव/बंध होता है। इन क्रियाओं के विपरीत आचरण और परिणामों से शुभ नाम कर्म का आस्रव/बंध होता है। अतः यदि हमें अच्छा शरीर आदि अगले भव में प्राप्त करने की आकांक्षा हो जिससे हम अपना आत्म-कल्याण ठीक प्रकार से कर सकें तो हमें उपयोग की वक्रता और विसंवाद से बचना चाहिए।

7. गोत्र कर्म के आस्रव/बंध के कारण

तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय 6 सूत्र 25 में कहा गया है - "परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य।" अर्थात् परनिन्दा, आत्म-प्रशंसा, सद्गुणों को ढकना और असद्गुणों का उद्भावन करना - यह नीच गोत्र के आस्रव के कारण है। सच्चे या झूठे दोषों को प्रकट करने की इच्छा ही निन्दा है। दूसरों की निन्दा ही परनिन्दा है। सच्चे या झूठे गुणों को प्रकट करने की प्रवृत्ति प्रशंसा कहलाती है। अपनी प्रशंसा आत्म-प्रशंसा है। दूसरों के अच्छे गुणों को ढकना या यह कहना कि उसमें कोई गुण नहीं है, सद्गुण आच्छादन है। अपने में कोई गुण न होने पर भी गुणवान प्रकट करना असद्गुण उद्भावन है। इन सबसे नीच गोत्र का आस्रव होता है। इसलिए मुनिश्री ने प्रवचन में कहा है कि यदि नीच गोत्र के आस्रव से अगले भव में बचना है तो इस प्रकार की प्रवृत्ति से बचें। यदि आज हमें उच्च गोत्र में पैदा होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जहाँ धर्म की परम्परा चलती है, अभक्ष्य भक्षण नहीं होता है और लोक में निन्दा नहीं है तो हमने अवश्य ही पूर्व में कुछ अच्छे भाव रखें होगे, दूसरों की गुणों की प्रशंसा और अपने अवगुणों की निन्दा की प्रवृत्ति रही होगी अतः इसके लिए यथेष्ट पुरुषार्थ अपेक्षित है।

8. अन्तराय कर्म के आस्रव /बंध के कारण

तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय छह सूत्र 27 में अन्तराय कर्म के आस्रव/बंध के सम्बन्ध में कहा है- "विघ्नकरणमन्तरायस्य।" अर्थात्-किसी कार्य में विघ्न उत्पन्न करने का भाव अन्तराय कर्म के आस्रव /बंध का कारण है। मुनिश्री ने अपने अंतिम प्रवचन में कहा है कि हमारे बंधन का एक मात्र कारण हमारा राग द्वेष है। जैसे मोहनीय कर्म सब कर्मो में प्रबल कर्म हैं वैसे ही अन्तराय कर्म छिपा हुआ, अचानक उदय में आकर कार्य में विघ्न पैदा करने वाला कर्म है इसके आस्रव/बंध का कारण है कि पूर्व में हमने किसी के कार्य के सम्पन्न होने में बाधा डाली होगी या वैसा भाव किया होगा, उसी के परिणामस्वरूप वह आज हमें कार्य सम्पन्न होने में बाधा उत्पन्न कर रहा है। अतः यदि आगे हमें इस प्रकार के विघ्नों से बचना है तो हम किसी के भी कार्य में न तो बाधक बनें और न बाधा पहुँचाने के भाव रखें।

प्रवचनों की विशेषता

जैसा पूर्व में उल्लेख किया था, कर्म सिद्धान्त अति कठिन विषय है। प्रकाण्ड विद्वान भी इसे समझने और समझाने में असमर्थता का अनुभव करते हैं। फिर जनसाधारण को इस विषय को प्रस्तुत करना कितना दुरूह कार्य है, आप अनुमान लगा सकते हैं। मुनिश्री श्रेष्ठ मनीषी संत-कवि, चिंतक, प्रभावी प्रवचनकार, मौलिक साहित्य सृष्टा, वैज्ञानिक और अन्वेषक हैं। उन्होंने जनसाधारण का ध्यान रखकर विषय को अत्यन्त सरल भाषा में इस तरह प्रस्तुत किया है कि सभी को कम से कम इस बात का ज्ञान हो कि उन्हें अपने दैनिक कार्यकलापों में क्या सावधानी रखनी है, अपने पुरुषार्थ को क्या दिशा देनी है जिससे अशुभ से बचकर शुभ कार्यों में प्रवृत्ति बढती जाये। भाषा की सरलता का इससे ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन प्रवचनों में मुनिश्री ने एक बार भी कहीं कर्मों के उदय, उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण, उत्कर्षण, निधित्त, निकाचित शब्दों का प्रयोग नहीं किया है क्योंकि जनसाधारण इनके अर्थों से भलीभांति परिचित नहीं होता। उन्होंने कर्मों की प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग आदि की भी चर्चा नहीं की है, उनका उद्देश्य तो जनसाधारण को उस प्रक्रिया से अवगत कराना मात्र प्रतीत होता है जिससे वे अशुभ कर्म के आस्रव/बंध से बचने का प्रयास करें। प्रत्येक प्रवचन के प्रारम्भ में पूर्व प्रवचनों की संक्षेपिका प्रस्तुत कर बार-बार अशुभ क्रियाओं से बचने का उपदेश दिया गया है।

प्रवचन-संकलन की उपयोगिता

प्रस्तुत पुस्तक प्रवचन संकलन है। पूर्व में इन प्रवचनों की सी डी भी तैयार कर वितरित की जा चुकी हैं जो काफी उपयोगी पाई गई। कुछ श्रोताओं का आग्रह था कि सर्व साधारण के हितों को ध्यान में रखकर इन प्रवचनों को पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जावे। अतः प्रस्तुत संकलन बिना किसी सम्पादन या संशोधन के तैयार किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट करना अभीष्ट है कि प्रवचन और आलेख में वस्तुतः मौलिक अन्तर होता है। प्रवचन संकलन में वक्ता की कथन शैली के स्वरूप के, उसकी मौलिकता को यथासम्भव बरकरार रखना होता है जिससे पढते समय वक्ता की छवि उभरकर साक्षात सामने आ जावे और लगे कि वक्ता की वाणी ही सुनाई दे रही है। इसलिए प्रवचन-सम्पादन के समय वक्ता की कथन शैली को महत्त्वपूर्ण प्रमुखता दी जाती है , भाषा को या उसकी संरचना को नहीं । इस पुस्तक में इस बात का यथासंभव ध्यान रखा गया है। प्रवचनों के संकलन की शृंखला में इसके पूर्व भी मुनिश्री के जयपुर प्रवास में दिये गये दस धर्मों पर प्रवचन गुरूवाणी के रूप में और सोलहकरण भावनाओं के प्रवचन भी प्रकाशित हो चुके हैं। उन दोनों संकलनों का पुरजोर स्वागत हुआ है। आशा है यह संकलन भी जनसाधारण के लिए उपयोगी साबित होगा।

इन प्रवचनों को केसट्स से श्री दिनेश जैन, रामगंजमण्डी द्वारा लिपिबद्ध किया गया है। मैत्री-समूह उनका आभारी है। जयपुर प्रिन्टर्स के श्री प्रमोद कुमार जैन ने इस पुस्तक को शीघ्र छपवा कर आपके हाथों में पहुँचाया है, हम उनके आभारी हैं।

एस. एल. जैन
मैत्री-समूह

14 सितम्बर 2008
अनन्त चतुर्दशी

कर्म कैसे करें?

भाग - 1

हम सभी लोग आज से इस बात पर विचार करने के लिये तैयार हुए हैं कि इस संसार में जो विविधताएँ दिखाई पड़ती हैं, कोई कम ज्ञानवान है, किसी का ज्ञान अधिक है, कोई धनवान है, किसी के जिम्मे दरिद्रता और गरीबी आई है, वृक्ष हैं, अग्नि है, जल है, वायु है, पृथ्वी है, यह पंच भूत तत्व हैं। यह पूरा लोक जो हमें दिखाई देता है, विविधताओं से भरा हुआ है।

इस पूरे विश्व को कौन व्यवस्थित करता होगा ? मेरे अपने जीवन को, मेरे से पृथक् अन्य और जीवों के जीवन को, और यहाँ तक कि इस सारे दिखाई देने वाले दृश्य जगत को कौन व्यवस्थित करता होगा ? कौन इसे बनाता है ? कौन इसे मेन्टेन करता है ? और कौन इसके नष्ट होने में सहयोगी बनता है ? इन बातों की जिज्ञासा सबके भीतर होती है और इन प्रश्नों का समाधान सब लोगों ने अपने-अपने ढंग से अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार खोजा है। एक सामान्य रूप से सभी के भीतर जो बहुत अधिक मात्रा में प्रचारित और प्रसारित बात है वो ये है कि जितना भी यह दृश्य जगत दिखाई दे रहा है इसको बनाने वाला भी कोई एक ईश्वर है, इसको मिटाने वाला भी कोई एक ईश्वर है, इसको मेन्टेन करने वाला भी कोई एक ईश्वर है। ईश्वर इन तीन रूपों में इस सारे दृश्य जगत को व्यवस्थित करता है और वह सर्वशक्तिमान है और इतना ही नहीं वह हम सबसे बहुत दूर कहीं-कहीं किसी आकाश में बहुत ऊँचाई पर बैठा हुआ है। ऐसा प्रचारित है और ऐसा लोगों के अन्दर, अधिकांश लोगों के अन्दर यही मान्यता है।

तब बहुत सारे प्रश्न जो हमने अभी उठाये हैं उनका समाधान क्या इस ईश्वर नाम की किसी चीज को मान लेने से मिलता है; कहीं ऐसा तो नहीं कि ये जो विविधता दिखाई पड़ रही है उसके ऐसा मान लेने में कि ये सब, ईश्वर के द्वारा इतनी विविधता बनाई गयी है, ईश्वर चाहे तो इसको मेनेज करे, मेन्टेन करे, और जिस दिन चाहे वो इसको नष्ट कर दे।

तब फिर प्रश्न उठेगा कि उस ईश्वर नाम की वस्तु या व्यक्ति को किसने बनाया ? जो इस पूरे संसार को व्यवस्था देता है, उस व्यवस्था देने वाले को किसने बनाया?

तब उसका समाधान ढूँढने के लिये यह कहा गया कि वह हमेशा से है, ठीक है वह हमेशा से है, ओमनीसाइन्ट है, ओमनीपेटेन्ट है, ओमनीप्रजेन्ट है। हर जगह स्थित है, सर्वशक्तिमान है और सब कुछ जानता है। बहुत अच्छी चीज है, इस तरह के ईश्वर की व्यवस्थाएँ बहुत दुरस्त होंगी, बहुत सही होंगी। ऐसे सर्वशक्तिमान ईश्वर को मानने में कोई हर्जा भी नहीं है, पर मुश्किल खड़ी हो जाती है ऐसे सर्वशक्तिमान किसी ईश्वर या कि व्यक्ति या कि किसी वस्तु को मान लेने में सबसे बड़ी समस्या ये खड़ी होती है कि यदि ऐसा ईश्वर हर जगह उपस्थित है, और सब कुछ जानता है तब फिर उसके भीतर कोई दया या करुणा नाम की चीज है या नहीं है? वो किसी को दुःख देता क्यों है ? अगर वो ही इस सारी व्यवस्था को बनाता है तो किसी को दुःख क्यों देता है ? अगर हम यह मानें कि वह दुःख तो हम अपने किये गये कार्य की वजह से पाते हैं, तब फिर ....., तब फिर उस सर्वशक्तिमान ईश्वर की सर्वशक्ति पर विश्वास होगा नहीं। अगर मुझे मेरे किये का फल भोगना ही पड़ेगा तो फिर सर्वशक्तिमान ईश्वर ने क्या किया ? ईश्वर को मैं तब सर्वशक्तिमान मानूँ जबकि वो अग्नि में हाथ डालने पर, ... अग्नि का स्वभाव है कि वो जलाएगी, ... और बर्फ के टुकड़े को छूने पर वह मुझे शीतलता का स्पर्श देगी, यह अत्यन्त स्वाभाविक सी बात है। अगर ईश्वर सर्व शक्तिमान है तो अग्नि में हाथ डालने पर वो मुझे शीतलता का अहसास करावे। अपने भक्तों के लिये तो कम से कम करावे और फिर तो कूलर, हीटर, फ्रीज इन सबकी जरूरत नहीं रहेगी, फिर तो बस जरा सा ईश्वर से प्रार्थना करो और अग्नि में हाथ जला तो ऐसा लगेगा जैसे बर्फ में डाला हो और बर्फ की सिल्ली पर हाथ रखा और ऐसा लगेगा कि बिल्कुल जैसे आग में डाला हो। लेकिन ऐसा देखने में तो नहीं आता। देखने में तो यही आता है कि अत्यन्त स्वाभाविक और स्वसंचालित है, यह सारी व्यवस्था।

इसके लिये किसी वस्तु या व्यक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। अन्त में सारे जगत की व्यवस्था के बारे में विचार करते-करते भले ही यह बात प्रचारित हो; लेकिन जो दार्शनिक हैं, जो विचारक हैं, जो ऋषि हैं, मुनि हैं, जो तत्व दृष्टा हैं, वे जानते हैं, यहाँ तक कि गीता में श्रीकृष्ण के नाम से कहलवाया है कि .....

अर्जुन ! इस सृष्टि को मैंने नहीं बनाया, ना कोई इसे बनाता है, ना ये सृष्टि किसी का कर्म है, ना कोई इसका कर्ता है, ना ये सृष्टि किसी का कर्म है। यह तो स्वभाव से ही

अपने आप व्यवस्थित है। किसी भी नियम को व्यवस्थित करने के लिये किसी भी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है, नियमों को बनाने वाला भी कोई नहीं है। नियम शाश्वत हैं। नियम सीधे हैं और स्पष्ट है कि अग्नि का स्वभाव गर्म है। हाथ डालने पर वह बालक हो, चाहे वृद्ध हो, चाहे नौजवान हो, ज्ञानवान हो या गरीब हो, अमीर हो - सबको समान रूप से जलाएगी। यह सार्वभौमिक-सार्वकालिक नियम है। हमारे घर में जलाये या दुकान में जलाये या कि भारत में जलाये और अमेरिका में ना जलाये ऐसा सम्भव नहीं है। इसमें किसी भी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। इतना स्वाभाविक और स्वसंचालित है।

अब फिर भी प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहा। जब ये सारा दृश्य जगत, मेरा अपना जीवन और जो दिखाई पड़ रहे हैं जीव, इन सबका जीवन अगर स्वसंचालित और स्वाभाविक है तब फिर ईश्वर का हमारे जीवन में क्या महत्व है ? क्या हम उसको खारिज कर दें? ठीक एक विचारक नीत्से की तरह कि ईश्वर समाप्त हो गया है। अब ईश्वर नहीं रहा। क्या हम भी ऐसा मानें कि ईश्वर का कोई Existence (अस्तित्व) नहीं है। परमात्मा नाम की कोई चीज नहीं है, परम ब्रह्म कुछ भी नहीं है। अब हमें यह विचार करना पड़ेगा कि इन सबका इस विविधता में जो दिखाई देती है क्या भागीदारी है। तो देखें आप। ईश्वर एक प्रकाश की तरह है। ईश्वर एक दर्पण की तरह है, और प्रकाश का काम क्या है ? ..... सूरज का काम है कि वो आये और समान रूप से रोशनी बिखेरे। आपने जितने दरवाजे खोले हैं उतना भीतर आयेगा। आपने दरवाजे बन्द रखे हैं, वो भीतर नहीं आयेगा। आप चाहें तो वस्तुओं को उसके प्रकाश में देखकर के समझ सकें तो समझें। वो आपकी कोई मदद नहीं करेगा। वो प्रकाश कर सकता है लेकिन ये मोटर खड़ी हुई है, ये पेड़ है, ये फलानी चीज है। ये ईश्वर नहीं बताएगा। वो प्रकाश की तरह हमें सारी चीजें प्रकाशित कर देगा; अब हमारा फर्ज है कि हम इस विविधता को जानें। इस विविधता में उसका इतना ही हाथ है कि वो इस विविधता का दर्शन करा देता है हमें। वो प्रकाश की तरह है ज्योति की तरह है और या कि वो दर्पण की तरह है। जैसे कि घर से बाहर निकलते समय जरा सा अपना चेहरा दर्पण में देखते हैं और देखते हैं कि कहीं कोई कालिख तो नहीं लगी है और अगर लगी होती है तो उसे अलग कर देते हैं। कालिख दर्पण में नहीं लगी है और न दर्पण पोंछने से कालिख खत्म होगी और न दर्पण हमारी कालिख पोंछेगा। पोंछना हमें पड़ेगी। ईश्वर का काम इतना ही है कि हमारे कालिख को और हमारी उज्ज्वलता को दोनों को दर्पण की तरह बता देता है।

दर्पण के सामने अगर अंगीठी जलती हुई रखी जाए तो वह सिर्फ जलती हुई अंगीठी को दिखाएगा, लेकिन उससे प्रभावित नहीं होगा, वो जलेगा नहीं। बर्फ का टुकड़ा - सिल्ली पूरी दर्पण के सामने रख दी जाये तो बर्फ की सिल्ली से दर्पण को ठण्डी (सर्दी) और गर्मी का कोई अहसास नहीं होगा, वो तो सिर्फ दिखा देगा कि ये है, ये है।

ऐसा ही है ईश्वर। वो सिर्फ दर्पण के समान है। उस पर कालिख नहीं है, उसमें कालिख दिखती अवश्य है। कालिख हमें अपने आचरण और साधना से स्वयं हटानी पड़ेगी। ईश्वर हटायेगा नहीं। ईश्वर से यदि हम अपने चेहरे पर लगी हुई कालिख को हटाने की आशा करते हैं तो ये तो ईश्वर के साथ अन्याय है जैसे दर्पण से ये अपेक्षा रखना कि वो हमारे चेहरे पर लगी कालिख दिखाएगा और साथ में वो कालिख पोंछने का इन्तजाम भी करेगा, ठीक ऐसा ही है, ईश्वर से अपेक्षा रखना कि वो हमारी अपनी कमियों को, हमारी अच्छाइयों और बुराइयों को दिखाने के साथ उनकी व्यवस्था भी देगा। व्यवस्था देना उसका काम नहीं है। उसके माध्यम से व्यवस्थित हो जाना, ये हमारा अपना दायित्व है।

ईश्वर का रोल हमारे जीवन में इतना ही है एक दर्पण की तरह और वो दर्पण भी ऐसा है जो कि चीजों को अपने में दिखा तो देता है लेकिन उनसे प्रभावित नहीं होता है। ठीक ऐसा ही हमें हमारा ईश्वर स्वीकार्य है और ऐसा ही उसका सहयोग हमें स्वीकार्य है। तब-तब ईश्वर का महत्व भी है और ईश्वर के पाने का मतलब क्या है? परमात्मा को पाने, परमात्मा के दर्शन करने, परमात्मा में लीन हो जाने, इन सबके मायने क्या हैं फिर ? ऐसे शब्द बहुत से सुनने में आते हैं। परमात्मा में लीन हो जाना, परमात्मा को प्राप्त कर लेना, परमात्मा का साक्षात्कार कर लेगा, ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेना। जहाँ ये कहा जाता है कि ''अहम् ब्रह्मानि'' मैं ही ब्रह्म हूँ। वहाँ पर ये इशारा किया जाता है कि मैं सिर्फ मनुष्य नहीं हूँ। मैं सिर्फ किसी का पुत्र या किसी का पिता या किसी की माँ नहीं हूँ। मैं परमात्मा की हैसियत का हूँ। मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ और परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है जिससे कि मुझे मिलने जाना है, जिसका कि मुझे दर्शन करना हो, या जिसका मुझे सामना हो। परमात्मा एक अवस्था है जो कि हर आत्मा को प्राप्त हो सकती है। वह परम विशुद्ध अवस्था है। इसलिये परमात्मा से मिलना अन्ततः अपने ही परमविशुद्ध स्वरूप का साक्षात्कार करना, उससे मिलना और उसमें लीन हो जाना, परमात्मा में लीन होना, अपने आपमें अपने शुद्ध स्वरूप में लीन होना है। हम एक पेड़ की पत्ती नहीं बना सकते, विज्ञान एक शैल (कोशिका) नहीं बना सकता अपने शरीर का, तो फिर ये किसने बनाया

होगा, तो हमारे पास जब इसका कोई उत्तर नहीं था तो हमने कहा ईश्वर ! ईश्वर ने बनाया, सर्वशक्तिमान है, वो ही सब व्यवस्था बनाता रहता है।

एक घर की व्यवस्था बनाने वाले को कितनी मुश्किलें और कितना संक्लेश उठाना पड़ता है, कितना हर्ष-विषाद में वो डूबा रहता है, और क्या पूरे विश्व की व्यवस्था बनाने वाला क्या उसी हर्ष विषाद और उसमें डूबा रहेगा। नहीं वो दर्पण के समान अत्यन्त निर्मल है, सारी चीजें उसमें झलक सकती हैं, लेकिन वो उन चीजों से बिना प्रभावित हुए सिर्फ दिखाता है और अपने आपमें लीन रहता है। वो इस सब प्रपंच में नहीं है। ये बात तो स्पष्ट हो गई कि ये जो ईश्वर जो हमारी अपनी भ्रान्ति है और जो अपने आपको बचाने का उपाय हमने खोज लिया था, बस डाल दो सारा उसके ऊपर, अच्छा है तो बुरा है तो। इसमें भी थोड़ा सा लाभ तो है। थोड़ा लाभ ये है कि ईश्वर पर अगर सब कुछ डालने की तैयारी हो तो भी बड़ी शांति मिल सकती है। इस विविधताओं भरे संसार से हम धीरे से ऊपर उठ सकते हैं अगर ऐसी चीज आ जावे तो। लेकिन मजा हमारे साथ यह है कि अगर कुछ अच्छा होता है तो उसका श्रेय हम लेते हैं, बुरा होता है तो ईश्वर पर डालने का मन होता है कि क्या करें, ईश्वर को यही मंजूर था। ये दोहरा हिसाब हमारे साथ है। या तो हम मानें कि ''जा-विधि राखे राम, ता-विधि रहिये।'' फिर सुख और दुःख दोनों में समता रखनी पड़ेगी। इन विविधताओं के बीच में भी, एकरूपता कायम करके रखनी पड़ेगी। ईश्वर की उपस्थिति का अहसास सिर्फ एक बात की हमें मदद करता है, एक बात में हमें सहायक बनता है, हमारे अपने परिणामों में होने वाले हर्ष-विषाद को शांत रखने में। ईश्वर की खोज और ईश्वर के सहयोग दोनों बातों को दो छोटे से उदाहरणों से समझ लें।

रविन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा कि उन्हें ईश्वर की खोज थी। गीतांजलि में उन्होंने ईश्वर के गीत गाये और उनके पड़ौसी ने उनसे पूछा कि आपको कभी ईश्वर का साक्षात्कार हुआ। तो बहुत मुश्किल में पड़े थे। उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है कि फिर मुझे ईश्वर की जितनी दरकार नहीं थी; उतनी मुझे लालसा थी उस पड़ौसी से बचकर रहने की, क्योंकि उसने सीधा पूछ लिया था कि ईश्वर का साक्षात्कार हुआ कि नहीं? अगर कोई ईश्वर के बारे में बात करे और हमसे कोई सीधा पूछ ले कि आप इतनी बातें कर रहे हैं, देखा है कभी उसको, तो हम बगलें झाँकने लगेंगे। हम यहाँ से वहाँ हो जाएँगे कि देखा-देखा तो है ही नहीं। पर है वो, तो फिर चलें उसकी खोज करें। तो रविन्द्र नाथ ने लिखा कि मैं खोज पर निकला और मुझे पता भी मिल गया उसका कि फलानी बिल्डिंग में रहता है। मैं एड्रेस बिल्कुल नक्की करके, वहाँ गया और गाड़ी से नीचे उतरा और जैसा कहा गया

था, वैसा ही किया। और मैं जब ऊपर सीढ़ियाँ चढ़ रहा था तो मेरे मन में विचार आया कि ईश्वर के पास जाने से पहले जरा विचार कर लेना चाहिये कि अगर वो मिल गया तो उससे बात क्या करेंगे। और चुपचाप जाना चाहिए। मैंने जूते उतार लिये और उतार करके हाथ में ले लिये - दबे पाँव ..... सामने जाकर के देखा तो नेमप्लेट बिल्कुल ठीक लगी थी। ईश्वर यहीं रहता है। यहाँ तक तय हो गया। रविन्द्रनाथ ने वर्णन किया है उसके पास बिल्कुल दबे पाँव पहुँचा हूँ। जैसे ही दरवाजा खटखटाने का मेरा मन हुआ, पर हाथ रुक गये कि ईश्वर की खोज में, मैं अगर लगा रहूँ तो कम से कम ये अनुभव तो होता है कि ईश्वर है। लेकिन जिस दिन मैं ईश्वर को इस तरह से जीता जागता पा लूँगा, फिर तो उसकी खबर भी नहीं लेऊँगा मैं। ऐसे तो बहुत से लोग हैं जिनसे मैं परिचित हूँ और जिनसे मिल लिया है मैंने और फिर मैं भूल जाता हूँ, उनको उनसे मिलने के बाद। अच्छा यही है कि मैं ना मिलूँ और उसे खोजता रहूँ ताकि मुझे ईश्वर का ध्यान बना रहे। ईश्वर की खोज मुझे ईश्वर की याद बनाये रखने में मदद करती है कि मैं खोजता रहूँ और अगर मैंने ऐसा पा लिया और फिर भी मैं संसार में रहूँ तो फिर ईश्वर को भूल जाऊँगा मैं। ईश्वर को पाने के बाद फिर संसार में रहने के लिये कोई आवश्यकता नहीं।

यह प्रतीक है कि एक बार अगर ईश्वर को पा लिया तो फिर संसार समाप्त हो जायेगा। ईश्वर को पाना अपने संसार को समाप्त कर देना है और कुछ नहीं। ये प्रतीकात्मक है, ईश्वर को पाना और इतना ही नहीं ईश्वर मदद कैसी करता है हमारे सारे कार्यों में, हमारी इस विविधता के बीच भी। हमारी इन विषमताओं के बीच भी। हमें समता का पाठ सिखाता है। जैसे कि हमने आपको उदाहरण दिया था पहले आज वो बहुत जरूरी है उसको याद करना। विनोबा की माँ जामण डालकर दही जमाती थी और राम का नाम लेती थी। विनोबा जब बड़े हो गये तो उन्होंने कहा कि माँ और सब बातें समझ में आती हैं। ये बताओ दही जामण से जमता है या ईश्वर का नाम लेने से ? यह क्लियर (स्पष्ट) कर दो। आगे हमें बहुत जरूरत पड़ेगी। आप तो अभी जमाती हैं, पर हम रोज देखते हैं कि जावण भी डालती हैं और राम का नाम भी लेती हैं। इसका मतलब है कि दोनों से ही जमता है क्या ? या किसी एक से जमता है ? अगर किसी एक से जमता है तो या तो जावण डालना बन्द करो या कि भगवान का नाम लेना बन्द करो। ये क्या मामला है, तो उनकी माँ ने हँसकर के कहा कि बेटे जामन देने से ही दूध का दही बनता है। जामण से ही जमता है तो फिर ईश्वर की क्या आवश्यकता ? बेटे, सिर्फ इतनी आवश्यकता है कि कल जब सुबह बहुत अच्छा दही जम जाएगा तो मुझे यह अहंकार ना आ जाये कि मैंने जमाया

है, इसलिये राम का नाम ले लिया। मेरी श्रद्धा मेरे इस कर्तापने और अहंकार को कि मैं करता हूँ, इसको नष्ट करती है। इसलिये ईश्वर के प्रति श्रद्धा भी आवश्यक है। ईश्वर का इतना बड़ा रोल है। यह सहयोग बहुत जरूरी है ईश्वर का जीवन में। मैं उसके प्रति श्रद्धा रखूँ और अपने अहंकार को .... और अगर कल के दिन नहीं जमता है तो मैं किसी को शिकायत न करूँ। मैं किसी को दोषी ना ठहराऊँ। मैं संक्लेश न करूँ। इससे मुझे ईश्वर बचा लेता है। मुझे अहंकार और संक्लेश दोनों से बचाने में मदद करता है। ईश्वर की मेरे जीवन में मदद इतनी ही है। मैं ज्ञानवान हूँ तो मुझे अहंकारी बनने से रोकता है। बस इतना रोल है उसका और ये बहुत बड़ी चीज है इस तरह यदि हम देखें तो कुछ हद तक तो हमने इस बात को बहुत क्लियर कर लिया कि हाँ सचमुच है ये ऐसा ही।

देखें अपन ! अग्नि को गरम बनाने में किसी का हाथ नहीं है, बर्फ को ठण्डा बनाने में किसी का हाथ नहीं है। उसी तरह दूध में पानी मिलाने का किसी का काम है क्या। नहीं, हमेशा से है। तिल में तेल भरने का ..... किसी का काम है क्या ? हमारी बुआ पहली बार विदेश गईं तो वह यहाँ से जलेबी लेकर गई थीं - जलेबी ..... वो सुनाती हैं, टेबल टेनिस की वो रही थीं खिलाड़ी तो वहाँ खेलने गई थीं उस समय उस जमाने में, अब तो वहीं पर बस गईं, तो हम लोगों को बाद में आकर के बताया कि वो लोग बहुत आश्चर्य कर रहे थे। वे मेरे से पूछने लगे कि ये जो गोल-गोल चीज है वो बनी कैसे, इसमें वो जो सीरा है वो इन्जेक्शन से भरा है क्या ? अब उनने तो यह वाली डिश देखी ही नहीं थी, ये भर कैसे गया, उसमें सीरा भरा होगा सीरिंज से। ठीक ऐसा ही ..... हमारे मन में प्रश्न उठ सकता है कि दूध में पानी किसने मिलाया ? हमारे जीवन को ऐसा किसने बनाया? नहीं दूध में पानी जैसे हमेशा से है ऐसा ही संसार में यह जीव विकारी अवस्था को हमेशा से प्राप्त है। सुख-दुःख, कमी-बेशी, ज्ञान-धन, दरिद्रता ये सब हमेशा से हैं। जैसे कि दूध में पानी है, किसी ने उसको मिलाया नहीं है, स्वाभाविक है, जैसे कि तिल में तेल किसी ने भरा नहीं है वो ..... जैसे ही तिल उगता है उसमें तेल भी हमेशा है। जैसे ही मनुष्य जन्म लेता है वो अपने साथ अपने विकारों को लेकर आता है। ये विकार हैं क्या चीज ?

अब बस यहाँ से शुरू करते हैं अपन अपनी यात्रा। कितने दिन चलेगी उतने दिन जब तक कि समझ में नहीं आ जावेगी। बस ..... जिस दिन समझ में आ जाये, अपना काम पूरा हो गया। और कोई आवश्यकता नहीं है ज्यादा उलझने की, ज्ञान उतना ही आवश्यक है जितना कि लगी हुई भीतर की गठानों को खोल देवे और हमें उन्मुक्त कर देवे, उलझनों से पार कर देवे, हमें चीज स्पष्ट सामने आने लगे, ठीक इतना ही आवश्यक है।

उसके लिये अपन ने यह प्रक्रिया शुरू की है। यहाँ तक पहुँच गये कि मेरे अपने विकार हमेशा से हैं सबके भीतर, जो भी दिखाई पड़ रहा है वो सारा खेल इसी विकार का है और वो विकार आते कहाँ से हैं, हमेशा से हैं। ..... उनका कारण भी मुझे अपने भीतर खोजना पड़ेगा और उनका कारण मेरे अपने विकारों का मेरा अपनी आसक्ति, मेरी अपनी अज्ञानता, मेरा अपना ये शरीर, इन विकारों को आगे बढ़ाने में मदद देता है और मेरे अन्दर के जो विकार हैं वो मेरे द्वारा ही जेनरेट होते हैं, किसी और के द्वारा नहीं। मैं विकार से ग्रसित हूँ हमेशा से और उन विकारों की जिम्मेदारी मेरी अपनी है, व्यक्तिगत है। एक Vicious (विशयस) सर्कल है, जिससे हम अपने विचार की क्रियाएँ, अपनी संवाद की क्रियाएँ, अपने बॉडी की, शारीरिक क्रियाएँ हमेशा करते रहते हैं और इस शरीर के माध्यम से हमारे भीतर जो भी भाव आते हैं, विचार और अनुभूति होती है वे सारा इस विविधता के लिये रेग्यूलेट (क्रियान्वन) करती हैं और कोई अतिरिक्त नहीं है।

हमारे अपने कर्म और हमारा अपना शरीर हमारे संसार के भ्रमण का और इस विविधता का कारण है। यहाँ तक, हमने इस बात को समझ लिया। कर्म कैसे हैं ? वे हमारे साथ बँधते भी हैं, वे हमारे भोगने में भी आते हैं, वे हमारे करने में भी आते हैं; तीन तरह के हैं, कुछ कर्म हैं जो हम करते हैं, कुछ कर्म हैं जिनका हम फल भोगते हैं। कुछ कर्म हैं जो हमारे साथ फिर से आगे की यात्रा में शामिल हो जाते हैं और इस तरह से यह यात्रा विशयस सर्कल है, इसलिये संसार को चक्र माना है, जिसमें निरन्तरता बनी रहती है। ठीक एक गृहस्थी की तरह जैसे बनी रहती है। ठीक एक गृहस्थी की तरह जैसे किसी गृहस्थी चलाने वाली माँ को हमेशा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि शक्कर कितने दिन की बची और गेहूँ कितने दिन का बचा और आटा कितने दिन का बचा। इसके पहले कि वो डिब्बे में हाथ डालकर पूरा साफ करे। ऐसा मौका आता ही नहीं है, दूसरी तैयारी हो जाती है। बुंदेलखण्ड में कहते हैं कि ड्योढ़ लगी रहती है, तब गृहस्थी चलती है। ड्योढ़ लगी रहती है, मतलब कोई भी चीज एकदम खत्म नहीं होती, खत्म होने के कुछ घण्टे पहले ही सही, कुछ मिनिट पहले वो शामिल हो जाती है, तब चलती है गृहस्थी। ठीक ऐसे ही हमारा संसार चलता है। हम जो भोगते हैं, उसके भोगते समय सावधानी और असावधानी हमारी होती है। दो ही चीजें हैं हमारी अपनी असावधानी जिसको हम अपनी अज्ञानता कहलें; हमारी अपनी आसक्ति। इनसे ही मैं अपने जीवन को विकारी बनाता हूँ और इसके लिये मुझे करना क्या चाहिये ? मेरे आचरण की निर्मलता और दूसरी मेरी अपनी साधना ..... समता की साधना। ये दो चीजें हैं। इस संसार की विविधता से

बचने के लिये। कुल तो इतना ही मामला है और इतने में ही कुछ लोगों को समझ में आ सकता है, कुछ लोगों को इतने में समझ में नहीं आ सकता। तो आचार्य भगवन्त, तो श्री गुरू तो सभी जीवों का उपकार चाहे हैं। तो फिर इसका विस्तार करते हैं और वो विस्तार अपन करेंगे। जो विस्तार रुचि वाले शिष्य हैं, उनको विस्तार से समझ में आता है, जो संक्षेप रुचि वाले हैं उनको बात इतनी ही है समझने की, और मध्यम बुद्धि वाले हैं उनको तो विस्तार करके बताना होगी। इसमें कई क्रॉस क्यूशचनूस उठेंगे। मन में बहुत सारी बातें आयेंगी। ये प्रक्रिया वन साइडेड (एकतरफा) चलाने का मेरा मन नहीं है। अभी तक चलाई है हमने वन साइडेड कि मैं ही मैं आकर के आपको सब बातें बोलता रहूँ और आप बिल्कुल चुप बैठे सुनते रहें। अब मामला जरा दूसरा है।

जरूर अवगत करायें ताकि कल हम उन चीजों पर भी विचार कर सकें। ये प्रक्रिया इस तरह चलेगी तो शायद बहुत अच्छे से हम इस चीज को यहाँ नहीं पूछेंगे, लेकिन आप अपने मन में उठने वाली शंकाओं को मेरे से पूछें। मैं उन सब पर विचार करके कल उस चीज को पहले कहूँ, फिर बाद में आगे की प्रक्रिया को शुरू करूँ। कुछ प्रश्न तो हमारे उसी प्रक्रिया में पूरे हो जाएँगे। हम जो कहेंगे या समझेंगे बैठकर के, ये दोनों तरह से डिस्कशन होना चाहिए तब बात समझ में आयेगी।

चक्र कैसा है ? चक्र मेरी असावधानी और आसक्ति है। और कुछ भी नहीं है। ये चीज तो बिल्कुल स्पष्ट हो गई। विविधताओं का कारण सबकी अपनी असावधानी। जो जितना सावधान है वो उस विविधता से पार है। जो जितना असावधान है वो उस विविधता में चमत्कृत हो जाता है। बस जो सावधान है वो संसार से आसानी से बाहर निकल जाता है और जो विविधताओं को देखकर के उनका समाधान खोजने की कोशिश नहीं करता बल्कि वे विविधताएँ उसे आकृष्ट करती हैं और उसकी आसक्ति को बढ़ाती हैं। जो आसक्त हो जाता है ..... तो फँस जाता है, ट्रेप हो जाता है उससे सारी चीजें। जिस चीज का जितना आकर्षण होगा, हम उस चीज से उतना बँध जाएँगे। बँधना और कोई बड़ी चीज नहीं है। मेरी आसक्ति मुझे इन चीजों की विविधताओं से बाँध लेती है। और मैं सावधान हो जाऊँ, और मैं अनासक्त होकर गुजरूँ तो ये संसार अपनी जगह ज्यों का त्यों है। मैं इस चक्र से पार हो जाता हूँ। मैं परिधि से पार होकर सेन्टर में आ जाता हूँ। और हम सब की कोशिश सिर्फ इतनी है कि इस संसार की परिधि पर चक्कर खाते जिन्दगी निकल गई, और मुझे अब इस चक्कर को छोड़ करके अपने सेन्टर, अपने केन्द्र में स्थापित करना है अपने आपको। प्रक्रिया इतनी ही है।

वो जो मैं उदाहरण कह रहा था। चार मित्र थे और चारों के मन में आया कि वे कुछ जीवन में हासिल करें। कोई ऐसी चीज जिससे कि उनको संतोष हो। सब लोगों के मन में यही बात आती है कि यहाँ कुछ ऐसा हासिल कर लें जिससे कि संतोष हो, लेकिन सबके अपने संतोष का ढंग अलग-अलग है। कोई थोड़े में सन्तुष्ट है। कोई उससे ज्यादा में सन्तुष्ट है। कोई और ज्यादा में सन्तुष्ट है और कोई सन्तुष्ट नहीं है। जो जितना यहाँ सन्तुष्ट है वो उतना संसार से पार है और जो जितना असन्तुष्ट है उसका संसार उतना बड़ा है।

तो चारों मित्र चले। किसी ने बताया इस रास्ते जाओ। यहाँ पर जगह-जगह तुम्हें बहुत कीमती चीजें मिलेंगी। उन्होंने कहा चलते हैं चले वो ..... चारों एक साथ चले और जैसे ही कुछ किलोमीटर पहुँचे वहाँ पर दिखाई पड़ी एक ताँबे की खदान। कहानी प्रतीकात्मक है, पढ़ी होगी आपने भी, ताँबे की खदान मिली। चार में से एक ने कहा, अरे ..... अरे ..... इतनी कीमती चीज ले लो बस, इससे जीवन चल जायेगा। जितनी लेना है उतनी ले लो।

बाकी तीन ने कहा, नहीं, इससे कुछ नहीं होने वाला। ये बहुत हल्की धातु है। जरा ..... जब ताँबे की मिली है तो बताने वाला बताता है कि बहुत मिलता है। तो थोड़े और आगे चलो। हाँ ..... चौथा वाला वहीं रुक गया, तीन आगे बढ़ गये। कुछ किलोमीटर चले, अब की बार चाँदी की खदान मिली। उन्होंने कहा, देखो ..... मैंने कहाँ था ना। वो चौथा वाला बिल्कुल बुद्धु। ऐसा ही लगता है यहाँ पर, ऐसा ही लगता है सबको और उनमें से भी, तीन में से तीसरे वाले ने कहा कि मुझे तो संतोष है। चाँदी की बहुत कीमत है। दो ने समझाया उसको कि बताने वाले ने देखा कितना सही बताया था, ताँबे की और चाँदी की मिल गई है तो अब निश्चित रूप से सोने की मिलेगी। तुम कहाँ रुक रहे हो यहाँ पर। उसने कहा नहीं ..... नहीं ..... मैं रुकता हूँ ..... रुक गया वो।

दो आगे बढ़ गये। मिलना थी सोने की ..... मिली ..... क्यों नहीं मिलेगी ? सोने वाली खदान भी मिल गई। तब दो में से एक कहता है कि बस अब बहुत हुआ। एक ने कहा, सुनो जब सोने की मिली है तो अब हीरे-जवाहरात की तय है। जयपुर आने ही वाला है अब बस जस्ट, जब सारे स्टोपेज छोड़ दिये आपने तो अब बस थोड़ी देर और चलो। और वो आगे बढ़ गया। तीन ताँबे, चाँदी और सोने में सन्तुष्ट होकर के रह गये। आप इसको अपने ऊपर घटित मत करना भैया, नहीं तो आप जरूर नाराज हो जाएँगे और अभी मुझे आपके साथ रहना है कुछ दिन (हँसकर) ..... नाराज नहीं करूँगा। लेकिन हम किस तरह से फँस जाते हैं। हमारी अपनी असावधानी कितनी है, हमारे अन्दर के विकार जो कि अनादिकाल से चले आ रहे हैं किस तरह हमें असावधान कर देते हैं,

किस तरह अपनी असावधानी से हम आसक्त हो जाते हैं और किस तरह इस जाल - सर्किल में फिर से शामिल हो जाते हैं और फिर एक उलझन अपने हाथ से खड़ी कर लेते हैं नये सिरे से।

चौथे वाले ने देखा कि हीरे-जवाहरात की खदान तो आई ही नहीं। लेकिन इतना जरूर है कि एक व्यक्ति सामने जरूर बैठा है वो शायद कुछ सूचना देगा, पहुँचा उसके पास। देखा तो उस व्यक्ति के ऊपर एक चक्र घूम रहा था बहुत तेजी से .....बिल्कुल अधर में, ऐसा भी नहीं कि उसके ऊपर कोई कील हो जिस पर घूम रहा हो वो, तो बस चक्र घूम रहा था और वो बड़ा परेशान था, भूखा-प्यासा बेहाल था। कपड़े सब फट गये थे, जर्जर थे, पर चक्र घूम रहा है और वो बैठा है।

पूछा उससे कि मामला क्या है ? उसने कहा कि पहले यह बताओ तुम मेरी मदद करोगे क्या ? करूँगा, तो फिर मैं तुम्हें हीरे-जवाहरात की तो खदान बता सकता हूँ। उसने कहा, सुनो तुम मेरी जगह आना स्वीकार करो तो मैं तुम्हें बता सकता हूँ। उसने कहा, ठीक है। इसमें क्या बात है पर मुझे ये जो चक्र है ना इसकी वजह से सूझता नहीं है, मेरा ये चक्र तुम ले लो तो फिर मैं बाहर खड़ा होकर तुम्हें बता सकता हूँ कि वो खदान कहाँ है ? उसका मेप बना दूँगा। मैं जरा इससे मुक्त हो जाऊँ बस तुम सिर्फ इतनी भावना करो कि मैं मुक्त हो जाऊँ और मुझे हीरे-जवाहरात की खदान का पता बतायें। उसने कहा, मैं भावना करता हूँ कि तुम मुक्त होओ और मुझे जल्दी से बताओ - बस इतना ही कहना था कि वो चक्र उसके ऊपर आकर के फिट हो गया और बाहर खड़े होकर उसने कहा कि हीरे-जवाहरात की यहाँ पर कोई खदान नहीं है वो भीतर ही है। मैं मुक्त हो गया अब मुझे चाँदी-सोने और उसकी भी नहीं चाहिये। सीधा यहाँ से घर जाऊँगा, यहाँ से सीधा, अब मुझे कुछ भी नहीं चाहिये। अब कोई और दूसरा आयेगा जब उस चक्र को संभालेगा तब तुम मुक्त होगे। प्रतीकात्मक है, ये ऐसा नहीं समझना कि कोई हमारे इस चक्कर को स्वीकार कर ले तो हम उस दिन चक्कर से मुक्त हो जायेंगे; नहीं हम जिस दिन चाहें, उस चक्कर से मुक्त होना चाहें, हम मुक्त हो सकते हैं। हमारी अपनी सावधानी और हमारी अनासक्ति इस संसार के चक्र से मुक्त कर सकती है लेकिन इस चक्र को पहले समझ लें। समझेंगे अपन। ये चक्र कैसे शुरू हुआ इससे मुक्त होने का उपाय क्या है ? इन सब पर अपन क्रमशः विचार करेंगे।

इसी भावना के साथ कि हम इस सारी प्रक्रिया को समझ करके और अपने जीवन को इस संसार के चक्र से मुक्त कर सकेंगे।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 2

हम सभी लोगों ने कल अपने मौजूदा जीवन को किस तरह हम जी रहे हैं और ये जो संसार में विविधताएँ दिखाई पड़ रही हैं इन सबकी जिम्मेदारी किसकी है, इस बात पर विचार किया था और अन्ततः हम इस निर्णय पर पहुँचे थे कि जो जिस तरह जी रहा है उसकी जिम्मेदारी उसकी खुद की है, किसी और की जिम्मेदारी इसमें नहीं है।

''कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहि तस फल चाखा''।

ये सारा संसार कर्म प्रधान है, जो जैसा यहाँ कर्म करता है वो वैसा फल पाता है। वैसा फल उसे चखना पड़ता है। जो हम विचार करते हैं वो हमारे मन का कर्म है। जो हम बोलते हैं वो हमारी वाणी का कर्म है, जो हम क्रिया करते हैं या चेष्टा करते हैं वो हमारे शरीर का कर्म है और इतना ही नहीं जो हम करते हैं वह तो कर्म है ही, जो हम भोगते हैं वह भी कर्म है और जो हमारे साथ जुड़ जाता है, संचित हो जाता है, वह भी कर्म है। इस तरह यह सारा संसार हमारे अपने किये हुए कर्मों से हम स्वयं निर्मित करते हैं और यदि हम अपने इस संसार को बढ़ाना चाहें तो इन दोनों की जिम्मेदारी हमारी अपनी है। हर जीव की अपनी व्यक्तिगत है। हर जीव की अपनी स्वतंत्र सत्ता है। एक-दूसरे से हम प्रभावित होकर मन से विचार करते हैं, वाणी से अपन विचारों को व्यक्त करते है, शरीर से चेष्टा या क्रिया करते हैं और इस विचार या कही गई बात को पूरा करने का प्रयत्न करते हैं और इस तरह हमारा संसार किन्हीं क्षणों में बढ़ता भी है और किन्हीं क्षणों में हमारा संसार घट भी जाता है। तो इसीलिये जो संसार की विविधता है वो मेरी अपनी वाणी, मेरी अपने मन और मेरे अपने शरीर से होने वाली क्रियाओं पर निर्धारित है बहुत हद तक। गीता में कर्म के तीन भेद कहे हैं। जैन दर्शन में भी कर्म के तीन भेद कहे हैं। हम दोनों को समझें। कुछ क्रियावान कर्म होते हैं जो हम करते हैं और उनका फल हमें तुरन्त देखने में आता है। हम सुबह से शाम तक जो भी कर्म करते हैं उन कर्मों का फल भी हमें हमारे सामने ही देखने को मिल जाता है। कोई सुबह से नौकरी पर जाता है और एक दिन में जितना काम करता

है, शाम को उतने पैसे, उतनी तनख्वाह लेकर के लौटता है। हम यहाँ पर किसी को गाली देते हैं वह हमें तमाचा मार देता है। हमारा गाली देने का कर्म हमें किसी ना किसी रूप में फल देकर के चला जाता है, यह क्रियावान कर्म है। ये हम रोज कर रहे हैं और इसका फल भी लगे हाथ चखने में आ जाता है। चाहे वह शुभ हो या कि अशुभ हो, लेकिन इतना ही नहीं है इससे भी कुछ अधिक है, कुछ ऐसे क्रियावान कर्म हैं, जिनका फल हमें तुरन्त नहीं मिलता है, देर-सवेर मिलता है। वे सब कर्म संचित कहलाते हैं। कुछ कर्मों का फल ही हमें रोज मिलता है, कुछ का फल तो हमें बाद में मिलता है। कर्म हमारे वर्तमान के भी हैं, कर्म हमारे साथ अतीत के भी हैं। कर्म हमारे साथ भविष्य में क्या व्यवहार करेंगे, यह भी वर्तमान में ही हम निर्धारित कर लेते हैं। तो वो जो संचित कर्म हैं वो क्या चीज है, वो जो हमें बाद में फल देते हैं, वो सब संचित कहलाते हैं जैसे कि गेहूँ बोयें, एक सौ बीस दिन के बाद फसल आयेगी। बाजरा बोयेंगे, 90 दिन के बाद आयेगी और अगर आम बोया है तो 5 वर्ष के बाद फल लगेंगे। हमने अपने माता-पिता के साथ खोटा व्यवहार किया है और सम्भव है उसी जीवन में और हमारे बच्चे हमारे साथ वही व्यवहार करें जैसा हमने अपने माता-पिता के साथ किया। तुरन्त देखने में नहीं आता पर उसके ऑफ्टर इफेक्ट्स हमारे सामने देखने में आते हैं, बीज आज बोते हैं, फल बहुत देर के बाद देखने में आता है। एक बेटा बहुत छोटा सा है और वह अपने इकट्ठे किये हुए सामान में चाय के कुल्हड़, मिट्टी के और भी बर्तन, वह सब इकट्ठे करता है। पिता एक दिन उससे पूछते हैं कि तुम यह किसलिये इकट्ठे कर रहे हो ? वह कहता है कि जैसे तुम दादा-दादी को इन मिट्टी के बर्तनों में खिलाते हो वैसे ही जब आप बूढ़े हो जाओगे, तब आपके लिये खिलाऊँगा, इसीलिये मैं जोड़कर रख रहा हूँ और होता यह ही है, हम आज जो करते हैं उसका तुरन्त फल मिलता दिखता है लेकिन उतना ही पूरा नहीं है। क्रियावान के साथ-साथ कुछ और है जो कि संचित होता जाता है जिसका फल हमें बाद में भोगना पड़ता है। हम कर्म करते हैं, कर्म हमारे साथ बँधता है और कर्म का फल हमें भोगना पड़ता है। इन तीन स्टेज में ये कर्म की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। यह भी साथ में है कि यहाँ वर्तमान में जो संचित हमने किया है उसमें से कितना भोगना है। हमारे पास पहले से जो संचित है उसमें से कितना भोगना है। यह कहलाता है प्रारब्ध। हमारे अपने संचित किये हुए कर्मों में से कितने पककर के अपना फल देंगे और जिनका फल हमें भोगना पड़ेगा। वो ठीक ऐसा ही है कि हमने आम का पेड़ भी लगाया है और उधर बाजरा भी बोया है, गेहूँ भी बोया है लेकिन सब अपने-अपने टाइम से आयेंगे। मेरे पास कितना समय है, मेरी अपनी लाइफ कितनी है; उस लाइफ में जो-जो आते चले जायेंगे वो अपना फल देंगे;

कुछ शेष रह जायेंगे। जो आगे मेरे साथ ट्रेप होकर के जायेंगे और मुझे आगे भी अपना फल देंगे। कोई भी कर्म अपना फल दिये बिना जाता नहीं है। किसी ना किसी रूप में देगा, पर अपना फल देगा। ये हमारा पुरुषार्थ है जिस पर हम बाद में विचार करेंगे कि हमें उस कर्म के फल के साथ कैसा बिहेवियर (बर्ताव) करना है। अभी सिर्फ हम यह समझें कि कर्म हमारे साथ बँधते कैसे हैं ? ये आते कहाँ से हैं और इन को बुलाता कौन है और ये हमें फल चखाने की सामर्थ्य कहाँ से पाते हैं ? कौन इनमें हमें फल चखाने की सामर्थ्य डालता है और ये कितनी देर तक हमारे साथ रहे आते हैं ? यह कौन निर्धारित करता है? ये प्रक्रिया हमें थोड़ी सी विचार करने की है। होता इतना ऑटोमेटिकली (अपने आप) है कि हम अपनी थोड़ी सी बुद्धि से इस सबके बारे में सोच नहीं सकते, पर एक-एक प्रक्रिया अगर हमारे सामने रहे कि हाँ इस तरह होता है, बुलाता कौन है इन कर्मों को, ये आते कहाँ से हैं, ये कहीं और से नहीं आते, हमारे कर्मों से हम इन्हें बुलाते हैं, हम जो कुछ भी सुबह से शाम तक मन, वाणी और शरीर के द्वारा करते हैं वह एक तरह का बुलावा है इन कार्यों के लिये और निरन्तर मन-वाणी और शरीर से होने वाले कर्म हमारे साथ संस्कार की तरह जुड़ते चले जाते हैं। फिर उसके बाद हम मजबूर हो जाते हैं, अगर किसी व्यक्ति को गाली देकर के बात करने की आदत बन जाये तो फिर वह प्यार से बात नहीं कर पायेगा। वो जब भी बात करेगा एक-आध उसके मुँह से गाली स्लिप हो जायेगी। स्लिप हो जायेगी, कह रहा हूँ क्योंकि उसके भीतर वैसा संस्कार बन गया है तो इन कर्मों को कोई बुलाता नहीं है। इन कर्मों का संस्कार हमने बहुत-बहुत पुराना अपने ऊपर डाल रखा है। कहीं पानी बह जाये और फिर सूख जाये और अगली बार पानी गिरे तो वो जो एक लाइन बनी रहती है वहीं से बहता है। वो पानी ठीक ऐसा ही हमारे साथ है। हम निरन्तर अपने मन, वाणी और शरीर से कर्मों के संस्कारों को, आमंत्रण देते हैं और फिर इतना ही नहीं हमारे भीतर उठने वाले काम, क्रोध, मान, माया, लोभ ये जितने भी भाव हैं, चाहे वे शुभ हों व अशुभ हों, चाहे वे तीव्र-मंद हों, चाहे वे जान-बूझकर किये गये हों या कि अज्ञानता से हो गये हों, किसी भी तरह के भाव हों, किसी माध्यम से हुए हों, लेकिन हमारे भीतर उठने वाले भाव, कैसा ये कर्म अपना फल चखायेगा इस बात को निर्धारित करते हैं। एक पण्डित जी गाँव में गये, वचनिका के लिये। कोई नहीं था मंदिर में जब पहुँचे। माली जी से कहा कि भई जाओ तो दो-चार लोगों को बुला लाओ; कहना कि भई पण्डित जी आ गये। अब माली जी क्या समझें। माली जी गये और 4-5 लोगों को बुलाकर ले आये। वो 4-5 लोग जैसे ही आये तो पहले वाले से पूछा पण्डित जी ने, आप कैसे, तो उसने कहा कि ये बुला लाये, माली जी हमको, हम तो रिक्शा चलाते हैं।

अरे, नहीं, आपको नहीं बुलाया, आप तो जाइये। दूसरे वाले व्यक्ति को देखा तो वो जरा युवा था। पण्डित जी को ध्यान आ गया कि भई शाम को रिजर्वेशन करवा लें, जाना है गाड़ी से, तो यह युवा ठीक है, उससे कहा कि सुनो ये मेरी टिकट बनवा दो, उसको पैसे दिये। पहले वाले को, तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, तुरन्त वापस लौटा दिया, बुला तो लिया था सबको, 5-7 लोगों को। लेकिन उसमें से किसको कितनी देर रखना है, ये कौन निर्धारित करता है मेरे अपने परिणाम, उससे मेरा कोई ज्यादा सरोकार नहीं है, रिक्शे वाले से, तो जाओ भैया; इनसे थोड़ा सरोकार है, टिकट लेने भेज दिया है। बाकी जो तीन-चार बचे उनसे कहा कि सुनो, चलो थोड़ी अपन बैठकर धर्म चर्चा कर लेते हैं, हम आये हैं तो घण्टे भर उनसे धर्म चर्चा करी, उतनी देर उन 4-5 को रोका घण्टे भर और उसमें से जब विदा लेने लगे तो एक ने कहा कि पण्डित जी आपकी आवाज से तो लग रहा है कि आप फलानी जगह से आये हैं आप। हाँ भैया। तो हमारी भी उधर रिश्तेदारी है, अरे तो बहुत अच्छा है बैठो आओ अपन बात करें। वो जो वचनिका सुनने वाले थे वो वचनिका सुनकर चले गये, उसमें से एक परिचित निकल आये तो उनके साथ और घण्टे भर हो गया और फिर बाद में परिचय इतना गहरा निकला कि पण्डित जी अब आपको शाम के भोजन के बिना नहीं जाने देंगे। हमारे यहाँ चलो आप, वो उनको अपने घर ले गये। बताइयेगा, किसने निर्धारित किया ये कि कौन कितनी देर साथ रहेगा और कौन-कौन आयेगा। हमने ही बुलाया है और हम ही जितनी देर रखना चाहें रख सकते हैं, ये हमारे ऊपर निर्भर है। कर्म भी ऐसे ही हैं हमारे मन, वाणी और शरीर से इनको हम आमंत्रण देते हैं कि आओ और फिर हमारे अपने परिणाम जैसे होते हैं उसके अनुसार ये हमें फल चखाते हैं, हमारा जिसके साथ जैसा व्यवहार होता है उससे हमें वैसा ही तो मिलता है। वैसा ही फल हमें चखने में आता है। इस तरह यह कर्म की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। क्योंकि सोते, जागते, खाते-पीते, उठते-बैठते, आते-जाते हर स्थिति में, मैं मन, वचन और कर्म की कोई ना कोई क्रिया करता ही रहता हूँ। सोते समय मेरे मन और शरीर की सक्रियता बनी रहती है और इसीलिये निरन्तर मेरे साथ ये कर्म चलते ही रहते हैं। एक क्षण के लिये भी मैं, कोई भी यहाँ पर जीव कर्म से मुक्त नहीं हो पाता, चाहे वो करने वाले कर्म हों, चाहे वो भोगने वाले कर्म हों, चाहे वो संचित होने वाले कर्म हों, एक क्षण के लिये भी यह प्रक्रिया रुकती नहीं है। जैसे कि किसी की दुकान बहुत अच्छी चलती हो और घर आकर के माँ से वो कहे माँ के पूछने पर कि आज तो दुकान बहुत चली, ग्राहकों में उलझे रहे तो माँ कहे कि क्या एक ही ग्राहक में उलझे रहे? कहता है कि नहीं-नहीं ग्राहकों का ताँता लगा रहा। एक ही कर्म का फल भोगते रहते हैं हम ऐसा नहीं है, एक ही

कर्म करते रहते हैं ऐसा नहीं है, वरन् उसका ताँता लगा रहता है। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, कहने में तो यही आता है कि हम कर्म करते रहें चाहे वो भले हों, चाहे वो बुरे हों, चाहे वो अच्छे भावों से किये हों, चाहे वो तीव्रता से किये हों, चाहे मन्दता से किये हों, चाहे जान-बूझकर किये हों, अज्ञानतावश किये हों, किसी से प्रेरित होकर के किये हों या कि अपने स्वयं सहज भाव से किये हों, निरन्तर कोई ना कोई प्रकार से हम और ये ताँता लगा ही रहता है। कन्टीन्यूटी बनी ही रहती है और ऐसा नहीं है कि आज ही हमने शुरू किया है, हमें याद भी नहीं है जब से हमारा जीवन है तब से यह मन, वाणी और शरीर तीनों की सक्रियता बनी हुई है। जब तक ये मन, वाणी और शरीर की सक्रियता है, तब तक मेरे कर्म आते रहेंगे और जब तक मैं कोई ना कोई शुभ-अशुभ भाव करता रहूँगा काम, क्रोध, मान, माया और लोभ के परिणाम जो विकारी मेरे भीतर उठते हैं वे जब तक चलते रहेंगे, तब तक ये कर्म की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहेगी। कर्म की प्रक्रिया इस तरह की है।

इस कर्म की प्रक्रिया में भागीदारी किसकी है, अब इस पर जरा सा विचार करें तो शायद बात और क्लियर हो। ताकि हम जिनकी पार्टनरशिप है वो खत्म कर देवें तो सम्भव है कि इस कर्म बंध की प्रक्रिया से हम निजात पा जावें, क्योंकि प्रक्रिया तो ये निरन्तर चलने वाली है, समझ में आ गया क्योंकि कोई भी क्षण ऐसा नहीं है जिससे हम कर्म से मुक्त हो। यह सब चीजें हम बाद में विचार करेंगे कि भवितव्य क्या है और हमारा वर्तमान का पुरुषार्थ क्या है ? कुछ प्रश्न थे कल कि भाग्य कितना और पुरुषार्थ कितना। और भी कुछ प्रश्न थे इन पर भी विचार करना है। मैं करूँगा पर आज के दिन नहीं। आज तो कर्म की साझेदारी में कौन-कौन मेरे साथ है, इस पर थोड़ा सा विचार करेंगे और इस कर्म बंध की प्रक्रिया को समझेंगे कि उसकी साझेदारी को समझने के बाद अपने आप यह बात समझ में आ जायेगी कि कितना मेरे भाग्य से और कितना मेरे पुरुषार्थ से, और भाग्य को और पुरुषार्थ को कौन निर्धारित करता है ये सब चीज समझ में आयेगी। एक बहुत अच्छा विचार मेरे पास आया था शाम को, किसी ने लिखकर के दिया था कि मुझे अपनी उस परम विशुद्ध अवस्था को प्राप्त करना है। ये बात तो ठीक है लेकिन सिर्फ उस परम विशुद्ध अवस्था को ही प्राप्त करने के लिये मैं सारी चीजें करूँ ये बात सबको हो सकता है कि ठीक ना जान पड़े। तो क्यों ना हम ऐसा करें कि मेरा जो वर्तमान का जीवन है मुझे उसे ही बहुत अच्छे ढंग से जीना है। अगर इतना भी कर लें तो बाकी जो बहुत-बहुत कठिन से विचार हैं कि ईश्वर क्या है और ईश्वर कहाँ रहता है और ईश्वर को बनाया किसने है या

कि ईश्वर ने इस सृष्टि को बनाया है, इन सारी बातों को यदि हम सिर्फ विचार तक ही रखें और करने के लिये तो सिर्फ इतना ही है कि हम अपने लक्ष्य को ध्यान में रखकर के अपने वर्तमान को अगर सुधारें तो क्या यह एक विचार नहीं हो सकता। मैं इस विचार से सहमत हूँ। यह भी एक विचार है और हम इतने दिनों से वही करते आ रहे हैं कि हम बाकी सब भूल कर के, बाकी सारे प्रपंच को भुलाकर के, सिर्फ एक ही बात तय कर लें कि कल जैसा मैंने जिया था जीवन, कल मैंने जैसी वाणी बोली थी, कल मैंने जैसे विचार किये थे, कल मैंने शरीर से जैसी चेष्टा की थी जिनसे कि मैं निरन्तर मेरे कर्मों का संसार बढ़ाता हूँ, मैं उसको और बेहतर ढंग से करूँ। कर्मों को बेहतर ढंग से करने का मतलब है कर्मों से मुक्त होना और कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। कर्म जितने बेहतर ढंग से हम करेंगे, बेहतर ढंग क्या है और जो व्यक्ति ये ढंग सीख लेता है वह व्यक्ति कर्मों से पार हो जाता है। यह बात हम आगे समझेंगे और मैं इस विचार से सहमत हूँ। अब हम इस बात को थोड़ा सा डिस्कस कर लेवें कि इसमें भागीदारी किस-किसकी है - मेरे मन, वाणी और शरीर और मेरे अपने भाव उनको रोकने में, उनको सामर्थ्य देने में। कर्मों को जो बँध जाते हैं मेरे साथ, जो बाद में फल देते हैं उनको सामर्थ्य भी मैं ही देता हूँ। मेरे अपने परिणाम उनको सामर्थ्य देते हैं। तब देखें कि कौनसी चीजें हैं। तीन चीजें हैं, मेरी अपनी आसक्ति, मेरा अपना मोह ये कर्मों के बंधन में पहला भागीदार है। इसमें मेरी परवशता है क्योंकि ये संस्कार मोह का और आसक्ति का बहुत पुराना चला आ रहा है, ये मेरे हाथ की नहीं है। यह परवश है साझेदारी। दूसरी है मेरे अपने वर्तमान के पुरुषार्थ का निर्धारण, भला कर्म है या कि बुरा ये साझेदारी मेरे कर्मों के बंधन में इसकी भी है। मेरे वर्तमान पुरुषार्थ की भी साझेदारी है; वो भला भी हो सकता है और बुरा भी हो सकता है। यह निर्धारित मैं करता हूँ। यह मेरे स्ववश है। मोह व आसक्ति में थोड़ा परवश हूँ, लेकिन वर्तमान के पुरुषार्थ जो कि मेरे हाथ में हैं और तीसरी बात इस कर्मबंध की प्रक्रिया के बारे में गाफिलता, लापरवाही और अज्ञानता। ये तीसरा साझीदार है मेरे कर्म बंध की प्रक्रिया में, ये भी मेरे हाथ में है। तीन में से दो मेरे हाथ में हैं। एक में जरा मैं परवश हूँ। ये तीन भागीदार हैं मेरे। इसमें से जिससे मैं परवश हूँ उस पर पहले विचार कर लूँ। ये जो मेरा मोह है, मेरी जो आसक्ति है मेरे जो कर्म करने का ढंग निरन्तर, आज वर्तमान में जो कोई यह कहे कि शांत बैठो तो उसको निठल्ला मानेंगे। क्या कुछ भी नहीं करते हो, कुछ करो, ये जो कुछ करो वाली प्रक्रिया है इस संसार के मोह की वजह से, वो मेरी अपनी परवशता जैसी हो गई है कि कुछ करो, लगे रहो अशुभ में, लगे हो तो अशुभ में लगे रहो, शुभ में लगे हो तो शुभ में लगे रहो।

मुझे शुभ और अशुभ दोनों के बीच साम्य भाव रखकर के जीना है। यह बात ख्याल में ही नहीं आती। मेरा मोह मुझे निरन्तर कर्म करने के लिये प्रेरित करता रहता है, मेरी आसक्ति मुझे निरन्तर संसार के कर्म करने के लिये। थोड़ी देर के लिये जब मोह शांत होता है तब संसार के कर्मों से ऐसा लगने लगता है कि अब बहुत हुआ, टू इनफ, वर्ना तो कई बार हम संसार के कार्य द्वेषवश छोड़ देते हैं, हमसे नहीं होता कहाँ तक करें हम रागपूर्वक या कि द्वेषपूर्वक; दोनों स्थितियों में मैं निरन्तर कर्म में संलग्न रहता हूँ तो मेरा मोह जो है वो मेरे इस कर्म के बंधन में सबसे बड़ा भागीदार है और मेरा वर्तमान का पुरुषार्थ तो है ही और मेरी अज्ञानता भी है। कर्म कैसे कितनी जल्दी बँध जाते हैं, मैं जानना ही नहीं चाहता। ये है मेरी लापरवाही, मेरी अज्ञानता। मैं अगर थोड़ा सावधान हो जाऊँ तो शायद इस प्रक्रिया में, मैं थोड़ा सा बदलाहट कर सकता हूँ। मैं परिवर्तन भी कर सकता हूँ। मोह क्या चीज है, सब कहते हैं कि मोह है क्या चीज ? आचार्य भगवंतों ने उसका लक्षण बताया है; उसे डिफाइन नहीं किया उसका लक्षण बता दिया। अरहंत भगवान के प्रति अश्रद्धा होना और जीवों के प्रति करुणा का अभाव होना यह मोह का लक्षण है। देखें जरा इस पर विचार करें शायद इससे बच सकें हम।

अरहंत भगवान के प्रति श्रद्धा नहीं होना। अरहंत भगवान मतलब जो अपनी विशुद्ध अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं या कि जो राग-द्वेष के संसार से ऊपर उठ चुके हैं, याने जो वीतरागी हैं तो वीतरागता के प्रति रुचि नहीं होना, संसार के प्रपंच में रुचि होना उसका नाम है मोह। बहुत सीधी सी चीज है राग-द्वेष में रुचि है सुबह से शाम तक और वीतरागता में रुचि नहीं है यही तो मोह है और यही मेरे कर्म बंध की प्रक्रिया का सबसे बड़ा भागीदार है, सबसे बड़ा पार्टनर है ये और दूसरी चीज मेरे अपने सुख-सुविधा के साधनों को जुटाने के लिये मेरे अन्दर की दया और करुणा का अभाव। ये जो दया और करुणा का अभाव है वो भी मोह का लक्षण है और मेरे अपने इस जीवन को सुख-सुविधा जुटाने की जो आसक्ति है वो आसक्ति मेरे भीतर की दया और करुणा को गायब करती है, तो दया और करुणा का अभाव होना भी मोह है। तो फिर मैं क्या करूँ ? मैं इस मोह से बचने के लिये अरहंत भगवान के प्रति या वीतरागता के प्रति अपनी श्रद्धा को जाग्रत कर अपनी रुचि को बढ़ाऊँ, अपना रुझान, अपना झुकाव उस तरफ करूँ। मैं उन चीजों से दूर रहूँ जिनमें कि राग-द्वेष के अवसर ज्यादा हैं। मैं उन चीजों के सम्पर्क में ज्यादा रहूँ जिससे राग-द्वेष घटता हो। जिसमें वीतरागता की तरफ मेरे कदम बढ़ते हों और मैं उन प्रक्रियाओं को दिन भर में करूँ जिनसे मेरे भीतर दया और करुणा का भाव बढ़ता हो। मैं

दया और करुणा दोनों को बनाये रखूँ, तब हो सकता है कि मैं अपने मोह को जीत सकूँ और इस कर्म बंध की प्रक्रिया को कम कर सकूँ। इसके लिये छोटा सा उदाहरण अपन देखें। हमारे भीतर दया और करुणा का किस तरह अभाव हो गया है, एक व्यंग्य किया है किसी ने। हाँ उससे जल्दी समझ में आ जायेगा। मुझे लगता है आज मैंने कोई बहुत बढ़िया सी एक कहानी सुनायी भी नहीं है। वो उदाहरण याद रह जायेगा कि मेरी अपनी आसक्ति क्या है ? और इस आसक्ति के चलते मेरे अन्दर की जो वीतरागता के प्रति रुचि और मेरे अन्दर की जो करुणा का भाव, जो कि मेरा अपना स्वभाव है वो कैसे निरोहित हो गया है, कैसे हट गया है।

क्या हुआ, एक भिखारी नया आया गाँव में - शहर में। अब वह नया था उसे क्या मालूम कि कौनसी दुकान के सामने जाने से मिलेगा और कौनसी दुकान पर जाने पर नहीं मिलेगा। बाकी जो वहाँ उस गाँव के या शहर के भिखारी थे उनको तो मालूम है कि इस दुकान पर जायेंगे, एक बार कहेंगे एक बार में मिल जायेगा, और इस दुकान पर जायेंगे जरा दो बार कहेंगे, हाथ-पाँव जोड़ेंगे तो मिल जायेगा और इस दुकान पर जाना ही नहीं क्योंकि कितना ही माथा पटक लो, यहाँ नहीं मिलने वाला। और वो माँगने वाला भिखारी जानता नहीं था, बेचारा और वो ऐसी दुकान पर पहुँच गया जहाँ से आज तक किसी को कुछ नहीं मिला और दूसरे भिखारी दूर खड़े मंद-मंद मुस्करा रहे हैं कि नया-नया है उसको मालूम नहीं है, बेकार परेशान होगा उस दुकान पर जाकर। अब उसको क्या मालूम लेकिन उस दुकान का जो सेठ था सबको मालूम है कि वो अत्यन्त आसक्त है अपनी धन-सम्पदा में, खुद भी ठीक से नहीं खाता, दूसरों को तो देने का सवाल ही नहीं। अब ऐसे व्यक्ति के बारे में लगाव बहुत था लोगों को कि देखें, भिखारी गया है, बहुत दिनों के बाद, डाँटेगा वो दुष्ट, लेकिन उस दिन उसने डाँटा नहीं, भिखारी को, "क्यों ? क्या चाहिये।" "कुछ मिल जाये मालिक", "लगता है, नये आये हो।" "आज ही आया हूँ, भगवान आज ही इस शहर में नया आया हूँ।" अच्छा, अब सेठजी को भी जरा मजा आया, पता नहीं कौनसे मूड में थे तो जरा मजा लेने का हुआ। बोले, "सुनो मेरी दोनों आँखें देख रहे हो, तो तुम बता सकते हो मैंने इसमें से कौनसी नकली लगवाई है और कौनसी असली है।" जरा असमंजस में पड़ गया वो लेकिन भिखारी तो भिखारी ही था, उसने दुनिया देखी है लोगों की आँखें देखकर जानता है वो, भले ही नया हो वो और मुश्किल से 30 सैकिण्ड लगे होंगे और कहा कि सेठजी दाहिनी वाली ओरिजनल है बाईं डुप्लीकेट। सेठजी दंग रह गये। सेठजी ने तो यह सोचा था कि यह बता पायेगा नहीं और

इसलिये कुछ देऊँगा नहीं। देना भी पड़ेगा क्योंकि कमिट कर चुके थे कि तुम अगर सही बतायेगा तो कुछ दे दूँगा भिक्षा में; तो बड़ी जोर से हँसकर कहा कि तुम आज जीत गया और आज मेरा मन हो रहा है कि तेरे को कुछ दे दूँगा। सारे भिखारी खड़े हैं दूर, देख रहे हैं, नया भिखारी - इसको कुछ मिल रहा है लगता है! लेकिन एक बात, '' मैं तेरे को पूछना चाहता हूँ वो बस बता दे तो मान जाऊँगा।'' '' क्या सेठजी ?'' ''कि तेने पहचाना कैसे कि ये ओरिजनल है और ये डुप्लीकेट है।'' तो वो बोला, '' इसमें क्या है, जिसमें थोड़ी करुणा झलक रही है, मैं समझ गया कि वही डुप्लीकेट है क्योंकि ओरिजनल वाली में तो सम्भव ही नहीं है कि थोड़ी बहुत करु णा हो, वहाँ तो सिर्फ मोह ही दिखाई पड़ रहा है आसक्ति ही दिखाई पड़ रही है, वो जो डुप्लीकेट आँखें हैं उसमें थोड़ी करुणा दिखाई पड़ रही है।'' क्या यह उदाहरण इस बात की सूचना नहीं देता है कि मेरा मोह, मेरी अपनी करुणा को नष्ट कर देता है ? मेरी अपनी जो वास्तविकता है उससे मुझे विमुख कर देता है, मुझे राग-द्वेष में डाल देता है। मुझे वीतरागता से विमुख कर देता है। शायद इसीलिये आचार्यों ने लिखा कि वीतरागता में रुचि होना, जहाँ धर्म की बात हो रही हो, जहाँ आत्मा के विकास की बात हो रही हो, वहाँ इन्टरेस्ट नहीं है, पर जहाँ प्रपंच हो, वहाँ इन्टरेस्ट है। ये ही तो मेरा मोह है। और जहाँ प्राणी मात्र के प्रति करुणा होनी चाहिये, जहाँ क्षण भर को मेरी अन्तर्आत्मा दया का भाव लाती हो, उसी समय मेरी ये आसक्ति कहती है कि ''ठहरो - ऐसे कहाँ तक दया करते रहोगे ? किस-किस पर करोगे?'' ऐसा मुझे सलाह देता है मेरा मोह। मुझे इस प्रक्रिया में इस सबसे ज्यादा खतरनाक भागीदार पर विचार करना चाहिये ताकि मैं इस कर्म बंध की प्रक्रिया से बच सकूँ। और दूसरे नम्बर पर मेरे अपने वर्तमान का पुरुषार्थ मुझे भला करना है या बुरा करना है, ये मेरे ऊपर निर्भर है। इसमें किसी का कुछ भी नहीं है। ये बात जरूर है कि भले और बुरे की प्रेरणा मेरे भीतर जो संचित कर्म हैं वे मुझे देते हैं लेकिन कितने भी संचित कर्म बुरे क्यों न हों, मेरी अन्तर्आत्मा की बात को दबा नहीं पाते हैं। चोरी करने वाले चोर की भी एक बार अन्तर्आत्मा की आवाज उसे चोरी करने से रोकती है, उसे भला करने की प्रेरणा देती है, इसीलिये मेरे अपने वर्तमान का पुरुषार्थ भला करना है या बुरा करना है इसकी च्वाइस मेरी अपनी है। इस पर मेरा पूरा का पूरा अधिकार है, इसीलिये इस बात पर विचार करना चाहिये कि मुझे अपने जीवन में शुभ और अशुभ में से किसे चुनना है जबकि मेरे सामने दो ही ऑप्शन हैं। शुद्ध - वो तो मेरा लक्ष्य है। लेकिन मेरे सामने ऑप्शन तो शुभ और अशुभ दो में से एक है तो मेरे वर्तमान का पुरुषार्थ शुभ की तरफ होना चाहिये। अशुभ की तरफ नहीं होना चाहिये और तीसरी चीज जब ये कर्मबंध निरन्तर चलता रहता है, तब मैं

क्यों इतना लापरवाह हूँ ? तब मैं क्यों इस कर्म बंध की प्रक्रिया को ठीक-ठीक समझना नहीं चाहता हूँ ?

मुझे समझ लेना चाहिये, क्योंकि कर्म बंध की प्रक्रिया को समझ लेने से मैं उसमें परिवर्तन कर सकता हूँ इसलिये तीसरी भागीदारी भी मेरे हाथ में है ? मैं जितना अपना कर्मबंध की प्रक्रिया में ज्ञान बढ़ाऊँ, उतना मेरे अपने कर्म बंध की प्रक्रिया को बदलने की सुविधा मुझे प्राप्त हो जायेगी। एक उदाहरण है, मैं शायद पहले दे चुका हूँ। मैं जौहरी बाजार में था तब। मुझे आचार्य महाराज ने सुनाया था। मडावरा में एक पण्डितजी थे पं. हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्री का बड़ा ज्ञान था। करुणानुयोग का बड़ा ज्ञान था उनको, कर्म फिलासपी बहुत अच्छी जानते थे और वो रोज वचनिका करते थे और समझाते थे कि देखो भैया कर्म कैसे बँधते हैं जैसे अपने परिणाम हों, तीव्र हो, मंद हो, जान-बूझकर अपन करेंगे और कोई-कोई चीजें ऐसी हैं जो अनजाने में हो जाती हैं अपन से। देखो इन सबसे अलग-अलग कर्म बँधते हैं - ऐसा समझाते थे वो हमेशा। उसमें एक व्यक्ति गरीब भी बैठता था - रोज। एक दिन वो पकड़ा गया, चोरी करते पकड़ा गया। पंचायत बैठी, कि भैया तुमने चोरी क्यों की और चोरी भी ऐसी करी गैर बुद्धिमानी की कि अपने ही पास सात घर दूर जहाँ वो रहता था। वहाँ से पाँच-सात घर दूर किसी व्यक्ति का मकान था। उनके यहाँ गायें बँधी थीं सो उनको डालने का भूसा रखा था। भूसे का बोरा वो उठाकर के ले गया और ऐसा बुद्धू कि वो उसमें छेद था सो वो भूसा जो है लाइन बनती गयी उसके घर तक। भैया ने चोरी भी करी तो ऐसी गैर बुद्धिमानी से करी। वो पकड़ में भी आ गया और पकड़ में आया सो कह भी दिया कि चुरा तो हम ही लाये हैं, सारी बात स्वीकार कर ली। लोग जानते हैं कि रोज वचनिका में बैठता है पण्डितजी के। बात कुछ और है, आदमी चोर नहीं मालूम पड़ता, कोई और बात है। क्या बात थी भैया तो उसने कहा - तीन दिन हो गये, न हमारे घर से और न हमारे पेट में भोजन गया, सो हमने सहन कर लिया - पानी पीकर, लेकिन कल हमसे देखा नहीं गया। हमारा छोटा सा बेटा दूध के लिये जिद्द कर रहा था। हमारे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है, पानी कब तक पिलायें उसको। उसके लिये दूध चाहिये था, सो ये सवा रुपये का बिकेगा और उतने में मुझे दो-तीन दिन के लिये इसके लायक दूध आ जायेगा। तब तक कोई और काम देख लूँगा, तो मैंने सोचा कि और ज्यादा चोरी क्यों करना ?

पण्डितजी हमेशा बताते हैं कि अपन को ज्यादा तीव्र परिणामों से कर्म नहीं करना, मन्दता रखना, कषायें जितनी ज्यादा प्रबल होंगी, उतना तीव्र कर्म बँधेगा। मेरी इतनी

ज्यादा लोलुपता नहीं थी, मेरी इतनी ज्यादा कषाय नहीं थी, मुझे तो सवा रुपया चाहिये था। और भी सामान वहाँ रखा था। एक उनकी घड़ी उठा करके ले आते तो और ज्यादा की बिकती और वहीं सोने की अँगूठी रखी थी। हम उसे उठा सकते थे लेकिन हमने सोचा कि अपन को कीमती का क्या करना, कौन कोई अपन को ज्यादा जमा करके रखना है; सवा रुपये का ये ले चलो इससे काम चल जायेगा। भैया मैंने आपको उदाहरण सुनाया। यह किस बात के लिये सूचना दे रहा है। सूचना सिर्फ इस बात की है कि मेरे अपने कर्म-बोध की अज्ञानता मेरे कर्म बंध को ज्यादा बढ़ा देती है। अगर मैं कर्म बंध में सावधानी रखूँ, मैं उसका ज्ञान रखूँ तो शायद मैं अपने इस कर्म बंधन की प्रक्रिया में अपने मन मुताबिक परिवर्तन कर सकता हूँ। मैं इतना मजबूर नहीं हूँ। मैं सिर्फ अपनी आसक्ति और मोह की वजह से थोड़ा मजबूर हूँ क्योंकि एक पार्टनर ऐसा है। लेकिन दो ऐसे हैं जिनमें कि मेरा वर्तमान का पुरुषार्थ और मेरा ज्ञान दोनों मिलकर के इस प्रक्रिया को परिवर्तित कर सकते हैं। इस तरह हमने आज थोड़ी सी चर्चा अपनी इस कर्म बंध की प्रक्रिया पर की और हमने समझा कि - कैसे ये कर्म जो हम करते हैं, हमारे साथ बँधते चले जाते हैं। हमें कैसे ये अपना फल देते हैं और ये प्रक्रिया कैसे निरन्तर चलती रहती है। मेरा मोह मेरे वर्तमान का पुरुषार्थ और मेरी अपनी अज्ञानता कर्म बंध के प्रति इसको बढ़ाती चली जाती है। मैं अगर अपने पुरुषार्थ को सँभाल लूँ, मैं अपने ज्ञान को बढ़ा लूँ और मैं अपने मोह को घटाता चलूँ, वीतरागता के प्रति मेरा रुझान बढ़ता जाये तो शायद इस कर्म बंध की प्रक्रिया में कुछ परिवर्तन मैं कर सकता हूँ। इसी भावना के साथ कि हम इस कर्म बंध की प्रक्रिया को समझकर इस कर्म से मुक्त हो सकें।

○○○

कर्म कैसे करें?

भाग - 3

हम सब यहाँ इस बात के लिये एक साथ बैठे हैं कि विचार करें कि जिस तरह का जीवन हमें प्राप्त हुआ है, इसकी जिम्मेदारी किसकी है? उसका उत्तरदायी कौन है ? जीवन को सुखपूर्वक या दुःखपूर्वक, ज्ञान के साथ या अज्ञान के साथ, अत्यन्त वैभव समृद्धि के साथ या कि दीन-हीन और दरिद्रता के साथ जीने की मजबूरी किसने हमको सौंपी है ? क्या कोई इन सबका विधाता और स्वामी है ? जो हमारे जीवन को इस तरह जीने के लिये मजबूर करता है। और हमने बहुत स्पष्ट रूप से विचार करके यह जान लिया है कि यह काम किसी और का नहीं है, यह काम मेरे अपने कर्मों का है। मैं यहाँ निरन्तर मन, वाणी और शरीर से जो भी करता हूँ और जिस तरह के परिणाम या भाव मेरे होते हैं, मेरे थोट्स (विचार) और फीलिंग्स (भावनाएँ) जैसी होती हैं वैसा मेरा जीवन निर्मित होता चला जाता है।

मेरे अपने इस जीवन के निर्धारण के, या कि मेरे अपने संसार के कर्मों के निर्धारण में या कि मेरे अपने संसार के कर्मों को निर्धारित करने में, मेरे साथ तीन चीजों की भागीदारी है। एक तो मेरी अपनी आसक्ति, मेरा अपना मोह, वह इसका पहला पार्टनर है, मेरे अपने जीवन को इस तरह से जीने के लिये मजबूर करने वाला पहला भागीदार अगर कोई है तो मेरा अपना मोह, मेरी अपनी आसक्ति है। और दूसरी मेरे अपने वर्तमान पुरुषार्थ की दिशा, मैंने जैसा पुरुषार्थ करने का तय किया है, तो वैसा मेरे कर्मों को और मेरे जीवन को बनाने में दूसरा हिस्सेदार है और तीसरी है मेरे अपने कर्मों के करने की अज्ञानता, मेरी अपनी लापरवाही, मेरी अपनी गाफिलता। ये तीन चीजें हैं जो कि मेरे जीवन को निर्मित करती हैं। जिनसे कि मेरे जीवन में, और मैं इस संसार में जिनको मैं देखता हूँ उनके जीवन में जो विविधता है उन सबके लिये एक ही चीज है - उस व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाला कर्म। कर्म किया भी जाता है। हम रोज कर्म करते हैं, मन से करते हैं, वाणी से करते हैं, शरीर से करते हैं और इतना ही नहीं, हम अपने किये गये कर्मों का फल भी भोगते हैं तुरन्त

भी भोगते हैं; और उसके इफेक्ट्स भी होते हैं। वे भी हमें ही भोगने पड़ते हैं। और इतना ही नहीं, इन कर्मों के फल भोगते समय मैं जैसे परिणाम करता हूँ, जैसा मेरा पुरुषार्थ होता है, खोटे या भले मेरे भाव होते हैं उससे मेरे आगे के कर्म मैं स्वयं निर्धारित कर लेता हूँ। कर्म मुझे मनचाहा फल दें या कि कर्मों से मैं अपना मनचाहा फल पा लूँ, ये दोनों बातें पूरी तरह सच नहीं हैं। आधी सच हैं, कर्म मुझे मनचाहा फल दें, ऐसा भी नहीं है। तो फिर बात क्या है, ये जरा कर्म बंध की प्रक्रिया को समझें। जो अज्ञानता है वो जरा ठीक करनी पड़ेगी मुझे और अपने पुरुषार्थ को ठीक दिशा देनी पड़ेगी क्योंकि ये दोनों मेरे बस में हैं। मेरा मोह, मेरी आसक्ति उस पर मेरा उतना जोर नहीं चलता है लेकिन मैं डायरेक्ट नहीं, मैं इन-डायरेक्ट अपने उस मोह और आसक्ति पर कंट्रोल कर सकता हूँ। मेरे अपने पुरुषार्थ से और कर्म बंध की उस प्रक्रिया की अज्ञानता को दूर कर सकता हूँ। ये मेरे मन में विश्वास जाग्रत होना चाहिये, वरना तो फिर कर्म जैसा फल मुझे देना चाहेंगे, मुझे भोगने की मजबूरी है और या फिर दूसरा यह है कि मैं ऐसा पुरुषार्थ करूँ कि मैं अपने कर्मों से मनचाहा अपना फल ले लूँ। दोनों ही चीजें नहीं हैं। कर्म तो सिर्फ इतना काम करता है कि मेरे चाहे गये कामों में बाधा डाल सकता है लेकिन अपना मनचाहा फल मुझे नहीं दे सकता। ये चीज समझने की है, ना हम कर्मवादी हैं ना हम भाग्यवादी हैं और ना हम पुरुषार्थवादी हैं। हम तीनों को व्यवस्थित रूप से समझ करके अपने जीवन को पुरुषार्थ के द्वारा अच्छा बनाने के लिये सक्षम हैं।

कर्म मुझे अपना मनचाहा फल दें, तब तो यह कर्मवाद हो गया। मैं अपना मनचाहा फल उससे ले लूँ यह तो पुरुषार्थवादीपना हो गया, यह तो अहंकार हो गया या कि मैं यह मानकर बैठ जाऊँ कि मेरी नियति, मेरा भाग्य ही ऐसा है, किसी ने लिख दिया है मेरे माथे पर, ऐसा भी नहीं है। मुझे इन तीनों बातों को ठीक समझना पड़ेगा। कर्म तो ठीक ऐसा है कि मेरे सामने थाली परोस करके रख दी है, लेकिन मुझे क्या खाना है, कितना खाना है, कैसे खाना है, कब खाना और कब नहीं खाना है, ये मेरे पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। कर्म मेरे सामने थाली की तरह परोसकर के रखी हुई चीज की तरह है और वह भी किसी और ने मेरे लिये नहीं बाँधा है। मैंने अपने कर्म करके अपने आगे के लिये उसे संचित किया है और कर्म तो ऐसा है जैसे कि मैं घर में चना लेकर के आया हूँ तो मजबूरी नहीं है कि मैं कच्चे ही खाऊँ। मैं उन चनों को भूनकर के खा सकता हूँ, उनका सत्तू बनाकर के खा सकता हूँ, ये मेरा पुरुषार्थ है, कर्म तो मेरे पास चने की तरह आया है। मैंने अपने आँगन में एक पेड़ लगाया है आम का, तो मेरी यह मजबूरी नहीं है कि मैं कच्चे आम खाऊँ या पकने पर खाऊँ।

क्या हुआ कि एक व्यक्ति खेती करता था और हर साल कभी इल्ली लग जाती थी, कभी बाढ़ आ जाती थी, कभी पानी नहीं बरसा, कुछ ना कुछ हो जाता था और फसल ठीक-ठीक आ ही नहीं पाती थी। रोने का कारण समझ में आता था। दुःख का कारण समझ में आता था कि ठीक तो है कि इस बार पानी जरा कम गिरा है तो ठीक फसल नहीं आई है, इस बार पानी जरा ज्यादा गिर गया है तो फसल सड़ गई है और इस बार तो जो है इल्ली लग गई है तो फसल सारी खराब हो गई है। भाई, दुःख का कारण है और सब लोग उसको सहानुभूति देते थे, उसके दुःख में। लेकिन एक साल ऐसा हुआ कि न इल्ली लगी, न पानी कम गिरा, न ज्यादा गिरा और फसल खूब अच्छी रही। कुछ भी सामान गड़बड़ नहीं हुआ, कुछ भी नहीं सड़ा। लेकिन उस व्यक्ति को देखा लोगों ने उतना ही दुःखी जितना कि पिछले वर्षों में दुःखी रहता था। अब तो दुःख का कोई कारण नहीं समझ में आ रहा है। पुण्य का अच्छा उदय है उसके और सारा खलिहान भरा पड़ा है। अनाज अच्छा-खासा है। अब उससे पूछा कि दुःखी क्यों हो, इतना बढ़िया अनाज आया है। कहता है कि दुःख इस बात का है कि कुछ भी खराब क्यों नहीं हुआ, क्योंकि खराब नहीं हुआ तो ढोरों को क्या खिलाये ? अपने खाने को तो ठीक है, जानवरों को खाने को नहीं है। कुछ सड़ जाता तो कम से कम जानवरों को खिलाने के काम आता। आप सब कुछ होते हुए भी दुःखी हैं। यह आपका कर्म नहीं, कर्म ने तो आपके लिये सारा-सारा इंतजाम कर दिया था, लेकिन आप उसमें से दुःख निकालना चाहें तो यह आपका पुरुषार्थ है और दुःख आने पर भी हम उस पर ज्यादा ध्यान ना दें, महत्व न दें, और अपन काम में लगे रहें, तो भी कर्म अपना मनचाहा फल हमें नहीं दे सकता। फल तो देगा किन्तु अपना मनचाहा फल नहीं दे सकता और जैसा बाँधा है, वैसा भोगने की मजबूरी नहीं है हमारी। यह बात हमें समझ में आनी चाहिये।

हमने पानी की टंकी अपने घर के ऊपर बनवायी है। ठण्ड के दिन में नहाने का मन है और जैसे ही टोंटी खोलते हैं तो ठण्डा पानी आया है। बन्द कर दो, मजबूरी नहीं है कि ठण्डा पानी सिर पर गिरने दिया जाए। बन्द कर दो, और इतना ही नहीं थोड़ा वेट करो, धूप निकलेगी, पानी गर्म हो जायेगा या फिर Coil चालू करो, पानी गरम हो जायेगा। जब तक टंकी में है और नल की टोंटी से नहीं आया है, तब तक जो परिवर्तन करना हो वो हम कर सकते हैं। हमारे मन के अनुकूल हम उसको जिस तरह का चाहें उस तरह का और टोंटी में से आना भी शुरू हो जाये तब भी वो धार निकलने से पहले हम एक सिस्टम उसमें लगा सकते हैं पानी गरम करने का। एक क्षण पहले तक कर्म अपना फल दे, उसके पहले तक

मेरा वश है - संक्रमण कहलाता है। उदय में आने के एक समय पहले मैं उसका इंतजाम कर सकता हूँ, उसके रस को बदल सकता हूँ, उसके स्वाद को चेंज करके उसका फल ले सकता हूँ। इतना मेरा वश है कर्म पर, यह बात मेरे समझ में आनी चाहिये।

कर्म बंध की प्रक्रिया समझना इसलिये अनिवार्य है कि मेरी अज्ञानता की वजह से मेरी पुरुषार्थहीनता बढ़ती है और पुरुषार्थहीनता की वजह से मेरा मोह मेरे पर हावी हो जाता है और फिर मेरे हाथ में कुछ नहीं रहता। मैं परवश हो जाता हूँ।

मोह मुझे परवश करे, जबकि मैं पुरुषार्थ हीन होऊँ और अपनी अज्ञानता को बढ़ाऊँ। नहीं मैं अपनी अज्ञानता को घटाऊँगा, पुरुषार्थ को बढ़ाऊँगा। देखें, वो मोह और आसक्ति मेरा क्या बिगाड़ कर सकती है। क्योंकि इसी संसार में रहकर के तीर्थंकरों ने भी प्राणी मात्र के कल्याण का उपाय बताया और स्वयं अपना कल्याण किया है। अपने पुरुषार्थ से किया है। अज्ञानता से कर्म बाँधे हैं तो मजबूरी नहीं है कि अज्ञानतावश उनको भोगे ही जावें। मैं ज्ञानपूर्वक भोग सकता हूँ। हाँ बस इतना ही है। मैंने अगर धोखे से किसी बुरे आदमी को इनवाइट कर लिया है तो कोई जरूरी नहीं है कि मैं उसको घर में पनाह दूँ। इंतजाम कर लूँ, ऐसा कर दूँ जिससे दूसरी बार आये तक नहीं। इतना इंतजाम जैसे हम अपने संसार के कामों का कर लेते हैं। वैसा ही हम अपने कर्मों पर भी कर सकते हैं तो कर्मों पर मेरा वश है क्योंकि वो मैंने बाँधे हैं।

"क्रियेशन इज नॉट मोर देन दी क्रियेटर", कोई भी कलाकृति किसी कलाकार से बड़ी नहीं हो सकती। कर्म मेरी कृति है, कर्म मेरा स्वामी नहीं है। वो मेरे बनाये हुए हैं, मेरे हाथ का मैल है वो कर्म। मैंने अपनी वाणी, मैंने अपने मन और मैंने शरीर की चेष्टाओं से उन्हें आमन्त्रण दिया है और मेरी अपनी फीलिंग्स, मेरे अपने थोट्स, जिनकी वजह से उनको मैंने शक्तिशाली बना दिया है। मैं अपने थोट्स व फीलिंग्स को चेंज करके, उनकी शक्ति को डेस्ट्रॉय कर सकता हूँ। उनकी शक्ति को कमजोर बना सकता हूँ। मैं अपन मन, वचन और शरीर को जरा व्यवस्थित करके उनके आने के द्वार को रोक सकता हूँ। मैं इतना कर सकता हूँ। ये बातें हमारी समझ में आनी चाहिये। उनका फल नहीं लेऊँगा ऐसी व्यवस्था कर सकता हूँ, मैं चाहूँ तो उनकी स्थिति, उनके ड्यूरेशन और उनकी पोटेन्सिएलिटी में कमीबेशी कर सकता हूँ। जब तक कि वे मेरे भीतर संचित हैं, मैंने ही अपने लिए संचित किए हैं इसलिए मेरा अधिकार है कि उनमें इस तरह की रद्दोबदल मैं कर सकता हूँ। ये बहुत-बहुत विश्वास की चीज है। ये अपने पुरुषार्थ को जाग्रत करने की चीज है।

दूसरे नम्बर का जो भागीदार है ये ठीक है कि मैंने अज्ञानतावश अपने लिए आसक्ति पैदा करने वाले मोह को संचित कर लिया है। मैंने बाँध लिया है अपने साथ उस कर्म को और वह मेरे उदय में आकर के मुझे आसक्त करता है, मुझे गाफिल करता है। लेकिन इतना ही नहीं है, मेरा अगर पुरुषार्थ जाग्रत हो जाए और कर्म बँध के प्रति जो अज्ञानता है वो हट जाए, मैं कर्म बँध की प्रक्रिया को अगर ठीक समझ लूँ कि बँधने के बाद वो मुझे मनचाहा फल दें, ऐसी मजबूरी नहीं है और बँधने के बाद जैसे बँधे हैं वैसे ही मुझे भोगना पड़ेंगे, ऐसी मेरी मजबूरी नहीं है। मैं उनमें यथासम्भव परिवर्तन कर सकता हूँ। मैं कर्मों का विधाता हूँ, कर्म मेरे विधाता नहीं हैं। ये बात मुझे बहुत गौर से समझना पड़ेगी। असल में थोड़ा तो कर्मों का फल मिलता है, उसके साथ हमारी पुरुषार्थहीनता उसके फल को और अधिक बढ़ा देती है, डोमीनेट कर देती है, अल्प फल भी देने वाले को हम बहुत बड़ा कर देते हैं। ''पुण्य उदय जिनके, तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।'' साता कर्म के उदय में भी अगर हमारी स्थिति पुरुषार्थ की कमजोर हो, तो हम उसमें भी दुःख कमा सकते हैं और जब दुःख देने वाला असाता का उदय आये तब भी हम समता भाव रख करके उसे शांति से गुजर जाने के लिए मजबूर कर सकते हैं। ये मेरी कर्मों के ऊपर ग्रिप है। कर्म की पकड़ में, मैं नहीं हूँ।

ऐसे कर्म जिनको कि बाँधते समय हमारे परिणामों की अज्ञानता और तीव्रता से हम बाद में जिनमें कोई रद्दोबदल नहीं कर सकते, जैसा फल वे देंगे वैसा भोगना पड़ेगा। ऐसे कर्मों को भी जिनेन्द्र भगवान के बिम्ब के दर्शन करने मात्र से हम नष्ट कर सकते हैं। ये उपाय हैं हमारे पास, इसका भी उपाय है। ''जिन-बिम्ब दर्शने''- साक्षात जिनेन्द्र भगवान के समोवशरण में बैठे भगवान के दर्शनों से नहीं, उनकी अनुकृति से, उनकी इमेज से, उनके बिम्ब से, तो इस तरह हम देखें तो कर्मों को काटना हमारे हाथ में है। बाँधना हमारे हाथ में है तो उनको काटना भी हमारे हाथ में है। हम मजबूर नहीं हैं। एक बहुत बड़ा कलाकार था। जंजीरें बनाता था और उसकी जंजीर पर वह अपनी आखिरी में एक सील लगा देता था। इस जंजीर को कोई तोड़ नहीं सकता और वाकई में दूर-दूर तक इस बात की प्रसिद्धि थी कि उसकी बनाई जंजीर कोई नहीं तोड़ सकता और उसके भीतर भी यह भाव बैठ गया, बहुत गहरे बैठ गया कि मेरी बनाई हुई जंजीर कोई नहीं तोड़ सकता और एक दिन ऐसा हुआ कि किसी अपराध में उस कलाकार को कैद कर लिया गया और जंजीर पहना दी गई और जब उसे जंजीर पहनाई जा रही थी तो उसको कोई भय नहीं था। बहुत खुश था क्योंकि जितनी प्रसिद्धि उसकी इस बात की भी थी कि कोई भी जंजीर ऐसी

नहीं है दुनिया की, जिसे वह तोड़ ना सके, बस उसकी बनाई हुई जंजीर को कोई नहीं तोड़ सकता। लेकिन दुनिया में किसी की बनाई हुई जंजीर को वो तो आसानी से तोड़ सकता है, ये प्रसिद्धि थी, इसलिये वो बहुत मुस्करा रहा था। जंजीरें बाँधते समय कि एक झटका देना है क्योंकि आज तक कोई जंजीर नहीं बन सकी जो कि मैं न तोड़ सकूँ, ये उसको विश्वास था, लेकिन मेरी ही बनाई हुई जंजीर कोई नहीं तोड़ सकता।

एक साधु उसे जंजीरों में जकड़े लेकिन प्रसन्न रास्ते से गुजरते देखकर के जरा मुश्किल में पड़े कि आदमी लगता है पहुँचा हुआ है, क्योंकि जंजीरों में जकड़े होने के बावजूद चेहरे पर मलिनता नहीं है। प्रसन्नता का कोई कारण नजर नहीं आता, कुछ ना कुछ बात है भीतर और जब वह कटघरे के भीतर खड़ा हो गया तो बाहर से साधु ने कहा कि तुम्हारे मुस्कराने का कारण क्या है ? तो उसने कहा कि सुनो, कोई भी जंजीर तो बस इनको हटने दो जरा, फिर मैं तोड़ दूँगा। इसीलिये मुस्करा रहा हूँ, लेकिन अगले क्षण, 5 मिनट ही हुए होंगे और सुबक-सुबक के उसके रोने की आवाज सुनाई पड़ी। बाबा ने फिर से मुड़कर देखा, क्या हुआ, अभी तो उसने कुछ भी पुरुषार्थ शुरू नहीं किया कि जंजीर तोड़ना शुरू की हो और नहीं टूट रही हूँ इसलिये रो रहा हो। आखिर रोने का कारण क्या है ? उसने कहा कि अब तो मेरे जीवन का अन्त इसी कारागार में हो जायेगा। मुझे मरने को यहीं मजबूर होना पड़ेगा। अरे बताओ तो क्या कारण है ? इस जंजीर में तो मेरा मार्का लगा हुआ है और मेरे मार्के की जंजीर की तो यह प्रसिद्धि है कि उसे कोई नहीं तोड़ सकता। ये तो ठीक है पर मैं तो अपनी बनाई हुई जंजीर तोड़ सकता हूँ, मैं अपने बाँधे कर्मों को; मैं किसी और के, अपने परिचितों के, अपनी बहुत प्यारी माँ के भी बाँधे हुए कर्मों को नहीं काट सकता। ये ठीक है लेकिन मेरे बाँधे हुए कर्मों को तो मैं काट सकता हूँ, मेरी माँ भी मेरे बाँधे हुए कर्मों को नहीं काट सकती। पर मेरे बाँधे कर्मों को मैं काट सकता हूँ। ये बात, ये विश्वास हमारे पास में होना चाहिये। ये चीज हमारे हाथ में है तो भैया आज अपन ने एक बहुत बड़ी बात सीख ली है। कर्म हम बाँधते हैं, उसमें जितनों की भागीदारी है उसमें से दो पर मेरा वश है और वो दोनों अगर मैं जाग्रत कर लूँ, अपने पुरुषार्थ को जाग्रत कर लूँ, कर्म बंध की प्रक्रिया को ठीक-ठीक जान लूँ तो कैसे और कितने बाँधना है और उनको कब-कैसे नष्ट कर देना है, ये पुरुषार्थ मेरे भीतर जाग्रत हो सकता है। ये मेरे हाथ में है। मेरे जीवन का निर्माण मेरे हाथ में है। मेरे जीवन का निर्माता मैं स्वयं हूँ। उत्तरदायी मैं स्वयं हूँ। अपने जीवन को मैं जितना पवित्र करता हूँ, उसका उत्तरदायित्व भी मेरा है और जितना मैं ऊँचा उठाता हूँ उसकी जिम्मेदारी भी मेरी है। ठीक

है, मेरा अतीत खराब हो सकता है, लेकिन ऐसा कोई जरूरी नहीं है कि जिसका अतीत खराब हो उसका भविष्य भी खराब होगा। किसी ने लिखी हैं दो लाइनें -

"शानदार था भूत, भविष्य भी है महान,
लेकिन कोई अगर सँभाले उसे जो है वर्तमान।"

अगर हम वर्तमान को सँभाल लें तो हमारा अतीत और हमारा भविष्य हमारे हाथ में है, उसके निर्माता हम स्वयं हैं और एक छोटी सी घटना सुनाऊँ और आज अपन इस प्रक्रिया पर आराम से घर जाकर के विचार करेंगे और बहुत सारे प्रश्न मन में उठेंगे जिनका समाधान अपन खोजेंगे कि क्या सचमुच ऐसा है ? इतनी बातें सुनने के बाद मन में एक कसमसाहट जरूरी होगी। क्या ऐसा कर सकता हूँ ? मैं तो अभी तक यही सोचता था कि मैंने जो पहले बाँधा है वो भोगने की मजबूरी है और मैं तो पूरे जीवन यही देखता आ रहा हूँ। पूरा जीवन मेरा गुजर गया। मैंने जब-जब भी जहाँ हाथ डाला मुझे लाभ होना था तो लाभ हुआ। जहाँ हाथ डाला हानि होनी थी, तो वहाँ भी हानि हुई। मैं क्या कर सका ? मैं तो अत्यन्त मजबूर किसी के हाथ की कठपुतली की तरह, मैं अपना जीवन जी रहा हूँ। मैंने तो आज तक यही सोचा था आज यह कौनसी बात कह रहे हैं ? विचार करना, मेरी बात को सहसा मान मत लेना। ऐसे तो हम बहुत सारी बातों को मानते आये हैं, किस-किसकी मानेंगे अब किसी की नहीं मानना, अपने भीतर झाँक करके देखना कि वास्तविकता क्या है उसको मानना।

मैं आपको यह साहस दिला रहा हूँ कि जब किसी दूसरे की कही हुई बात को हम फिर से ऐनालाइस (विश्लेषण) करके देख सकें। अभी हम लोगों के पास यह साहस नहीं है। हम स्वयं अपने जीवन में झाँक के देखें कि जो मैंने निर्मित किया है उसकी जिम्मेदारी मेरी है कि या किसी और दूसरे की या कि मेरे कर्मों की। कर्मों पर भी अपनी जिम्मेदारी नहीं डालना। कर्म बाँधने की जिम्मेदारी मेरी है बस इतना ही है, लेकिन मेरे जीवन को बनाने में कर्मों का कितना हाथ है, कहीं उससे ज्यादा मेरे अपने पुरुषार्थ का, मेरी अपनी च्वॉइस का है। बहुत बड़ा हाथ है। वो उदाहरण बहुत छोटा सा है, एक ज्योतिषी जो भी प्रीडिक्शन करता था, वह बहुत सही निकलते थे, उसकी सारी भविष्यवाणियाँ सही निकलती थीं। दो युवकों को उससे ईर्ष्या हुई उन्होंने कहा परीक्षा करेंगे। परीक्षा करेंगे कि सही निकलती कि नहीं निकलती। उन्होंने अपने ओवरकोट के जेब में एक-एक चिड़िया पकड़कर के रख ली। चले गये उस ज्योतिषी के पास और कहा कि मैं आपसे यह नहीं पूछना चाह रहा हूँ कि मेरे ओवरकोट के जेब में हम ही बताये देते हैं कि एक चिड़िया है,

लेकिन हम सिर्फ यह पूछना चाहते हैं कि आपके ज्योतिष में कितनी दम है, मुझे बताओ कि मरी है कि जिन्दा है तो मालूम उसने क्या जवाब दिया था। चिड़िया तुम्हारे हाथ में है और चिड़िया का मरना और जीना भी तुम्हारे हाथ में है। ये एक प्रतीक है इस बात का ? क्योंकि वो तो ये सोचकर गये थे कि जैसे ही ये कहेंगे कि मरी हुई है तो हम फौरन छोड़ देंगे कि जिन्दा है और ये कहेंगे कि जिन्दा है तो दबाने में कितनी देर लगनी है। तो उसने भी यही जवाब दे दिया कि चिड़िया का मरना और जिन्दा होना वो तुम्हारे अपने हाथ में है। ये इस बात का प्रतीक है कि बहुत सारी चीजें हैं जो हमारे हाथ में हैं। लेकिन ऐसा अहंकार मत करना। मेरा पुरुषार्थ मुझे अहंकार करने की प्रेरणा नहीं देता। मेरा पुरुषार्थ मुझे ठीक-ठीक बात को समझ करके और मुस्करा करके प्रसन्नतापूर्वक उन चीजों को जिनको मैं नहीं चाहता, उनको हटाऊँ और जिन चीजों को अपने जीवन में चाहता हूँ, उनको लाऊँ सिर्फ इतनी ही सलाह देता है। आने पर अहंकार करना और नहीं मिलने पर अधिक संक्लेश करना, उसमें तो है, बहुत सावधानी की आवश्यकता। हम समझें और इस प्रक्रिया को समझ करके और अपने जीवन को दिशा दें और अपने जीवन को अच्छा बनायें। इस प्रक्रिया का उद्‌देश्य सिर्फ इतना ही है कि कोई अपनी विद्वता बढ़ाने का या कि कोई अपने को बहुत अधिक होशियार होने का नहीं है, बस अपने जीवन को अच्छा बनाने का उद्‌देश्य है। यह पूरी प्रक्रिया इसलिये हम समझ रहे हैं बैठकर के एक साथ। अकेले-अकेले तो सब समझते हैं जो जितना समझते हैं पर एक साथ बैठकर समझना एक बहुत बड़ी चीज है और हम एक-दूसरे से समझें। एक-दूसरे के जीवन में भी देखें। क्या वास्तव में ऐसा ही है और फिर हम उस प्रक्रिया में क्या परिवर्तन करके अपने जीवन को अच्छा बना सकते हैं, ऐसा विचार करें। इसी भावना के साथ।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 4

हम सभी लोगों ने पिछले दिनों अपने जीवन के उत्थान-पतन में कौन कारण है, कौन उत्तरदायी है, ये जिम्मेदारी किसकी है, इस बारे में विचार करना शुरू किया है और हम पिछले दिनों इस बात पर विचार करते हुए इस निर्णय पर पहुँच गये हैं कि इसकी जिम्मेदारी हमारी अपनी है। हमारा जीवन अगर सुखमय व्यतीत हो रहा है तो उसकी जिम्मेदारी हमारी है। हमारा जीवन यदि दुखमय और अभावग्रस्त है तो उसकी जिम्मेदारी भी हमारी है। हमारे अपने कर्म जो हम करते हैं, जिनका फल हमें भोगना होता है, और फल भोगते समय जैसी हमारी फीलिंग्स और थोट्स होते हैं, जैसी हमारी विचारधारा होती है वैसे नये कर्म संचित होते हैं और ये एक विचार-क्रम निरन्तर चलता रहता है और तब हमारे मन में यह विचार आता है कि इससे तो मुक्त हो ही नहीं सकते, क्योंकि पुराने कर्म अपना फल देंगे, उनके फल भोगते समय मेरी अपनी जैसी विचारधारा होगी, उससे नये कर्म बँधेगे, वे फिर अपना फल देंगे और इस तरह तो हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं और हमारा कोई वश नहीं है।

और हमने पिछले दिनों इस बात पर भी विचार करके देखा है कि भगवान् और भाग्य के भरोसे बैठे रहने से काम नहीं चलता। इस निर्णय पर हम पिछले दिनों पहुँचे हैं। जो भगवान् और भाग्य के भरोसे बैठकर के और इस बात का इन्तजार करते हैं कि मेरा भाग्य आगे बहुत उज्ज्वल हो जायेगा या भगवान् की मेरे ऊपर कृपा हो जाएगी तो मैं इस संसार से निजात पालूँगा। वे लोग बैठे ही रह जाते हैं। जो भगवान् और अपने भाग्य के भरोसे न बैठकर अपने जीवन में कुछ श्रेष्ठ करने का विचार करते हैं वे अपने उन बुरे कर्मों को समाप्त भी करते हैं और आगे के लिये, भविष्य को उज्ज्वल भी करते हैं।

कर्म दोनों तरह के हैं - सांसारिक भी हैं और आध्यात्मिक भी हैं। ये हमारी च्वाइस है कि हम कौनसा कर्म करना पसंद करेंगे और इतना ही नहीं जब कर्म अपना फल देगा तो हम किस चतुराई से और किस अपनी होशियारी से उस कर्म के फल को ग्रहण करेंगे।

आज हमें यह होशियारी सीख लेनी है कि ठीक है हमने पहले जो कर्म अज्ञानतावश किये हैं जो हमारे साथ संचित हो गये हैं, उन पर हमारा 95 प्रतिशत कर्मों पर वश है जब तक कि वे अपना फल नहीं देते हैं। फल देने की तैयारी भी कर रहे होते हैं तब भी हम उनकी तैयारी को डिस्टर्ब (बाधित) कर सकते हैं। यहाँ तक हमारा वश है जब वे यदि फल देने के लिये तैयार भी नहीं हैं, पड़े हुए हैं सुप्त अवस्था में, संस्कार की तरह तब तो मैं उन्हें आसानी से नष्ट कर सकता हूँ। लेकिन जब उनके भीतर थोड़ी सुगबुगाहट होने लगी है, वे तैयारी करने लगे हैं कि अब आये तब आये, और हमें अपना फल चखायेंगे, तब उस समय भी हम उनको नष्ट कर सकते हैं। वे अपना फल दें, उसके एक क्षण पहले तक, एक समय पहले तक हमारा वश है कि हम उन्हें परिवर्तित कर सकते हैं हम उनकी पोन्टेशियलिटी और ड्यूरेशन को घटा सकते हैं और अच्छे कर्मों की पोन्टेशियलिटी और ड्यूरेशन को बढ़ा सकते हैं। हम उन्हें समय से पहले लाकर के और समाप्त कर सकते हैं, क्योंकि क्या पता अभी तो जरा मन ठीक है, बाँधे हुए कर्म जब फल देंगे तब हम भोग पायेंगे कि नहीं, सहन कर पायेंगे कि नहीं। इसलिए हम अभी धर्म ध्यान करके उन बुरे कर्मों को बाहर लावें और देखने में आता है कि जो जितना ज्यादा धर्मध्यान करता है उसके जीवन में उतनी ही विपत्तियाँ एक के बाद एक आती दिखाई पड़ती हैं। वो क्या चीज है ? वो मेरे अपने धर्म-ध्यान की वजह से बाद में आने वाले कर्म जो खोटे उदय में थे वे अभी आकर के अपना फल थोड़ा बहुत देकर के डेस्ट्राय (समाप्त) हो जाते हैं। ये प्रक्रिया भी छोटी-मोटी प्रक्रिया नहीं है। इस प्रक्रिया का लाभ लेकर मैं अपने संचित कर्मों के कोटे में से बहुत कुछ नष्ट कर सकता हूँ।

ऐसा पुरुषार्थ मेरे भीतर जागृत करने के लिये कल अपन ने विचार किया था। मोह पर मेरा वश बहुत कम है। लेकिन मेरे पुरुषार्थ को भला और बुरा करना है। ये मेरे वश में है और कर्म के बंध के प्रति मेरी जो अज्ञानता है उसको दूर करने का पुरुषार्थ मेरे भीतर जागृत करने के लिये कल अपन ने विचार किया था। कल हमने अपने उस तीन पहलुओं में से कि मोह और आसक्ति को हटाने के लिये तो जिनेन्द्र भगवान की भक्ति और करुणा का भाव और अपने पुरुषार्थ को जागृत करने के लिये यह विश्वास, यह आत्मविश्वास कि मैं अपने बाँधे गये कर्मों को अपने हाथ से चाहूँ जब नष्ट कर सकता हूँ, पर विचार किया था। उनके स्वाद को परिवर्तित करके ले सकता हूँ, और जब वे उदय में आ जावें तब, जैसे कि टोंटी खोल दी है, भूल गये कि ठण्डा पानी गिरेगा। अब क्या करना, बन्द कर दो, लेकिन बन्द तो कर दो, वो जो इतना पानी टोंटी में से निकल गया वो तो गिरेगा उसको रोकने का कोई उपाय नहीं है लेकिन उससे बचने का उपाय अवश्य है। जितना

कर्म अपना फल देने के लिये आ जाता है उतना फल तो मुझे भोगना ही पड़ेगा। सो तो तीर्थंकरों को भी अपने कर्म के खोटे फल को भोगना पड़ा। भगवान् आदिनाथ स्वामी का उदाहरण सबके सामने है। फिर हमारी और आपकी क्या बिसात ? लेकिन उस कर्म के फल को रोते-रोते भोगना है कि हँसते-हँसते भोगना है, यह मेरे ऊपर निर्भर करता है। अब वो जो ठण्डा पानी, मैंने भूल से जो नल खोलने से, मेरे ऊपर गिर गया है, उसको मुझे अब कैसे सहन करना है क्योंकि उसको रोका नहीं जा सकता, वो तो उतना निकल गया। बन्दूक में से गोली निकल गयी उसको रोकी नहीं जा सकती है। लेकिन बन्दूक को हिलाकर के उसका डायरेक्शन चेंज किया जा सकता है और आगे और नहीं चलाऊँ यह बात सीखी जा सकती है। अभी तो पहले यह बात सीख लें कि जब कर्म अपना फल देवें, कर्म का फल नहीं भोगना ये कहीं नहीं लिखा, लेकिन कर्म का फल भोगते समय उसमें रचना-पचना नहीं। ''पुण्य पाप फल माँही, हरख बिलखो मत भाई।'' यह जरूर लिखा हुआ है फल तो भोगना ही पड़ेगा, लेकिन उस फल को भोगते समय उसमें जो आसक्ति है, उसमें जो हर्ष विषाद है, उसमें जो रचना-पचना है, उस पर मेरा अपना पुरुषार्थ काम करेगा।

कर्म का उदय मेरा उतना बिगाड़ नहीं करता जितना उसके उदय में उसके फल में मेरी आसक्ति। बुखार आ गया है अगर तो इसका मतलब है पेट में कहीं कोई गड़बड़ी है तो उस गड़बड़ी ने मेरे शरीर को गर्म कर दिया है। ये तो उसका फल ठीक है लेकिन अब मैं अगर दही खाऊँ और गरिष्ठ भोजन करूँ और अपथ्य करूँ तो इसका मतलब है कि मैं अपने हाथ से अपने इस कर्म के फल को बढ़ा रहा हूँ और ऐसा तो हमेशा करते हैं। ऐसा ही कर रहे हैं अपन संसार में, कर्म का उदय हमारा उतना हानि नहीं करता, जितना कर्म के फल को भोगते समय उसके उदय में हम हर्ष-विवाद करके अपना घाटा अपने हाथ से करते हैं और कहते हैं कि क्या करें। हमारे कर्म का ऐसा खोटा उदय है। अरे कर्म का खोटा उदय किसके नहीं होता, लेकिन उस कर्म के खोटे उदय में करना क्या है ? अरे, अपन तो महाजन हैं, अगर किसी से कर्ज ले लेते हैं तो उसको हँस के चुकाते हैं। हम ऐसे महाजन नहीं हैं कि रो-रोकर के चुकायें। हमने कर्म को कर्जे की तरह लिया है अगर तो उसके उदय को भी हम हँसते-हँसते चुका देंगे। जब वह अपना फल देगा तो कहेंगे कि ठीक है हमीं ने तो उधार लिया था इसलिये हमीं को चुकाना ही पड़ेगा। उसके फल को चखते समय मुझे कितनी सावधानी रखनी है, क्या चतुराई करनी है, कौनसी ऐसी कला सीख लेनी है कि जब वह अपना फल दे, बाँधे तो मैंने अज्ञानता से हैं लेकिन अज्ञानतापूर्वक मुझे

भोगना पड़े ऐसा नहीं है। मैं पूरी जागृति, पूरी सावधानी और पूरे ज्ञान के साथ उस कर्म के फल को भोगता हूँ।

आचार्य महाराज के जीवन का एक उदाहरण है और उनके द्वारा लिखी गई चार पंक्तियाँ हैं। मुझे सन् 1976-77 में आचार्य महाराज के मुख से सुनन को मिली थीं। उससे पहले तो मैं यह जानता ही न था कि यह क्या प्रक्रिया होती होगी और सन् अठहत्तर में मैंने अपने सामने उनको इस बात को करते हुए देखा। कहना बहुत आसान है लेकिन उसको जीवन में करते हुए देखना, कर्म के उदय में जबकि वह अपना फल दे रहा है, तब क्या जुगत लगाऊँ, कैसा पुरुषार्थ करूँ, जिससे कि वह अपना फल आधा-अधूरा देकर के चला जावे और आगे का इन्तजाम ना कर पाये, हाँ, क्योंकि कर्म अपना फल देता है तो वर्तमान तो मेरा बिगाड़ता ही है, साथ में मेरे भीतर हर्ष-विषाद करने की प्रेरणा देता है और मैं अगर थोड़ा सा असावधान हो जाऊँ तो हर्ष-विषाद करके नये कर्मों का इन्तजाम भी मैं कर लेता हूँ। कर्म का उदय नये कर्म का इन्तजाम नहीं करता, मेरा हर्ष-विषाद, मेरी आसक्ति नये कर्मों का इन्तजाम करती है इसलिये कर्म के उदय से भी ज्यादा डरने की आवश्यकता नहीं है, भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

"मैंने किया विगत में कुछ पुण्य-पाप, जो आ रहा उदय में स्वमेव आप।
होगा बंध तबलों-जबलों ना राग, चिन्ता नहीं उदय से बन वीतराग।"

अगर मैं वीतरागी बन जाऊँ, अगर मैं समताभाव धारण कर लूँ तो चाहे पुण्य का उदय आवे, चाहे पाप का उदय आवे, मेरा बिगाड़ नहीं करने वाला, वो तो अपना फल देकर के चला जाएगा। वो तो स्वयं ही मरण की तरफ है अपना फल दिया और मर जाएगा। वो तो फिर मेरा क्या बिगाड़ कर लेगा और उनके जीवन का उदाहरण सन् '78 में बैठे हुए थे। आचार्य महाराज चौबीसी की छत के ऊपर द्रोणगिरि में, सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरि है, मध्य प्रदेश में। वहाँ बैठे हैं। गजरथ का बड़ा भारी प्रोग्राम है, और साहू अशोक जी आये हैं और आचार्यश्री के चरणों में दो बार चक्कर लगा के आ गये हैं, कि जरा तो मुखातिब हो हमारी तरफ, जरा सा देख तो लेवें, लेकिन वे काहे को, वे तो अपने काम में लगे हैं और देख ही नहीं रहे हैं। ठीक है, आये होंगे आप, बहुत लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं, प्रणाम करते चले जा रहे हैं। तब किसी से उन्होंने सलाह ली कि क्या किया जाये, महाराज जरा सा एक नजर उठाकर देख तो लेते, दो बोल बोल लें यह तो सौभाग्य है, लेकिन एक नजर तो उठाकर देख लें इतना ही सौभाग्य मिल जाए, बड़ी दूर से आया हूँ। तो कहने लगे कोई ज्यादा कठिन काम नहीं है। आप जाकर के चरणों में बैठो और

कहो कि भगवन् अपने जीवन के कल्याण के लिये कुछ त्याग करना चाहता हूँ, फिर देख लो आप। उपाय है यह और उन्होंने वही किया। जाकर के आचार्य महाराज के चरणों में बैठ गये। जिसकी जितनी अपेक्षा संसार से है उसको उतनी ज्यादा उपेक्षा और जिसकी नहीं है किसी से कोई अपेक्षा, देख लो आप संसार में आसानी से जीवन जीता है। बैठ गये हैं, भगवन ! मेरे कल्याण के लिये मैं कुछ त्याग इत्यादि लेना चाहता हूँ ? ठीक है - दृष्टि उठाकर के देखा कि कौन है जो कि त्याग लेना चाह रहा है तब फौरन प्रणाम करके कहा कि महाराज रात्रि भोजन इत्यादि का त्याग करने का मन है और ऐसा, ऐसा है कोई समय निर्धारित कर देवें, उसके बाद नहीं लेऊँ, ऐसा नियम ले लूँ, लेकिन महाराज यह तो ठीक है पर एक बात आपसे पूछनी है, अब तो मौका मिल गया। मैं पहले जरा एक प्रश्न पूछ लूँ उसके बाद। तो क्या प्रश्न है पूछो ? महाराज इतने लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं, आप छत पर बैठे और अपने लेखन में लगे हुए हैं। आपको किसी से कोई मुश्किल नहीं होती, कोई बाधा नहीं पहुँचती। तो आचार्यश्री ऐसे ही जवाब देते हैं, आप गाड़ी चलाते हैं कि नहीं। चलाते हैं महाराज गाड़ी तो हम चलाते हैं। अच्छा जब गाड़ी ढलान पर आ जाती है, बड़ी लम्बी ढलान है, तब आप क्या करते हैं ? महाराज पेट्रोल बचाने के लिये न्यूट्रल में डाल देते हैं। ''बोले, बस जैसे आप गाड़ी ढलान में आने पर न्यूट्रल में डाल देते हैं, ऐसे ही ज्यादा भीड़-भाड़ होने पर हमें अपना काम करना रहता है तो हम अपनी गाड़ी न्यूट्रल में डाल लेते हैं। फिर हमारे ऊपर कोई इफैक्ट नहीं होता।''

ये बहुत बड़ा मैसेज है कि कर्म जब अपना फल देने को आ जाये, उनका उदय आ जावे तब मेरा अपना परिणाम समता का रहे, तो आकर के चले जाएँगे, मेरा उतना बिगाड़ उतनी अति नहीं कर पाएँगे, जितनी कि वे मेरे भीतर हर्ष-विषाद पैदा करके और करते हैं। हम स्वयं उस हर्ष-विषाद में शामिल हो जाते हैं, जब साता का उदय आता है तो मुझे सुख सामग्री मिलती है और उस साता के उदय में, मैं ऐसा मदोन्मत्त हो जाता हूँ कि मनुष्यता भूल जाता हूँ। पशुता पर उतर आता हूँ। उस साता के उदय में, मैं किसी का ख्याल नहीं करता हूँ, मैं तो अपनी सुख-सुविधाओं की लम्बी दौड़ में दौड़ता चला जाता हूँ और ऐसा अहंकारी होकर के, अकड़ के घूमता हूँ। सब जानते हैं जिनको अपने पूर्व संचित पुण्य के उदय से सुख सामग्री मिली है, वे कैसे संसार में डूबे हैं। किसी से छिपा नहीं है। अपन भी जब सारी सुख-सामग्री मिल जाती है तो धर्म को दरकिनार कर देते हैं। हमारा अहंकार देखो, जब हमारा किसी साता कर्म का उदय आता है जिससे कि हमें सुख-सुविधा की और भौतिक सुख-सुविधा की सामग्री मिलती है तो कैसे अहंकारी हो जाते हैं। ये ही कर्म के उदय में आसक्ति है और यही तो संसार बढ़ाने का काम है। कर्म के

उदय ने हमारा क्या किया, कुछ नहीं किया। हमारा अपना पुरुषार्थ है, आप चाहते तो अपने उस सुख साता के उदय के समय में सारी भौतिक सामग्री को एक तरफ रखकर के धर्मध्यान कर सकते थे। लेकिन हमारी च्वाइस कि उस मौलिक सुख सामग्री में मदोन्मत्त होकर घूम रहे हैं, न धर्म की चिन्ता है न मनुष्यता की फिकर है। जैसा आचरण होगा पशुवत् सुबह से शाम तक, अगर खाना है और रात में भी खाना है तो खा रहे हैं। ये काम तो सिर्फ पशुओं का ही होता है कि जिनको सिर्फ खाने की फिकर होती है, जिनको सोने की फिकर होती है और जिनको भोग-विलास की पूर्ति की फिकर होती है। अगर ऐसा ही हम भी कर रहे हैं तो समझना कि हमने अपने इस कर्म के, पुण्य कर्म के उदय में अपन को सुख मिला था, साता का उदय उसका ऐसा मिसयूज (दुरुपयोग) किया और फिर हम तैयार रहें आगे के उसके फल भोगने के लिये, फिर क्यों हम ये कहते हैं कि मेरे कर्मों के उदय ने मुझे और मुश्किल में डाल रखा है ? कर्मों का उदय मुझे उतनी मुश्किल खड़ी नहीं करता जितनी मेरे अपने कर्मों के उदय में मेरी गाफिलता, मेरी असावधानी, मेरा अपना अहंकार। जब असाता का उदय आता है तो विचलित हो जाते हैं, अपना धैर्य खो देते हैं, जिस माध्यम से मेरे दुःख दूर हों उस माध्यम को अपना लेते हैं, चाहे वह अनीति का रास्ता ही क्यों न हो। मेरे दुःख दूर करने का मिथ्या से मिथ्या उपाय मैं करता हूँ, यही तो मेरे असाता के उदय को भोगने की कला मैंने नहीं सीखी है, इतना ही तो है, मेरे असाता को कैसे भोगना और मेरे साता के उदय को कैसे भोगना, समतापूर्वक भोगना नहीं तो संसार बढ़ेगा। इतनी चीज अगर कोई जान लेवे, इस कर्म के फल को भोगने की, हमारे अगर चतुराई होवे, तो कोई वजह नहीं है कि कर्म का बंधन हमें इस संसार में रोक करके रख सके। विचार करें हम इस चीज को घर जाकर के। मैं तो हमेशा देखता रहता हूँ जिनके पास किसी पूर्व पुण्य के उदय से सारी सुख-सुविधाएँ हैं, उनको वर्तमान में मनुष्यता से नीचे गिरते और धर्म से विमुख होते देख लें आप, व्यसनों से लिप्त होते देख सकते हैं आप। अपने साता के उदय में सत्ता और ऐश्वर्य व्यक्ति को जितना पतित करती है इतनी और कोई चीज पतित नहीं कर सकती है, इतना ऐश्वर्य मिला कैसे? मेरे किसी पूर्व संचित पुण्य का उदय है और पुण्य के उदय को मैं भुना कैसे रहा हूँ। मैं अपने असाता के उदय में, अपने कर्मों के फल को दूसरे पर डाल देता हूँ और शिकायत करके बुराइयाँ मोल लेता हूँ, एक नया बैर विरोध जो है अपने जीवन में, वर्तमान में बना करके जीता हूँ, चाहे जिसको दोषी ठहराता हूँ। भोगता हूँ अपने असाता का फल और चाहे जिसको दोषी ठहराता हूँ कि मेरे, मेरे दुःख के ये कारण हैं, उनसे बैर विरोध भी ले लेता हूँ और अपना संसार बढ़ाता हूँ। बताइये, उस असाता के उदय ने मेरा क्या बिगाड़ किया, मैंने स्वयं

अपने परिणाम बिगाड़ करके अपना बिगाड़ किया है। असाता के उदय ने उतना बिगाड़ नहीं किया है। विचार करना चाहिये कि कर्म हमेशा अपना फल, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव इन सबका ध्यान रखकर के देता है। कर्म भी अपना फल देते समय इन सब बातों का ध्यान रखता है। द्रव्य कैसा है, कर्म का फल वैसा ही मिलेगा। कमजोर आदमी होवे और बहुत तीव्र कर्म का उदय आवे प्राण निकल जावेंगे। उतना ही आता है जितना झेल सकें, हाँ, जैसा क्षेत्र होगा वैसा मिलेगा।

असाता का उदय नरक में अगर हो तो ज्यादा मिलेगा और स्वर्ग में अगर हो तो थोड़ा मिलकर चला जाएगा। मनुष्य है तो मिला-जुला आयेगा। काल अलग है, चौथे काल में अलग है, पंचम काल में अलग है। अगर यहाँ बैठे हैं तो कर्म दूसरे ढंग से फल देगा और इस कम्पाउण्ड से बाहर निकल जाएँगे, कर्म का फल दूसरे ढंग से मिलेगा। क्षेत्र बदल गया। मंदिर में बैठे हैं तो क्रोध का उदय अपना उतना फल नहीं दे पाएगा। मान, कषाय अब ज्यादा नहीं घेरेगी, मेरी मायाचारी मुझे उतना परेशान नहीं करेगी, लोभ जागृत होकर के वहीं के वहीं नष्ट हो जाएगा। या अपनी दिशा बदल लेगा और फिर कहेगा कि ठीक है, अब दुकान नहीं जा रहे तो चलो कोई बात नहीं, चलो धर्म ध्यान कर लेते हैं, चारों कषायें मेरे जो विकारी भाव हैं, मेरे भावों को बिगाड़ने वाली ये चीजे हैं - ये मेरे हाथ में हैं, मैं अगर कर्मों के उदय में द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव इनके परिवर्तन की चतुराई सीख जाऊँ, तो मैं आसानी से उसके फल को बदल सकता हूँ। अब ये इतनी सी और अपने को सीख लेनी है, द्रव्य मिला हुआ है, ये शरीर, पता नहीं कौनसा पुण्य किया होगा जिससे कि मनुष्य की देह मिली, ये मेरे किसी साता का उदय है। लेकिन अब ये द्रव्य है, इसका जैसा उपयोग करना हो, इसको विषय-वासनाओं में और भौतिक सुख-सुविधाओं में लगाना हो तो लगा सकते हैं आप, द्रव्य तो मिला हुआ है। अब इसके माध्यम से हमें इसके फल को कैसे लेना है, हमको इन्द्रियों की अच्छी सामर्थ्य मिली है दूर तक साफ दिखाई देता है, बिना चश्मे के देख पाते हैं, ठीक है तो दुनिया के दोष देखना हो तो देख लो और अगर भगवान् के दर्शन करना हो सुबह और शाम तो वैसा कर लो, मिला तो ज्यों का त्यों है, द्रव्य तो आपको मिला हुआ है और कर्म अपना फल भी दे रहा है, द्रव्य के अनुसार क्षेत्र मिला हुआ है, आप किसी ऐसी जगह पर जाना चाहें जहाँ कि मंदिर ना हो तो वहाँ भी रह सकते हैं। अपना मकान किसी ऐसे कोने में, कातर में, किसी कॉलोनी में बना लो जहाँ मंदिर ही नहीं है। झगड़ा ही खत्म कि मंदिर जाना पड़ेगा। लोग मंदिर के निकट नहीं बनाएँगे, मंदिर से दूर बनवाएँगे। कौन मुश्किल में पड़े, मंदिर जाने की मुश्किल में कौन पड़े, क्षेत्र हम चाहें तो क्षेत्र ऐसा चुन सकते हैं जिसमें हमारा धर्म-ध्यान

हो और हम चाहें तो क्षेत्र ऐसा चुन सकते हैं जिससे हमारी विषय-वासना बढ़े, जिससे हमारा संसार बढ़े। हमारे ऊपर निर्भर करता है चुनना कि हम कौनसे क्षेत्र में रहें। यह बात अलग है कि हम यह नहीं चुन सकते कि हम इस घर में पैदा होंगे कि उस घर में पैदा होंगे लेकिन जब हम समझदार हो जाते हैं तो अपने क्षेत्र का परिवर्तन करके, अपने धर्मध्यान के निमित्त चाहें तो बढ़ा सकते हैं और अपने कर्म के उदय को परिवर्तित कर सकते हैं। कर्म का उदय तो मिलेगा लेकिन मैं क्षेत्र परिवर्तित करके उसके उदय को कन्वर्ट कर दूँगा और मुझे सुबह-सुबह दूसरे भाव होते हैं, शाम को दूसरे भाव होते हैं, मेरा काल भी मेरे ऊपर प्रभाव डालता है, मेरे कर्मों का फल देने में, तो मैं सावधान रहूँ कि इस वाले काल में मुझे गुस्सा आती है तो मुझे जरा उस वाले काल में, और ऐसी जगह चले जाना चाहिये, मुझे क्षेत्र बदल देना चाहिये। अपने काल को जीतने के लिये ताकि वो समय निकल जावे। समय निकल जाने पर फिर अपने आप परिणाम शांत हो जाते हैं। ये अपने कर्म के उदय को द्रव्य, क्षेत्र, काल बदलकर के बदला जा सकता है, बहुत सारे ऐसे उदाहरण हैं भैया, इन सबको सदुपयोग किया जा सकता है। क्षेत्र का भी सदुपयोग करना। काल का भी सदुपयोग करना और जो शरीर मिला है, जो सामग्री मिली है, उसका सदुपयोग करना। ये सब कर्म के उदय में मिले हैं लेकिन इनका क्या उपयोग करना है ये हमारे ऊपर निर्भर है और भाव, भाव तो खोटे और भले दोनों हम जैसे चाहे वैसे, कर्म हमें बुरे भाव करने के लिये मजबूर कर सकता है, लेकिन हम करें तब। आप हमें गाली दे सकते हैं, हमारे परिणाम हमें बिगाड़ना हो तो हम बिगाड़ें और नहीं बिगाड़ना हो तो आपकी गाली को कह दें कि धन्यवाद। हमने लिया ही नहीं, आप ही रखो। आपका हमारे ऊपर वश इतना ही है कि आप हमारे विपरीत परिस्थितियाँ निर्मित कर सकते हैं लेकिन उन विपरीत परिस्थितियों में मुझे अपने परिणाम बिगाड़ना या नहीं बिगाड़ना, ये मेरी अपनी सामर्थ्य है और ये सामर्थ्य बढ़ानी चाहिये।

अरे महाराज ! आप कह रहे हो सब बातें अच्छी लगती हैं कहने-सुनने में, लेकिन जब जीवन में करो, जब समझ में आता है। साल भर नहीं पढ़ो सो पेपर हाथ में आते ही रोना तो पड़ेगा ही और साल भर पढ़े हो तो भैया पेपर हाथ में आते ही सबसे पहले चेहरे पर मुस्कुराहट और फिर पेन संभाल के, जरा हाथ ठीक करके और शुरू करते तो तीन घण्टे कहाँ चले गये पता ही नहीं लगता। लेकिन 365 दिन की तैयारी नहीं है तो जरूर रोना पड़ेगा। कर्म का फल भोगते समय जो रोता है समझना उसकी तैयारी नहीं है, कर्म के फल भोगने की और जो कर्म के फल को हँसते-हँसते भोग लेता है, वो ही बस पक्की साधना है, वही तैयारी करनी है, वही साधना करनी है। इस प्रक्रिया को शुरू किया है,

जरा समझें तो कहाँ हमारी चूक है, कहाँ हमारी भूल है और कैसे हम उसको दुरुस्त कर सकते हैं। अब देखें कि अपनी कषाओं को क्या हम कोई दिशा दे सकते हैं तो सीखें जरा अपने जीवन से सीखें।

कैसे ? दुकान पर बैठे हुए हैं, ग्राहक आता है, ये दिखाओ, हाँ दिखाता हूँ, वो दिखाओ, हाँ दिखाता हूँ। सब दिखाते हैं, और आखरी में कहता है, पसन्द नहीं आया, दूसरी दुकान जा रहा हूँ, तब उस समय क्या होता है ? क्या विचार आ जाता है मन में ? एक दिन अगर किसी ग्राहक से खोटे वचन बोल दूँगा तो बाकी जो ग्राहक बैठे हैं और आगे आने वाले हैं, सब में घाटा लगेगा। वचन सँभाल करके बोलते हैं। परिणाम संभाल लेते हैं कि विपरीत स्थिति बनने पर, क्या ऐसा ही हमेशा नहीं कर सकते कि जब-जब ऐसी स्थितियाँ आयें, मेरा कर्म जोर मारे और मुझे दुःख में डालने की कोशिश करे तो मैं जरा ऐसा विचार करके कि अभी अगर गुस्सा कर लूँगा तो और नये संस्कार बनेंगे, कल करेंगे, देखेंगे, इसी तरह अहंकार आने पर अपने अहंकार को और मायाचारी का भाव आने पर मायामारी को, ये सब विकारी भाव हैं। और लोभ जागृत होने पर, अधिकांश लोगों के लोभ का उदय चल रहा है। बिना कषाय के उदय के तो कुछ भी नहीं होता। ये लोभ है अगर इससे दूसरे प्रकार का लोभ जाग्रत हो जाये, सांसारिक तो अभी यहाँ से धीरे से ..... मोबाइल से खबर आ जावे तो अभी यहाँ से उठकर के और चले जाएँगे दुकान पर, दूसरा लोभ जाग्रत हो गया, ये हमारा पुरुषार्थ है।

कर्म का उदय तो आयेगा लेकिन उसका यूसेज कैसा करना है, उसका उपयोग कैसा करना है, ये मेरी अपनी क्षमता है, मेरी अपनी सामर्थ्य है। मैं उस लोभ को दिशा दे सकता हूँ। माँ भी डाँटती है बेटे को और यहाँ तक डाँटती है अब तो खैर स्थिति वो नहीं रही। चूल्हा कोई के घर में मुश्किल है जलता होगा लकड़ी वाला। नहीं जलता होगा। गैस का जलता होगा, नहीं तो पहले तो खाना खाने बैठे और अपन ने ज्यादा मीनमेख करी तो उसने धीरे से - मताई ने और निकाली लकड़ियाँ और बोली लगाऊँ, जलती लकड़ी, लगायेगी नहीं अगर लग जाएगी जरा सी भी कहीं तो वो दिन भर उँगली मुँह में लिये बैठी रहेगी, सो तो इतना भीतर वात्सल्य है, प्रेम है, क्षण भर को क्या करती है, क्रोध में आकर के क्यों ? क्योंकि करना पड़ रहा है, कि तुम बिगड़ रहे हो तुम्हारे इस सुधार के लिये। दूसरे के सुधार के लिये या अपने सुधार के लिये कभी हमने अपने इस क्रोध का उपयोग किया है या कि सिर्फ दूसरे के बिगाड़ के लिये किया है। 4 दिन पहले से हल्ला मचाना पड़ता है कि शक्कर खत्म हो गई, रखी है अभी 4 दिन की। एक दम खत्म हो जाएगी क्या तब

कहेगी कि है ही नहीं। वो कच्चा गृहस्थी वाला है जो ऐसा कहेगा, वो तो चार दिन पहले से कहेगा और बेटा अगर कहेगा कि फलानी चीज है। कल रसगुल्ले बने थे, कहाँ हैं ? ''खत्म हो गये, वे तो सब खत्म हो गये।'' अब इतना छोटा सा तो है, 4 खा चुका है और कहता है कि और दो। खत्म हो गये कह दो मायाचारी। झूठ भी बोलना पड़ेगा। काहे के लिये ? उसके हित के लिये। भैया कषाओं को हम रोज अपने जीवन में उपयोग में लाते है। चारों कषायें हमारे अन्दर हैं, लेकिन उनके द्वारा हमें अपना संसार बढ़ाना है कि संसार घटाने के लिये उनका उपयोग करना है। यह हमारे हाथ में है। मैं इसलिये कह रहा हूँ कि मेरे अपने भाव जो कर्म के उदय में बनते हैं, उन पर भी मेरा वश है। मैं उनको दिशा दे सकता हूँ, मैं ऐसा अभ्यास और ऐसी आदत डाल सकता हूँ कि मेरे क्रोध का उदय ही ना आवे, आवे तो थोड़ा सा होकर के निकल जावे। जैसे कि बच्चों के अन्दर भी तो कषाय आती है, लेकिन उनकी कितनी क्षणिक। क्या मेरे भीतर भी ऐसे ही कषाय को मैं जरा क्षणिक नहीं बना सकता हूँ। मैं उसके ड्यूरेशन (अवधि) को कम नहीं कर सकता हूँ ? मैं उसकी इन्टेन्शिटी और पोटेन्शिलिटी को कम नहीं कर सकता हूँ? रोजमर्रा के जीवन में किसी अपने व्यक्ति के द्वारा कहीं गई कड़ी बात को अपन बड़े लाइट वे (हल्के ढंग) में लेते हैं और पीठ पर एक धौल भी लगा देते हैं, अरे ! तुम ऐसी बातें कर रहे हो और अगर वही बात कोई दूसरा कहे जिससे हमारी नहीं बनती है तो उसको गाँठ बाँध लेंगे अपन।

कर्म का उदय दोनों स्थितियों में है, आपको उसको लाइट-वे (हल्के) में लेना है या कि गाँठ बाँधनी है, यह हमारे ऊपर निर्भर करता है। मैं आपको यह कहना चाहता हूँ कि इतनी ही चतुराई हमें सीख लेनी है, इतनी ही कला हमारे भीतर आ जावे, पहली चीज तो कि जो बाँधे हैं कर्म हो सके तो उनको वहीं का वहीं पर सबसाइड कर दिया जावे (दबा दिया जाये) या वहीं का वहीं डेस्ट्रॉय कर दिया जावे और अगर हम नहीं कर पाते हैं और वे अपना फल देने लगते हैं, दे ही रहे हैं और हम उनका फल भोग रहे हैं तो फल को भोगते समय मैं कैसी सावधानी रखूँ, मैं क्या उपाय करूँ जिससे कि वे मेरा ज्यादा बिगाड़ ना कर पायें, अपना फल तो देंगे वे और देवें कोई हर्जा नहीं लेकिन मेरा बिगाड़ ना करें और वे मेरा बिगाड़ इतना नहीं करते जितना कि मैं अपने हाथ से हर्ष-विषाद करके अपना बिगाड़ करता हूँ।

तो सारी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले लूँ कि मैं कर्म के उदय में हर्ष-विषाद नहीं करूँगा। मैं जितना हो सकेगा, संतोष और समतापूर्वक अपना जीवन जीऊँगा। अगर ऐसा पुरुषार्थ जागृत कर ले तो कोई वजह नहीं है कि हम सब अपने कर्म के उदय को भी

आसानी से भोग कर आगे कि कर्म बंध की प्रक्रिया को नष्ट कर सकते हैं। आज आपने इतना ही सीखा कि हम कर्म का उदय आ जाने पर उसके साथ कैसा व्यवहार करें, कहाँ तक हमारी अपनी सामर्थ्य है।

हम अपनी उस सामर्थ्य को देखें और उसे और अधिक जागृत करें। कहाँ हम कमजोर पड़ जाते हैं उस कमजोरी को देखकर उसे दूर करने का पुरुषार्थ करें। इसी भावना के साथ बोलो आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 5

हम सभी लोगों ने पिछले तीन-चार दिनों में एक बार फिर से अपने जीवन को बहुत गौर से देखने का प्रयास किया है। हमारे अपने जो कर्म हैं जिन्हें हम रोज करते हैं या जिन्हें हम कर चुके हैं, वे कर्म हमारे पूरे व्यक्तित्व को, हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। वे कर्म हमारी वाणी, हमारे विचार, हमारी भावनाएँ और हमारी दिन भर की क्रियाओं को भी प्रभावित करते हैं।

ऐसी स्थिति में जबकि मेरे पहले किये हुये कर्म मेरे वर्तमान को प्रभावित करते हैं और मेरे वर्तमान के किये हुये कर्मों से भी मेरा वर्तमान प्रभावित होता है, तब क्यों ना ऐसा किया जाये कि इन कर्मों के बारे में ठीक-ठीक जानकारी हासिल करें, क्योंकि मेरा पूरा जीवन कर्मों से ही संचालित है। पहले तो मेरे मन में ऐसा भाव कभी-कभार आ जाता था कि शायद कोई और है जो मेरे जीवन को संचालित करता है, पर अब तो पिछले दिनों से लगने लगा है कि नहीं, हमारे अपने कर्म जो हम कर चुके हैं, या कि जिनके करने की तैयारी है, या कि जो हम कर रहे हैं, वो सब हमारे व्यक्तित्व को, हमारे पूरे जीवन को निर्मित करते हैं। अब जो हमने एक बार किसी से अपशब्द कह दिये हैं, किसी का खोटा कर दिया है, अब उसका फल तो हमको भोगना ही पड़ेगा। बहुत सहज सी बात है, सो ठीक है वो फल तो मुझे भोगना पड़ेगा, लेकिन उस फल को मैं कैसे भोगूँ अब ये समझदारी तो मैं अपने अन्दर जागृत कर सकता हूँ। ये चतुराई और ये कला तो मैं सीख सकता हूँ।

ये बात जरूर है कि मैंने अपनी लापरवाही, मैंने अपनी अज्ञानता में किसी व्यक्ति के साथ बुरा व्यवहार किया है और उसका फल मुझे जरूर से मिलेगा। लेकिन उस फल को क्या मैं कमी-बेशी कर सकता हूँ ? क्या मैं वो कर्म का फल ना मिले इस बात का इन्तजाम कर सकता हूँ। या कि वो कर्म का फल मुझे मिले तो थोड़ा कम होकर के मिले और या कि उसका स्वाद मैं बदल सकूँ ? तो पिछले दिनों हमने ये भी समझा है कि हमने

यदि अपनी अज्ञानतावश कुछ ऐसे काम कर लिये हैं जिनका हमें मालूम है कि फल अच्छा नहीं मिलेगा तो करने के बाद वो जो कर्म मेरे भीतर संचित हो गये हैं उन पर भी मेरा वश है। मैं उनको वहीं के वहीं अपने वर्तमान के पुरुषार्थ को जागृत करके नष्ट कर सकता हूँ। मैं खोटे कर्मों की स्थिति, मैं खोटे कर्मों की शक्ति, इन दोनों को कमजोर बना सकता हूँ। मैं अपने वर्तमान के पुरुषार्थ से, अपने पुराने अच्छे कर्मों को और ज्यादा डोमिनेट कर सकता हूँ।

इतना ही नहीं, जब मेरी सामर्थ्य है उन कर्मों के फल को भोगने की, तो मैं उनको (बाद में - आने वालों को) भी समय से पहले लाकर के उनका फल भोगकर के नष्ट कर सकता हूँ। ये तो मेरे अपने बाँधे गये कर्मों की स्थिति है लेकिन जब वे मुझे अपना फल देने के लिये आ जाते हैं, और वे मुझे अपना फल देने लगते हैं, तब मेरी होशियारी इसमें है कि मैं उनका फल लेते समय जरा सावधानी रखूँ। मैं समता भाव रखूँ। लेकिन यह कहना तो बहुत आसान है, लेकिन इस प्रक्रिया को थोड़ा सा समझना पड़ेगा।

असल में समता भाव रखने का अर्थ है कि अतीत के विकल्पों से मुक्त होना और भविष्य के भय से मुक्त होना। भविष्य की चिन्ता से मुक्त होना और वर्तमान को सँभाले रखना। इसका नाम है अपने कर्म के फल के उदय के समय समता रखना। ये बात अपन को सीख लेनी है। कह तो अपन देते हैं कि समता रखनी चाहिये लेकिन उसके मायने क्या हैं। असल में कब हमारी समता गायब हो जाती है ? कब हर्ष-विषाद होता है ? इस पर विचार करना पड़ेगा।

जब कर्म अपना अच्छा फल देने लगता है तब हम हर्षित हो जाते हैं और कर्म जब अपना बुरा फल देता है, जो मैंने ही किया था, उसका बुरा फल मिलने लगता है, तो मैं विषाद कर लेता हूँ, यह तो बहुत सामान्य सी चीज है। लेकिन ऐसा क्या है कि जब अपना कर्म फल दे और मैं हर्ष-विषाद से बच सकूँ। तो जरा सा किसी छोटे बच्चे को देखूँ तो ज्यादा आसानी होगी कि कर्म के उदय को कैसे समता से भोगा जाये। कैसे अतीत की चिन्ता और भविष्य के विकल्प से मुक्त होकर वर्तमान को सँभाला जाये, ये हम उनसे सीख सकते हैं।

संसार में सबसे ज्यादा सुखी अगर कोई दिखता है तो साधुजन और या कि छोटे-छोटे बच्चे खुश दिखाई पड़ते हैं, प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं और उसका कारण क्या है ? आप किसी एक छोटे बच्चे को जोर से डाँट दीजियेगा। डाँटने के बाद वो रोने लगेगा और जैसे ही वो रोने लगे तो फौरन हाथ में आपने मिठाई दे दी। थोड़ा सिर पे हाथ फेर करके प्यार

कर लिया। अब जरा देखियेगा उस बच्चे की स्थिति, आँखों में आँसू हैं, चेहरे पर मुस्कान है और हाथ में मिठाई है और आपके पास आकर के खड़ा है, वो ये विचार नहीं करता कि ये वो ही व्यक्ति है, जिसने थोड़ी देर पहले डाँटा था। ये तो कोई दूसरा है, ये तो मुझे प्यार कर रहा है, ये तो मुझे मिठाई दे रहा है। हम और आप हों अगर उसकी जगह पर तो बहुत लम्बे समय तक इस चीज को ध्यान में रखेंगे और बच्चा है तो वर्तमान में देख रहा है कि हाथ में मिठाई है उसका आनन्द लेना चाहिये और सामने वाला सिर पर हाथ फेर रहा है। पहले उसने डाँटा होगा, वो भूल गया है। क्या कर्म के उदय में जो समता रखने की बात आती है, क्या इससे हम कोई दिशा ले सकते हैं इन छोटे-छोटे से बच्चों की प्रसन्नता से। अपने मन की प्रसन्नता गायब ना होने दें कर्म का फल भोगते समय, क्या ऐसा सीख सकते हैं?

हमें यही पुरुषार्थ करना है कि जब कर्म अपना फल देने लगे तब हम हर्ष-विषाद से ना घिरें। हम हर्ष-विषाद से क्यों घिरते हैं क्योंकि अतीत की याद आ जाती है। ऐसा ही उस समय हुआ था। जब दुःख आता है तब अतीत की याद आ जाती है कि जिन्दगी निकल गयी मैंने सुख देखा ही नहीं। कभी क्षण भर को सुख मिला था, मेरी जिन्दगी तो पूरी दुःख में ही निकल गयी। मैं कहाँ तक इस दुःख को सहन करूँ ? थोड़ा सा दुःख है वर्तमान में लेकिन अतीत के सारे दुःखों की याद करके मैं अपने उस थोड़े से दुःख को बढ़ा लेता हूँ और ऐसे ही जब मेरे किसी साता कर्म का उदय आता है, थोड़ी सुख-सुविधायें मेरे चारों तरफ इकट्ठी होने लगती हैं, तब भी मैं उसमें अत्यन्त हर्षित होकर के भूल जाता हूँ कि पिछले दिनों भी तो यही सारे संयोग मिले थे और उन संयोगों में, मैंने इसी तरह से हर्षित होकर अपने जीवन में दुःख ही कमाया था। आज हर्ष आया है तो मैं इतना ज्यादा एक्साइट क्यों होऊँ? अगर ये विद्या हमारे लिये सीखने में आ जावे कि हम अतीत से मुक्त हो जावें।

और दूसरी चीज ये और है कि जब दुःख आया है तो ये थोड़ी देर के लिये आया है ऐसा नहीं लगता। ये पता नहीं है कब तक चलेगा। आगे भविष्य की चिन्ता और हो जाती है और जब सुख आता है, तब भी चिन्ता होती है कि यह लम्बे समय तक बना रहेगा कि नहीं बना रहेगा। दो-चार दिन में ही न खत्म हो जाये। भविष्य की चिन्ता से ग्रसित होकर के वर्तमान के सुख को बचाये रखने के प्रयत्न में अपना जीवन खो देता हूँ या कि वर्तमान के दुःख को सहन ना करके और उससे बचने के मिथ्या उपाय करने लगता हूँ।

तो मेरे अपने कर्म के उदय में, मैं कैसे व्यवहार करता हूँ ? मैं उसके साथ, इसी पर मेरा पूरा व्यक्तित्व और मेरा पूरा जीवन टिका हुआ है। आज अपन को इस कर्म बंध की

प्रक्रिया को जीतने का क्या उपाय हो सकता है, इस पर थोड़ा सा विचार करना है क्योंकि बाँधे गये कर्मों के परिवर्तन का विचार हमने कर लिया है, जो बँध गये हैं वे उदय में आकर अपना फल भी देने लगे हैं। सो उसमें जरा सावधानी रखनी है, चतुराई रखनी है, उसके फल भोगते समय यह भी हमने सीख लिया है। लेकिन इन कर्मों को जीतूँ कैसे ? अगर ये प्रक्रिया हमेशा चलती रहेगी तो कैसे काम चलेगा। इसलिये उस पर भी अपन विचार करेंगे। क्या कर्मों को जीतने का कोई उपाय है? ऐसा कर्म करूँ जिससे कि मेरे कर्मों से मैं मुक्त हो जाऊँ, क्या ऐसा कोई उपाय है ? वह भी है। आचार्य भगवन्तों ने कृपा करके सारी बातें बहुत व्यवस्थित ढंग से हमें समझाई हैं। हम उसका लाभ लें। अभी अपन थोड़ी सी चर्चा कर लेवें कि कैसे हम अपने सुख-दुःख को अतीत से और भविष्य से जोड़कर के और जब कर्म का उदय आता है तब उसमें समता नहीं रख पाते हैं। सुख को बढ़ा नहीं पाते हैं और दुःख को घटा नहीं पाते हैं, क्योंकि हम अपने सुख के लिये आगे तक भविष्य की चिन्ता से ग्रसित हो जाते हैं और या कि दुःख को और बढ़ा लेते हैं। घटा तो पाते ही नहीं हैं, अतीत में भी ऐसे ही दुःख भोगे, भविष्य में भी भोगने पड़ेंगे। वर्तमान के झेले नहीं जाते।

क्या हुआ एक बार ..... एक राजा का मित्र साधु बन गया और एक दिन राजा को जंगल में उसके दर्शन हुए। तो राजा का मन हुआ अपने मित्र से ..... कभी कोई विपत्ति आवे तो उसमें क्या करूँ ? सबके मन में ऐसा लगता है कि कभी कोई विपत्ति आवे तो ऐसा सूत्र तो कोई मेरे जीवन में आवे कि उससे मैं बच सकूँ। तो अपने मित्र होने की वजह से और निवेदन किया कि महाराज कभी विपत्ति आवे तो कोई मंत्र तो दे दो। उन्होंने कहा कि क्यों चिन्ता करते हो कि विपत्ति आयेगी। विपत्ति आयेगी इस बात की चिन्ता सबसे बड़ी विपत्ति है। अभी विपत्ति आई नहीं है। हम खींच-खाँच के ले आते हैं उसको, अगर आ गई, तो बाबाजी ने तो यही जवाब दिया कि आयेगी ही क्यों ? ऐसा सोचते ही क्यों हो ? बोले, ''नहीं महाराज, यह आपके सोचने की बात है, आप वर्तमान में जीते हो, वर्तमान को सँभालते हो। हम तो भैया भविष्य को भी सँभालने में लगे हैं, बिगड़ जायेगा तो क्या करेंगे ? कभी विपत्ति आ गई तो आप तो कोई मंत्र देवो, उन्होंने कहा कि देखो जब बहुत बड़ी विपत्ति आये और कोई उपाय ही नहीं सूझे, तब इस मंत्र का उपयोग करना और एक डिब्बी के भीतर एक कागज पर मंत्र लिख कर दे दिया कि इसको रखो, खोलना मत जब तक कि बहुत बड़ी विपत्ति ना आये जिससे कि बचने का उपाय ही ना सूझे, तब के लिये है। ये अपने जीवन में जब कर्म का उदय आये तब कैसे उसको हम झेलें इसकी विद्या है यह। और ऐसा हुआ कि राजा के जीवन में बहुत बड़ी विपत्ति आ गई। पड़ौसी राजा से झगड़ा हुआ, लड़ाई हुई और राजा को हार माननी पड़ी और हारकर के राजा भाग

रहा है। पीछे शत्रु के सैनिक लगे हुए हैं और आगे जाकर के देखता है कि मार्ग बन्द हो गया है और पीछे से तो शत्रु आ ही रहे हैं, एक अकेला उतने सौ पचास सैनिकों का सामना क्या करेगा। राजा ने सोचा कि इससे बड़ी विपत्ति और कोई नहीं हो सकती। अब तो मुझे अपने उस मित्र साधु की, उस सूत्र को, उस मंत्र को याद करना ही चाहिये और डिब्बी खोली और डिब्बी में से वो कागज निकला तो उस पर क्या लिखा हुआ था, मंत्र क्या था, ''दिस डे विल आलसो पास'' अर्थात् ये दिन भी गुजर जाएगा। राजा के मन में प्रसन्नता आ गई कि बात तो सही है। कितनी बड़ी से बड़ी विपत्तियाँ बीत गईं, ये भी बीत जाएगी और सचमुच ऐसा हुआ कि वे सैनिक आगे वह रास्ता बन्द है, ऐसा जानकर और उस रास्ते से ना जाकर और सीधे सामने रास्ते से निकल गये। राजा सुरक्षित हो गया, घटना कोई बहुत बड़ी नहीं है।

राजा ने फिर से अपनी सेना जोड़कर के पड़ौसी राज्य पर आक्रमण किया और जीत लिया, अपना साम्राज्य वापस ले लिया और साम्राज्य वापस लेकर के जीतने का जश्न मनाते समय राजा जब गद्दी पर बैठा हुआ है, तब भी उसे यही बात याद आ गई कि ''दिस डे विल आलसो पास''। ये जो विपत्ति का क्षण था, जैसे बीत गया ऐसे ही ये जो मेरे जीवन में मेरे किये हुए पूर्व जन्म के कर्मों की वजह से सुख का दिन आया है, वो भी बीत जाएगा। मैं क्यों उसमें ज्यादा एक्साइट हो रहा हूँ। मुझे विषाद के समय पर डिप्रेस होने की जरूरत नहीं हैं। आया है अगर विषाद का क्षण, तो वो भी गुजर जाएगा और अगर आया है हर्ष का क्षण, तो वो भी गुजर जाएगा। क्या यह एक सूत्र इन कर्मों के उदय के समय, मैं अपने जीवन में काम ला सकता हूँ। मैं अपने वर्तमान को आसानी से सँभाल सकता हूँ। वरना हम तो यही सोचते हैं कि हमारे कर्म उदय में आयेंगे और उनका फल हमें भोगना ही पड़ेगा। तो भैया, इतना सोचना ही पर्याप्त नहीं है, उनका उदय तो आयेगा और उनका फल भी भोगना पड़ेगा। लेकिन फल कैसे भोगना है यह मेरे अपने पुरुषार्थ पर निर्भर है बस इतनी सी बात मुझे मेरे ध्यान में रखनी है। फल तो दुनिया भोगती है, साता का उदय सैकड़ों लोगों को है, लेकिन उस साता के उदय में कौन अपना क्या पुरुषार्थ करता है, इस पर निर्भर करता है उसके अपने जीवन का आगे का लेखा-जोखा। सारा व्यक्तित्व इस पर निर्भर करता है। कितने लोग हैं जिनको कि साता के उदय में सारी सुख-सुविधाएँ मिली हैं। उन सुख-सुविधाओं का कौन कैसा उपयोग कर रहा है। इसके लिये कोई कर्म नहीं है, यह ध्यान रखना। हम यहाँ पर मंदिर आये हैं, हम यहाँ पर धर्म सभा में बैठे हैं, किसी कर्म के उदय से नहीं बैठे हैं।

हम यहाँ पर अपने किसी कर्म को हटाकर के अपने पुरुषार्थ को जाग्रत करके यहाँ तक आये हैं। किसी कर्म के उदय में यहाँ पर नहीं आये हैं यह ध्यान रखना। सारी चीजें सिर्फ कर्म के उदय से होती हों ऐसा नहीं है, मेरे अपने पुरुषार्थ से भी होती है, मेरे कर्म के उदय ने तो बस इतना ही किया है कि यहाँ आने में बाधा उत्पन्न नहीं की है पर लाने में मुझे मदद नहीं की है। आया तो मैं अपने पुरुषार्थ से हूँ। बस इतना ही जरूर हुआ है कि जब मैंने अपने पुरुषार्थ को जागृत किया तो बस वह कर्म मेरे बीच में बाधक नहीं बन सका। वो आ सकता था और अगर वो बाधक हो जाता तो हो सकता है कि मैं बाहर ही कहीं एंगेज हो जाता और यहाँ नहीं आ पाता। इतना तो कर्म का वश है, लेकिन कोई भी कर्म किसी को शराब खाने की तरफ ले जाएगा या कि जिनालय की तरफ ले जायेगा, निर्धारित नहीं करता। ये निर्धारित मैं करता हूँ कि मेरे पैर किस तरफ मुड़ना चाहिये। कर्म तो किस तरफ पैर मुड़ेंगे वहाँ पर बाधा डाल सकता है। हमें उस तरफ बायफोर्स (बलपूर्वक) ले नहीं जा सकता। ये ध्यान रखना। ये हमारा पुरुषार्थ है। कोई ये कहे कि मैं क्या करूँ मेरे कर्म का उदय है। मुझे तो चोरी करने का मन होता है। ये मेरी अपनी च्वाइस है, यह मेरे अपने कर्म का उदय नहीं है। हाँ अगर चोरी करते समय मुझे बाधा पड़ेगी, तो यह मेरे कर्म का उदय है। मंदिर आते समय मुझे बाधा पड़ेगी तो यह मेरे कर्म का उदय है लेकिन मंदिर लाने वाली कोई कर्म की प्रकृति नहीं है कि जो मुझे मंदिर तक लेकर आये। यह मेरा पुरूषार्थ है, नहीं तो सब चीजें कर्म के उदय से ही होती हों ऐसा भी नहीं समझना। हम सामान्य रूप से यही मानकर चलते हैं लेकिन बहुत सी चीजें हम अपने पुरुषार्थ से करते हैं, इसलिये हमने यह बात बहुत अच्छे से सीखनी है कि हम इस बात का रोना नहीं रोएँगे कि क्या करें हमारे कर्म का उदय है। हम सब इस बात का ध्यान रखेंगे कि क्या करें मेरे अपने वर्तमान के पुरुषार्थ में कहीं कोई खोट है कि मेरे कदम जो हैं उस तरफ क्यों मुड़ जाते हैं, क्यों नहीं मैं अपने कल्याण के रास्ते पर चलता हूँ। वो मुझे मुश्किल में डाल सकता है, अगर वो असाता का उदय है तो मुझे मुश्किल खड़ी कर सकता है। लेकिन मुझे मुश्किल के दौरान विषाद करना है या नहीं करना है, संक्लेषित होना है या नहीं होना है, यह तो मेरे ऊपर निर्भर करता है।

आपको थोड़ा सा लगेगा कि वह बात तो कुछ ठीक नहीं जमती। अपने को लगता तो ऐसा ही है पूरी जिन्दगी निकल गयी ऐसे ही और अपने पास ढेर सारे उदाहरण हैं। हम भी देना चाहें तो ढेर सारे उदाहरण दे सकते हैं कि कौन ऐसा है जिसे कर्मों का फल न भोगना पड़ा हो, चाहे राजा रामचन्द्र जी हों, चाहे भगवान महावीर हों और चाहे पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव जी हों, सबको अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा। तो मैं यह

नहीं कह रहा हूँ कि किसी को अपने कर्मों का फल नहीं भोगना पड़ा हो। मैं तो यह कह रहा हूँ कि कोई कर्मों का फल रो कर भोगता है, कोई हँसकर भोगता है। कोई शांति से भोगता है और कोई घबराहट से भोगता है, इतना ही है। भगवान ऋषभदेव के भी छः महीने कर्म का उदय रहा और उनको अन्तराय रहा लेकिन उन्होंने उस अन्तराय को कैसे भोगा, यह देखने की बात है। महत्वपूर्ण यह है उनके छः महीने कर्म का उदय रहा, यह महत्वपूर्ण नहीं है। वो तो किसी के भी रह सकता है लेकिन उसे उन्होंने कैसे भोगा ..... शांति से, समता भाव से भोगा, ये कला भी हमें सीखना पड़ेगी। अब देखे कि हम कर्मों को जीत सकते हैं क्या ?

कर्मों को जीतने के तीन उपाय हैं। पहला तो यह है कि बाह्य वातावरण से जितनी जल्दी हो सके सामंजस्य बना लेना चाहिये। कर्मों के उदय में यह स्थिति गड़बड़ा जाती है। सामंजस्य नहीं रह पाता। या तो बहुत हर्षित हो जाते हैं या कि विषाद कर लेते हैं। दोनों ही चीजें हो जाती हैं, दोनों ही सामंजस्य नहीं है। सद्भाव और अभाव दोनों ही स्थितियों में सामंजस्य बनाकर के रखना।

और दूसरी चीज प्रतिक्रिया ना करें ऐसी कोशिश करना। करनी पड़े तो कम से कम प्रतिक्रिया करें और यदि प्रतिक्रिया करें भी तो बहुत पोजिटिव हो, बहुत रचनात्मक और कन्सट्रक्टिव हो, डिस्ट्रक्टिव प्रतिक्रिया ना हो। या तो प्रतिक्रिया ना करें और अगर होती भी है तो अल्प करें, और उसमें भी ध्यान रखें कि वह प्रतिक्रिया रचनात्मक हो।

और तीसरी चीज संसार के घात-प्रतिघात से बचने का प्रयत्न करे। क्योंकि संसार में यही चलता रहता है। ये तीन ही चीजें हैं जिन पर हम विचार करें तो इससे हमारे कर्मों को हम व्यवस्थित कर सकते हैं। कर्मों को सही दिशा दे सकते हैं। अभी तो हमने अज्ञानतापूर्वक जो बाँधे थे कर्म, उनको व्यवस्थित किया है और वो जब उदय में आयेंगे, तो अपने को व्यवस्थित कर लिया है और अब जरा इस प्रक्रिया को और समझ लेवें कि वर्तमान में कर्म कैसे करना है तो बाह्य वातावरण से जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी सामंजस्य करना क्योंकि यहाँ इस संसार में सबको सब चीजों का सद्भाव नहीं है और सबको सब चीजों का अभाव नहीं है। कुछ चीजों का सद्भाव है, कुछ चीजों का अभाव है और जब मेरे जीवन में कुछ चीजों का सद्भाव होता है और कुछ चीजों का अभाव बना रहता है तो जब सद्भाव होता है तो मैं भूल जाता हूँ कि मुझे उस सद्भाव में उन चीजों का सदुपयोग कैसे करना चाहिये। तब मैं उनका दुरुपयोग करने लगता हूँ और जब उन चीजों का अभाव होता है, तब मैं उन चीजों को प्राप्त करने के लिये चाहे जैसा उपाय करने लग जाता हूँ। मैं

दोनों स्थितियों में अपने स्वधर्म से, अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाता हूँ। बस, यहाँ जाकर के मैं अपना सामंजस्य खो बैठता हूँ। वर्तमान के कर्मों को व्यवस्थित करने का उपाय यही है कि जो सद्भाव और अभाव है चीजों का, उसके बीच में देखूँ कि कैसे मैं अपने स्वधर्म को या कि कर्त्तव्य को निभाता रहूँ, क्योंकि चीजों के सद्भाव में भी मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाता हूँ और चीजों के अभाव में भी मैं कर्त्तव्य से विमुख हो जाता हूँ। अपार धन हो, उसके सद्भाव से भी मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख होता हूँ या कि धन का अभाव हो तब भी मैं अपने कर्त्तव्य से विचलित होके या कि मिथ्या कार्य करके धन सम्पत्ति अर्जित करने लगता हूँ। दोनों ही स्थिति में मेरा बाह्य वातावरण से सामंजस्य खो जाता है। चाहे सद्भाव हो या अभाव हो दोनों के बीच जो बेलेन्स करके चलता है, वो ही जीत पाता है। इन कर्मों को जीतना है अगर तो इन दोनों के बीच सामंजस्य रखें।

जीवन में हम देखते हैं कि किसी के पास धन पैसा है तो ज्ञान नहीं है। किसी के पास बुद्धि है तो शरीर ठीक नहीं है। किसी के पास में अगर धन पैसा है तो बेटा नहीं है, और अगर बेटा है तो शराबी निकल गया है। इधर सद्भाव है और उधर अभाव भी है और इन दोनों के बीच में हम कोई सामंजस्य नहीं बिठा पाते हैं। क्षण भर को और लोगों की तरफ देखते हैं कि और लोगों की अपेक्षा मेरे बेटा तो है कम से कम, तो जरा दिलासा मिलती है, मगर अगले ही क्षण देखता हूँ कि बिगड़ तो गया है, संस्कार विहीन है। अगले ही क्षण मुझे फिर दुःख घेर लेता है। मैं सामंजस्य नहीं कर पाता हूँ। जाने कितनी चीजें हैं जिनका कि मुझे सद्भाव है, जिनका कि मुझे अभाव है। अतः अब चीजों के बीच में, मैं क्या करूँ, कैसे अपने जीवन को आगे ले जाऊँ जिससे कि मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख ना हो पाऊँ। बस इतना ध्यान रखना है क्योंकि इन चीजों का संयोग और वियोग दोनों जीवन में होता है और उस संयोग-वियोग के गुणा-भाग में, मैं अपने कर्त्तव्य से विचलित हो जाता हूँ। इन चीजों का जब संयोग होता है तब भी मैं विचलित हो जाता हूँ। इन्हीं में रच-पच जाता हूँ और अपने कर्त्तव्य को भूल जाता हूँ। जब इन चीजों का वियोग होगा, कल के दिन तब इनकी चिन्ता में कि कैसे इनका फिर से संयोग हो, मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख होकर फिर इसी जुगत में रहूँगा कि कैसे इन सबका फिर से संयोग हो और यही मैं पूरे जीवन करता रहता हूँ। इनके बीच में, मैं आज तक सामंजस्य नहीं बना पाया हूँ। सामंजस्य सिर्फ इतना है कि चाहे अभाव हो चाहे सद्भाव हो चीजों का, मुझे अपना कर्त्तव्य हमेशा करते रहना है। ये पहली चीज मुझे अपने जीवन में सीख लेनी चाहिये। क्या-क्या नहीं मिला मुझे ? मुझे शरीर मिला। मुझे वाणी मिली। मुझे इन्द्रियों की पूरी सामर्थ्य मिली है। ये सब मेरे लिये सद्भाव है। अब सद्भाव का मैं क्या करूँ। मैं अपना कर्त्तव्य करूँ इससे

इन आँखों से दूसरे की बुराई कर्त्तव्य करना नहीं है। इनसे ही जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करना मेरा कर्त्तव्य है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं इस आँख का सदुपयोग नहीं कर पा रहा हूँ। ये तो फिर मैंने अपने सद्भाव के साथ ज्यादती कर ली है। ये तो मैंने जो चीजें मुझे प्राप्त हुई हैं उसका सदुपयोग नहीं किया। इसका मतलब बाह्य वातावरण से मैं सामंजस्य नहीं बिठा पाता हूँ और या फिर मैं देखता हूँ कि मेरे तो आँखों की रोशनी बहुत कम है। दोनों ही स्थितियाँ हैं। मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाता हूँ। नहीं भैया, मुझे अल्पबुद्धि, रुग्ण शरीर और इन्द्रियों की शक्ति भी कम मिली हो, तब भी मैं अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकता हूँ और अपने कर्त्तव्य का पालन करके और अपने जीवन को अच्छा बना सकता हूँ। इतना ही नहीं और अगर मुझे ये सारी सामर्थ्य बहुत मिली है तो सम्भव है कि मैं अपने कर्त्तव्य से विचलित होकर के इस सारी सामर्थ्य का दुरुपयोग भी कर सकता हूँ।

जब बापू एक मीटिंग में पहुँचे इलाहाबाद और सुबह-सुबह जब मुँह धोने के लिये नायडू ने एक लोटा भरकर के उनको दिया और नेहरू जी बाजू में हैं। मुँह वो भी धो रहे हैं, और चर्चा चल पड़ी कांग्रेस की, तो कब लोटा खाली हो गया, ध्यान नहीं रहा और मुँह तो पूरा नहीं धुल पाया, तो बड़े दुःखी हुये बापू। नायडू ने कहा इतने चिन्तित क्यों हो एक और लौटा ले लीजियेगा, पानी का भरा हुआ। नेहरू जी भी हँसने लगे कि भूल जाइयेगा कि आप आश्रम में हैं। आप तो मेरे यहाँ पर प्रयाग में हैं। यहाँ संगम पर बैठे हुए हो आप। यहाँ पानी की क्या कमी है ? तो उन्होंने क्या कहा था कि चीजों का सद्भाव मुझे मेरे कर्त्तव्य से अगर विचलित कर दे तो इससे अच्छा है कि वो चीजें ना होतीं तो ज्यादा अच्छा था। आज मेरे पास ज्यादा पानी है तो इसका मतलब यह नहीं है कि मैं उसका दुरुपयोग करूँ। मैं ऐसा कर्म करूँ जिससे कि मैं अपने कर्त्तव्य से विचलित न हो जाऊँ उसके सद्भाव में। कल के दिन इन चीजों का अभाव मुझे इन चीजों के सद्भाव के लिये फिर मेरे कर्त्तव्य से विचलित करेगा। मुझे एक बार अगर चीजों के सद्भाव में उनका सदुपयोग करने की आदत नहीं रहेगी तो उनके अभाव में, मैं व्यथित होकर के कैसे उनका सद्भाव हो इसके लिये मिथ्या मार्ग अपनाऊँगा। तब मेरा पूरा वर्तमान नष्ट हो जाएगा और मैं सम्हालना चाहता हूँ अपने वर्तमान को, तो मुझे अभाव और सद्भाव दोनों में अपने स्वधर्म, अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलना चाहिये। ये चीज जो हैं आश्रम में, एक दातुन आई है, अगर दातुन का ऊपर का सिरा दाँतों को घिसने में उपयोग में आ गया है तो वे कहा करते थे कि जितना काम में आ गया है, उसको अलग कर दो बाकी फेंकने की आवश्यकता नहीं है कि पूरी फेंक दी जाये, उत्ती बचा लो, कल फिर उसी से घिसने के काम आयेगी।

आप कहेंगे बड़ी कजूंसी है यह तो। डिसपोजेबल का जमाना है कि पीओ और फेंको। इन चीजों का सद्भाव कल के दिन जब हमें अभाव होगा, तब बहुत मुश्किल में डालेगा, ये ध्यान रखना। बाह्य वातावरण किस तरह से हमारे कर्मों को प्रभावित करता है और कैसे हम उसके साथ समायोजन नहीं कर पाते हैं, ये छोटी-छोटी सी चीजे हैं, अगर हमने ये, ये कला सीखली तो फिर देखियेगा जो हम कह रहे थे कि कर्म का उदय आये और चाहे चीजों का सद्भाव हो या अभाव हो, मैं अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होऊँगा। यही प्रक्रिया तो सीखनी थी, मुझे मेरे अपने पुरुषार्थ के द्वारा। मैं इस प्रक्रिया को सीख सकता हूँ।

एक बाबाजी रास्ते से गुजर रहे थे। किसान के खेत को देखकर के बड़ी प्रसन्नता जाहिर की कि यह तुम्हारा कितना सौभाग्य, तुम्हारे पिता से तुम्हें कितना बढ़िया खेत मिला है। तब मालूम उस किसान ने क्या जवाब दिया था कि बाबाजी, मेरे पिता का मैं एहसानमन्द हूँ कि इतना बढ़िया खेत मुझे मिला, लेकिन इस खेत में जब फसल नहीं आई थी, तब इस खेत को देखते कि क्या स्थिति थी इसकी, और आज जब फसल आई है, तब आप देख रहे हैं। मुझे मेरे हाथ में जब यह खेत मिला था, तब क्या स्थिति थी। ये बात मुझे किस बात की प्रेरणा देती है, मुझे वर्तमान का जीवन कैसा मिला था। अब मैंने उसमें किस तरह से इजाफा किया है ये मेरे अपने पुरुषार्थ का फल है। ये मेरे अपने बाह्य वातावरण के साथ एडजस्ट करने की सामर्थ्य है। जो जितना, जो प्राप्त हुआ है उसमें मैं क्या बेहतर से बेहतर कर सकता हूँ, मुझे दो आँखें और दो हाथ और दुरस्त शरीर मिला है तो मैं क्या बेहतर कर सकता हूँ। मैं अपने कर्त्तव्य को कैसे ठीक से करूँ, अगर ये चीज मेरे मन में बनी रहे तो आसानी से मैं कर्मों को जीत सकता हूँ। दूसरी चीज कि मैं प्रतिक्रिया ना करूँ। पर ये तो बहुत मुश्किल है, कोई मुझे गाली दे और मेरे भीतर कुछ भी ना हो। पानी हिले तक नहीं भीतर का, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। कोई मुझे प्यारी सी बात कहे और मेरे भीतर मैं एक्साइट नहीं होऊँ, ऐसा हो ही नहीं सकता। प्रभावित हुये बिना रहता ही नहीं मैं, जो भी एक्शन होता है बाहर से, मैं उसका रिएक्शन हमेशा करता हूँ। बिना रिएक्शन के तो होता ही नहीं है। बाह्य वातावरण मेरे ऊपर प्रभाव डालेगा, मुझे उसकी प्रतिक्रिया कैसी करनी है। मुझे प्रतिक्रिया कम से कम करनी है और जहाँ तक बन सके, बुरी प्रतिक्रिया को पोस्टपोन करना है, पर अच्छी प्रतिक्रिया करने के लिये हमेशा ध्यान रखना है। इतना नहीं कर सकते क्या अपन ? माँ घर में कहती थी कि फलाना काम कर दो, तो फौरन जवाब मिल जाता -"हम नहीं करते", "अपन को अभी फुरसत नहीं है।" नहीं करूँगा पहले नम्बर, बाद में कहेंगे धीरे से "हाँ बताओ क्या करना है"। हम

सबके साथ भी यही है। सबसे पहले हम रिएक्शन क्या करते हैं। नेगेटिव रिएक्शन करते हैं, इतनी आदत हमारी पड़ गई है। कर्म हम करते भी हैं तो नकारात्मक कर्म अधिक से अधिक करते हैं और हम कर्मों को जीतना चाहते हैं। नकारात्मक कर्म करने वाला कर्मों को जीत नहीं सकता। जो सकारात्मक, पोजिटिव कर्म करता है, रचनात्मक कार्य करता है, वो कर्मों से पार हो जाता है। कक्षा में फेल होने वाला आगे की कक्षा में नहीं बढ़ता। भैया, कक्षा में पास हो जाने वाले को आगे की कक्षा में बढ़ाया जाता है और हम तो अपने कर्म करने में फेल हैं तो कर्मों से पार कैसे होंगे ? जरा कर्म करने की प्रक्रिया तो सीख लेवें। कर्म तो करना है उनकी प्रतिक्रिया करनी है, उस प्रतिक्रिया को कैसा करना है ? अत्यन्त अल्प प्रतिक्रिया करने वाला कर्मों से पार हो जाएगा और अगर प्रतिक्रिया करता भी है और पोजिटिव करता है, तब भी उससे पार हो जाएगा। सिर्फ ये प्रक्रिया अपन को सीख लेनी है।

रास्ते से चले आ रहे हैं और काँटा लग गया। खून निकलने लगा। क्या प्रतिक्रिया करनी है, अरे कैसे लोग हैं, रास्ते में पत्थर डाल देते हैं। एक प्रतिक्रिया ये है और अगर ज्यादा अपना रौब है, अपना रुतबा है, अगर तो पत्थर क्या, मैं तो पूरी रोड फिर से बनवा दूँगा। हाँ, ऐसी प्रतिक्रिया करूँगा और या फिर तीसरी प्रतिक्रिया और है जो सज्जन पुरुष की प्रतिक्रिया होती है। दोनों प्रतिक्रियाएँ संसार बढ़ाने वाली हैं, मेरे कर्मों के लिये और अधिक मौका देने वाली हैं। मेरे साथ ट्रेप होने का, मेरे साथ बँधने का और इन कर्मों को हटाने का, जीतने का उपाय क्या है ? कि जिस क्षण मुझे वो काँटा लगे तब धन्यवाद देता हूँ कि चलो काँटा ही लगा, सम्भव है कि इससे भी ज्यादा कोई चोट लग सकती थी। अच्छा हुआ निकल गया मामला। किसी से कोई शिकायत नहीं है, किसी के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है। अपने जो कर्म मैंने किये थे उनका फल। अच्छा हुआ मेरी सावधानी से ये कर्म आकर के निकल गया। अब मुझे कोई प्रतिक्रिया नहीं करनी और करनी भी है तो पोजिटिव; पोजिटिव सिर्फ इतनी कि धन्यवाद दे रहे हैं कि बहुत अच्छा हुआ निकल गया। किसी के गाली देने पर क्या धन्यवाद देने का मन होता है। नहीं होता, सीखना पड़ेगा कि बहुत अच्छा हुआ, गाली देकर ही मामला निपट गया, पता नहीं तमाचा मार सकता था। मेरा कर्म मैंने पता नहीं, मैंने कैसा बाँधा था जो कि सिर्फ गाली लेकर के आया और हो सकता था कि ये तमाचा दे सकता था कि कल के दिन अगर इसको मेरे किसी कर्म के उदय से इसको ऐसी प्रेरणा हो जाती तो मेरे ऊपर बंदूक भी चला सकता था। अच्छा हुआ कि गाली में मामला निपट गया। धन्यवाद, बहुत मुश्किल है। ऐसा

रिएक्शन बहुत मुश्किल है, लेकिन अगर ये प्रक्रिया हम सीख लेवें तब तो देखिएगा, कितना मजा आ जाएगा।

लेकिन जिन्दगी लग जायेगी। कोई बात नहीं लग जाये, पर अपन ने मन तो बना लिया। कम से कम इस बात को समझ लिया है कि हम जो कर्म कर रहे हैं ना, उसको कैसे करना है। वो ही कर्मों को जीतने का उपाय है और कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है, जो लोग कर्मों को जीतते हैं वो और कोई बड़े-बड़े कर्म करते होंगे, ऐसा नहीं है। वे इन छोटे-छोटे कर्मों को करने का ढंग सीख लेते हैं, बस इतना ही है। सफलता जिनको मिलती है, वो कोई अलग कर्म करते हों ऐसा नहीं है। वे बस कर्मों को अलग ढंग से करते हैं। ये हमें सीख लेना चाहिये।

और तीसरी चीज़। अब तीसरी चीज़ पर विचार मेरे ख्याल से फिर करेंगे अपन। आज दो ही चीजें ठीक हैं। समय की सीमा में रह करके भी कैसे काम किया जाता है, ये भी काम करने का एक ढंग है। नहीं तो सारा दिन गड़बड़ा जाएगा। सामंजस्य बाह्य वातावरण से खो जाएगा। कल किसी ने प्रश्न कर दिया था उसका जवाब भी दिये दे रहा हूँ कि धार्मिक कार्यों में समय की सीमा की क्या आवश्यकता है, उन्हें तो जितनी चाहे देर तक करना चाहिये। लेकिन ध्यान रखना अपने कर्त्तव्य से विमुख होना धर्मात्मा होने का लक्षण नहीं है। मैं सुबह से पूजा विस्तारूँ, और ना मुझे अपने बच्चों के भोजन की चिन्ता है, और ना मेरे अपने परिवार की और सुबह से विस्तारी और शाम तक कर रहा हूँ। कहने को तो मैं पूजा कर रहा हूँ। वाह भैया, तब तो फिर बहुत अच्छा है। मैं अपने कर्त्तव्य को और दायित्व को पहिचानूँ। दोनों में बहुत फर्क है। धर्म-ध्यान करना मेरा दायित्व है लेकिन इसके साथ कितनी देर तक कैसा क्या करना ये मेरा कर्त्तव्य है। पढ़ना मेरा दायित्व है, क्योंकि मैं विद्यार्थी हूँ, लेकिन कर्त्तव्य यह है कि समय से स्कूल में पहुँचूँ। ऐसा नहीं है कि मुझे तो पढ़ना है दो बजे पहुँचूँगा मैं स्कूल। 12 बजे स्कूल लगता है तो 12 बजे ही पहुँचना पड़ेगा। ये मेरा कर्त्तव्य है। मुझे तो भोजन करना है, सुबह से शाम तक कभी भी कर सकता हूँ। ऐसे नहीं चलेगा। मेरा कर्त्तव्य है कि जब माँ थाली परोस के बुला रही है, तब उस समय पहुँच जाऊँ बाकी काम छोड़कर के या फिर बाकी काम इस तरह व्यवस्थित करूँ कि समय पर पहुँचूँ। इसलिये ये भी आवश्यक है। यह जवाब भी मुझे जरूरी था देना। हम इस तरह बाह्य वातावरण से सामंजस्य नहीं बना पाते हैं। हमें अपने कर्त्तव्य को पहले ध्यान में रख कर के अपने कर्म करना चाहिये और प्रतिक्रिया जितनी हो सके कम करें और अगर करें भी तो पोजिटिव हो। अगर किसी ने हमारे ऊपर गर्म चाय डाल दी है, जैसे सुकरात के ऊपर उनकी जीवनसाथी ने डाल दी थी और सारे मित्र उनके सामने हक्के-

बक्के रह गये थे कि अब तो मामला बिगड़ा और तब भी सुकरात ने मुस्करा करके कहा था कि बहुत-बहुत धन्यवाद मेरी जीवनसाथी, को ऐसी हिसाब से डाली कि आधा ही जल पाया, आधा तो फिर भी बचा हुआ हैं। कुछ नहीं बिगड़ा, हो सकता है पूरा जल जाता लेकिन धन्यवाद उसको। ऐसी प्रतिक्रिया करने का यदि हम कुछ उपाय कर लेवें तो भैया, हमारे वर्तमान के कर्म भी सुधर जाएँगे और हम उनको जीत सकेंगे। अपने जीवन को अच्छा बना पायेंगे। इसी भावना के साथ बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी मुनि महाराज की जय।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 6

हम सभी एक बात बहुत अच्छी तरह से पिछले दिनों समझ गये हैं कि हम यहाँ निरन्तर नये-नये कार्य करते हैं और अपने किये कर्मों का फल भी चखते हैं और आगे के लिये नये कर्म का संचय भी करते हैं। संसार में कोई भी ऐसा नहीं है, देह को धारण करने वाला जिसे कि कर्म का बन्धन ना हो, चाहे साधु हो या कि एक सामान्य गृहस्थ हो, सभी के जीवन में कर्म बंधन निरन्तर चलता रहता है। हम जब चाहें कि अब हमें कर्म नहीं बाँधना है, तो हमारे चाहने से कर्म का बंधन रुक नहीं सकता। ठीक ऐसे ही जैसे कि एक बार किसी से कर्ज ले लिया, उधार ले लिया तो अब चाहे दिन हो चाहे रात हो, इसका ब्याज निरन्तर बढ़ता ही जायेगा। हम चाहकर के भी उसको रोक नहीं सकते। ठीक ऐसे ही यह कर्म की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। जैसे - बेटा स्कूल से लौटकर आता है, और जल्दी से बस्ता रख और खेलने के लिये दौड़ लगाता है तो माँ पकड़ लेती है, 'खाना खाकर जाओ फिर बाद में खेलना।' उसको तो खेल की लगी हुई है वो कहता है 'नहीं खाना खाना', तो फिर सुनो 'दूध पीकर जाओ'। जिसको खेल खेलना है उसे कहाँ दूध पीने की फुरसत है। उसको दूध भी नहीं पीना तो फिर कान पकड़ लेती है कि तुम खेलने जाओ मैं मना नहीं करती लेकिन दो में से एक कुछ करना पड़ेगा। या तो खाना खाकर जाओ या कि दूध पीकर जाओ लेकिन बिना उसके तो नहीं जाने दूँगी।

कर्म बंध की प्रक्रिया भी ऐसी ही है। करना तो पड़ेगा या तो खाना खाके जाओ या कि दूध पीकर जाओ। कर्म तो बँधेंगे या तो शुभ कर्म बँधेंगे या कि अशुभ कर्म बँधेंगे। दो में से एक तो बाँधना ही पड़ेगा। कर्म ना बँधे यह तो बहुत मुश्किल है। जब तक देह धारण करी है तब तक तो कर्मों के बंधन से मुक्ति इतनी आसान नहीं है पर इतनी च्वाइस हमारी है कि हमें शुभ-बाँधना है कि अशुभ बाँधना है। यह हमारी च्वाइस है और हमें इसका लाभ उठाना चाहिये।

जब कर्म बाँधना ही है, हम कुछ ना कुछ कर्म करते हैं, जिससे कि हमारे जैसे परिणाम बनते हैं वैसे नये कर्म हमारे अन्दर संचित होते हैं। जब ये क्रिया निरन्तर चल ही

रही है तो फिर अब मेरा अपना कौशल है, मेरी अपनी दक्षता है, मेरी अपनी आर्ट है। मेरी अपनी टेक्नोलॉजी है कि मैं इससे क्या चाहता हूँ। मेरी च्वाइस क्या है। मैं शुभ को चाहता हूँ कि अशुभ को चाहता हूँ। मैं जैसा चाहूँ, वैसा बाँध सकता हूँ। और भैया कर्म बंध की प्रक्रिया को जीतने का यही उपाय है। मैं मनुष्य हूँ तो यदि देव नहीं बन पाता हूँ तो कम से कम ऐसा तो करूँ कि मनुष्य ही रह आऊँ, ऐसा तो न करूँ कि जिससे मैं पशुता पर उतर जाऊँ। ये तो मेरा विवेक है तो मुझे अगर कर्म बाँधने ही हैं तो ऐसे बाँधूँ जिससे कि देवत्व को प्राप्त करूँ। ऐसे बाँधूँ, कि कम से कम अपने भीतर की मनुष्यता तो बरकरार बनी रहे। ऐसे खोटे कर्म तो नहीं बाँधूँ जिससे कि मुझे पशुता की तरफ या नरक की तरफ उतरना पड़े। बस, हमें अब अपने कर्मों को जीतने के लिये प्रक्रिया करनी है। संसार के घात-प्रतिघात से बचने का नाम यही है कि संसार के जो घात-प्रतिघात हैं वे मुझे निरन्तर अशुभ में ले जाते हैं। मैं संसार के घात-प्रतिघात से बचके, परोपकार में लग जाऊँ, कर्मों को जीतने का तीसरा उपाय ये हमारे हाथ में है।

पहला उपाय कल हमने विचार किया था। दो उपायों पर हमने विचार किया था कि बाह्य वातावरण से जितनी जल्दी हो सके सामंजस्य बिठा लेना चाहिये। कम्प्रोमाइज और एडजस्टमेन्ट करके आगे बढ़ जाना चाहिये। कौन पड़े झगड़े में। **"मैं सबकी सब बातें चुपचाप मान लेता हूँ, लोग कहते हैं सब बातें चुपचाप मानते जाना कमजोरी है, सो मैं उनकी यह बात भी मान लेता हूँ। क्या करूँ, मैं कमजोर हूँ, मेरे से व्यर्थ लड़ा नहीं जाता।"** ये एक बार हमारे जीवन का सूत्र बना लेवें, ऐसी कमजोरी हमें स्वीकार है। कम से कम व्यर्थ के घात-प्रतिघात से तो बच जायेंगे। तो पहला उपाय कर्मों को जीतने का यही था और दूसरा था कि प्रतिक्रिया से बच तो पाता नहीं हूँ। प्रतिक्रिया तो करनी ही पड़ती है। लेकिन मेरी प्रतिक्रिया कम से कम हो और जितनी भी हो वो सब पोजिटिव हो। सकारात्मक हो, रचनात्मक हो, कन्सट्रक्टिव हो। किसी की उससे हानि ना हो। मैं प्रतिक्रिया इस तरह की करूँ और तीसरी कर्मों को जीतने की प्रक्रिया है कि मैं देखूँ कि मेरे कार्यों की जिम्मेदारी तो मुझ पर है पर उसमें से शुभ को चुनना है कि अशुभ को। तो दिन भर में, मैं ज्यादा से ज्यादा शुभ कर्मों को चुनूँ। जो मुझे करना है वो शुभ ही करूँ और अशुभ से बचूँ। संसार के घात-प्रतिघात में तो सिर्फ अशुभ की तरफ ही बैठना होता है, उसको जरा अपन समझेंगे कि क्या है संसार का घात और प्रतिघात। अभी पहले यह समझ लें कि मैं अपने कर्मों को कैसे शुभ करूँ और कैसे अशुभ कर्मों से बचूँ।

जैसे ही अगर हम अशुभ कर्म से नहीं भी बच पा रहे हैं और यदि हम शुभ कर्म करना शुरू कर देते हैं तो अशुभ कर्मों का दबाव अपने आप कम होने लगता है और शुभ

डोमिनेट हो जाता है। अगर मुझे अपने शुभ कर्मों को बढ़ाना है तो फिर मैं जब भी विचार करूँ तो दूसरे के हित का विचार करूँ। ऐसा विचार न करूँ जिससे कि बैर, विरोध, कलह और असंतोष बढ़े। मैं अगर बोलूँ तो ऐसी वाणी बोलूँ जिससे कि दूसरे का और मेरा अहित ना हो जिससे कि वातावरण में क्षोभ उत्पन्न ना हो। मैं अगर शरीर से कोई क्रिया करूँ या कि जितने भी मुझे साधन मिले हैं, उन सबका ऐसा उपयोग करूँ जिससे कि मेरे आस-पास के परिवेश में और अव्यवस्था ना फैले, मिसमेनेज ना हो; मेरे अपने शरीर से और मेरे अपने उपयोग में आने वाले साधनों से। क्या मैं इस तरह से अपने वर्तमान के कर्मों को एक दिशा दे सकता हूँ ? दे सकता हूँ। अगर ध्यान में बना रहे तो फौरन हम अपने मन, वाणी और शरीर के द्वारा शुभ क्रियाओं को बढ़ावा दें। शुभ क्रियाओं को बढ़ावा देने से अशुभ का दबाव हमारे ऊपर से कम होता चला जाता है। अगर किसी बच्चे की संगति खोटी हो जाती है तो हम क्या उपाय करते हैं? उसे खोटी संगति से बचाने का उपाय नहीं करते, उसको कहीं ना कहीं किसी दूसरी जगह लगा देते हैं। बिगड़ रहा है, ब्याह कर दो। हो सकता है सँभल जावे। क्या मतलब, क्या मतलब हुआ ? अशुभ से बचाव का एक ही उपाय है कि मैं उसको कहीं शुभ में लगा दूँ। मैं उसको कहीं एंगेज कर दूँ। भैया ! ऐसी ही जुगत अपने भीतर भी करनी पड़ेगी। अपने मन की कुटेव को सुधारने का यही उपाय है वो तो बार-बार वहीं जाता है।

आचार्य महाराज ने लिखा है कि इस मन की क्या कहें, इसकी चाल तो श्वान के समान है, कितनी ही बढ़िया-बढ़िया चीजें खिलाओ, लेकिन आखरी में जाकर के नाली का पानी पीता और गन्दगी खाता है। इस मन की कुटेव है यह। इस मन की चाल है।

ये हमेशा अशुभ के संस्कार से ग्रसित है, इसलिये अशुभ में जाता है। उपाय इसको बचाने का यही है अब; जंजीर से बाँध के तो किसी को रखा जा सकता है लेकिन मन को तो नहीं जंजीर से बाँध के रखा जा सकता है। तो इसको बाँधने का उपाय सिर्फ यही है कि मैं इसको शुभ कार्यों में लगाये रहूँ। ये सारे जो भी अपन विभिन्न अवसर आते हैं उन सब में जो धर्मध्यान करने की शुरूआत करते हैं, उसका उद्‌देश्य क्या था ? अपने कर्मों को जीतने का उद्‌देश्य ही था कि मैं जितना ज्यादा से ज्यादा शुभ कार्यों में लगा रहूँगा उतना ही मैं अशुभ से बच गया। घंटे भर यहाँ बैठे हैं संसार के प्रपंच से अपने आप बच गये। कहना नहीं पड़ा कि मैं एक घण्टे के लिये संसार छोड़ता हूँ। कह के आये क्या ? कोई नहीं कह के आया होगा, कम्पाउण्ड के भीतर - "मैं तो घण्टे भर प्रवचन सुनने जा रहा हूँ।" मैं प्रवचन सुन रहा हूँ इसका मतलब है कि मेरा संसार का प्रपंच छूट गया है, इसीलिये सबसे अच्छा उपाय है कि अगर जब मुझे कर्म करना ही है तब फिर मैं उसमें से शुभ को

चुनूँ और अधिक से अधिक समय अपना शुभ कार्य में लगाऊँ। परोपकार के कार्य में लगाऊँ। "योगः कर्म सुकौशलम्"। कर्म की कुशलता ही है योग, ऐसा लिखा हुआ है, वो कर्मों की कुशलता क्या है, यह जरा समझ लें। जैसे भैया किसी की आँख न हो तो क्या उसको देख करके हम अपनी आँख फोड़ लेते हैं क्या ? किसी का हाथ ना हो तो क्या अपना हाथ तोड़ लेते हैं, किसी के पैर ना हो तो क्या अपना पैर तोड़ लेते हैं? ऐसा तो कोई नहीं करता, तो फिर दूसरे को गुस्सा आता है तो हम क्यों गुस्सा करते हैं ? अब आ गया, समझ में, आना बड़ा कठिन है इतना ही है। घात-प्रतिघात से बचने का उपाय यही है कि मैं जरा सा तो विचार करूँ कि जब मैं दूसरे की आँख फूटी देखकर अपनी नहीं फोड़ता हूँ तो दूसरे को गुस्सा करते देखकर के गुस्सा क्यों करता हूँ। दूसरे को गाली देता देखकर के मैं भी क्यों गाली देने लगता हूँ ? इतनी छोटी सी चीज, इस अशुभ की प्रवृत्ति से बचने के लिये ऐसा विचार अनिवार्य है कि जैसे मैं दूसरे को कुएँ में गिरते देखकर स्वयं नहीं गिरता हूँ। मैं तो बच जाता हूँ। वरना लोगों को यह लगता है कि अरे, कुछ नहीं रखा इन बातों में, मैं इसलिये कर रहा हूँ कि दुनिया तो कर रही है, कौन अपन ही अकेले कर रहे हैं। तो फिर अपने हाथ से अपना पतन करना है और सबकी तरफ ना देखकर के और अपनी तरफ देखने की प्रक्रिया की कि मैंने दिन भर में क्या कमाया। मैंने मनुष्य होने के लिये पहले कुछ कमाया होगा, सो आज मनुष्य हूँ। आगे की मेरी तैयारी क्या है, या तो पशुता की तरफ जाऊँ या कि नरक में जाऊँ, या कि देवत्व की तरफ ऊँचा उठूँ।

ये अगर हमारे मन में विचार आ जावें तो फिर हम आसानी से परोपकार या कि शुभ कार्यों में अपने मन को लगा सकते हैं। दूसरी चीज, क्या होता है परोपकार करने से और शुभ कार्य करने से। एक बार तो गलती कर ली और फिर उसके बाद में कुछ प्रायश्चित्त इत्यादि करने से होगा क्या ? बहुत कुछ होता है। सांसारिक कार्यों में लगा हुआ व्यक्ति अपने पूर्व संचित कर्मों का दुरुपयोग करके आगामी जीवन के लिये और पाप कार्यों को कमाता है और परमार्थ के कार्यों में, परोपकार के कार्यों में लगा हुआ व्यक्ति अपने पूर्व संचित कर्मों को जो शुभ हैं, उनको बढ़ा लेता है और अशुभ कर्मों को घटा लेता है। दोनों ही कर रहे हैं कार्य। आप चाहे सांसारिक कार्य करें या कि पारमार्थिक कार्य करें। सांसारिक कार्य करने वाले को लगता जरूरत है अपन को कि कितना ऐशो-आराम है, सो ठीक है, आगे के लिये कर्मों की स्थिति इतनी प्रबल बँधेगी और इतने समय के लिये बँधेगी कि अभी दिखाई नहीं पड़ेगी। अभी तो जो व्यक्ति बेईमानी कर रहा है, फलता-फूलता नजर आता है, इसके माइने यह नहीं है कि यह बेईमानी का फल है, ये किसी पुरानी ईमानदारी का फल है और होता क्या है, जब हम वर्तमान में बेईमानी करते हैं, अशुभ कर्म करते हैं

तो हमारे भीतर अशुभ कर्मों की ड्यूरेशन और पोटेन्शिलिटी दोनों बढ़ जाती हैं और जितनी ड्यूरेशन होगी उतने समय के बाद वह अपना फल देना शुरू करेगा। इसलिये अभी बाँधे गये अशुभ कर्म तुरन्त दिखाई नहीं पड़ते। बहुत देर के बाद आयेंगे सो भैया फलते-फूलते दिखाई देते हैं और कर रहे हैं बेईमानी, और एक आदमी जो कि बिल्कुल ईमानदारी से जीवन जी रहा है वह शुभ कर्मों को बहुत डोमिनेट होकर बाँध रहा है, वे देर से उदय में आयेंगे, अभी शुभ उदय में नहीं आ रहा है, लेकिन जो पड़े हुए अशुभ हैं उनकी उदीरणा होकर के समय से पहले उदय में आकर के खिर रहे हैं सो तकलीफ में दिखाई पड़ रहा है। ईमानदार आदमी जब भी तकलीफ में दिखाई पड़े तो समझना इसने तो अपना हिसाब चुकता करना शुरू कर दिया और बेईमान आदमी फलता-फूलता दिखाई पड़े तो समझ लेना कि संसार बढ़ रहा है। भगवान् रुष्ट हैं कि भोग-विलास की सामग्री फैलाकर के इसको संसार में भटका रहे हैं, और यदि इसकी भोग-विलास की सामग्री छीन ली तो अब इसका संसार अल्प रह गया लगता है। यही प्रक्रिया है।

जब भी हम विचार करें शुभ और अशुभ का और वर्तमान को देखकर के उससे मिलान करें तो ध्यान रखना शुभ का फल शुभ ही है, अशुभ का फल कभी शुभ नहीं हो सकता और कभी शुभ का फल अशुभ भी नहीं हो सकता। ये चीज हमारे मन में हमेशा ध्यान में रहे और हम शुभ की तरफ आगे बढ़ते चले जायें। एक छोटा सा उदाहरण अपन देखेंगे और आज अपनी बात कर्मों को जीतने की इतनी हो जाएगी। कल तो सामान्य से विषय पर अपन चर्चा करेंगे और फिर इसको कन्टीन्यू करेंगे। इस प्रक्रिया को एक दिन का गेप भी होना चाहिये। एक दिन का गेप मतलब कल किसी जनरल विषय पर। सण्डे है कल, अपन सण्डे करेंगे। अपन आज इतनी चीज और समझ लेवें। देखो ! अपन बैठे हैं, समझने के लिये बैठे हैं, मुझे सब कुछ समझ में आ गया हो ऐसा बिल्कुल मत मानना। मुझे भी उतना ही समझ में आया। समझ में जिसको आता है वो जब तक अपने जीवन में उसको नहीं कर लेवे तब तक उसकी वो समझदारी उसके किसी काम की नहीं है।

समझ तो बहुत लोगों के पास है अपन तो यह समझने के लिए बैठे हैं कि क्या-क्या और कैसे कर लेवें जिससे अपना काम हो जावे । बाकी पण्डिताई-वण्डिताई तो छोड़ो। विद्वता तो बहुत लोगों के पास है। इसलिये ये मानकर के कि मैं इतनी बातों में से क्या कर पाऊँगा, कितना जीवन में पोसिबल है, बस वो शुरू करता हूँ। आज ही से शुरू करता हूँ फिर अगली बार फिर देखेंगे। अभी इसी जीवन में थोड़े ही मोक्ष होने वाला है। अगले बार करेंगे, फिर मेहनत करेंगे थोड़ी, तब होवेगा।

क्या हुआ ? एक भविष्यवाणी हुई कि ये जो राजा का बेटा है, इसको, राज सिंहासन मिलेगा और दूसरा एक मंत्री का बेटा था तो कहते हैं कि इसका भविष्य ऐसा है कि इसको शूली लगेगी। दोनों ने सुना। राजा के बेटे को आ गया अहंकार कि देखा मेरा पुण्य और अब तो मैं राजा बन ही जाऊँगा और जनाब ने अपनी सत्ता और सम्पत्ति का दुरुपयोग शुरू कर दिया। ऐशो-आराम जो कुछ भी हो सकती थी, बुरी आदतें, वो अब शुरू कर दीं। अब तो राजा बनूँगा। भविष्यवाणी हो गई राजा बनूँगा और दूसरे मंत्री के पुत्र ने कहा कि शूली लगेगी। इसका मतलब ये है कि मैं कुछ गलत नहीं करूँगा। सावधानी बरतनी है और वो फूँक-फूँक के कदम रखने लगा और दूसरे जनाब लड़खड़ाके चलने लगे। ठीक, समझ गये आप। इतना तो सब समझते हैं और स्थिति क्या हुई वो दिन आ गया। दोनों ने कहा कि अभी तक तो हमारे जीवन में न इसको गद्‌दी मिली और न इसको शूली लगी। चल के देखते हैं, आज आखिरी दिन है, पूछते हैं ज्योतिषी महाराज से कि क्या है आपके ऐसे झूठे प्रडिक्सन्स - भविष्यवाणियाँ ऐसी झूठी करते हैं आप। तो चले दोनों और जो राजा का पुत्र था उसको ठोकर लगी और नीचे गिरा तो देखा कि उस पत्थर को हटाने पर वहाँ पर ढेर सारी अशर्फियाँ मिल गयीं तो पॉकेट में रखीं और आगे बढ़े। मंत्री का पुत्र भी पीछे-पीछे जा रहा था। उसको बहुत जोर से एक काँटा लगा। निकाला तो खून निकलने लगा, पट्टी बाँध ली .... पहुँच गया वो भी ज्योतिषी के यहाँ पर। कहा कि आपकी सारी भविष्यवाणी झूठी निकली। न इनको गद्‌दी मिली और न मुझको शूली हुई। बोले, ''सुनो! रास्ते में बताओ क्या-क्या हुआ। ''आज आ रहे थे तो हमको दो-चार दस अशर्फियाँ मिलीं और इनको काँटा लग गया।'' हो गया काम - तुम्हारे अपने वर्तमान के दुष्कर्मों से मिलती हुई गद्‌दी थोड़े से सोने के सिक्कों में सीमित होकर रह गयी और इसकी शूली अकेले काँटों में सिमट करके रह गयी।

ये ध्यान रखना कि जो कुछ भी हम संचित करके लाये हैं हम अपने वर्तमान के शुभ और अशुभ में बहुत सारे चेंजेज करते रहते हैं। इसलिये जब भी कर्म करने का मन हो शुभ करना। शुभ को करने से हमारे अशुभ का दबाव घटता है, शुभ का प्रभाव बढ़ने लगता है और अगर हम संचित करके तो शुभ लाये हैं और वर्तमान में अगर खोटे कर्म करेंगे तो शुभ का प्रभाव घटेगा और अशुभ का बढ़ने लगेगा। जीवन में यह देखने में आता है। अब हमारी कुशलता क्या है ? घात-प्रतिघात से बचने की कुशलता इतनी ही है कि अगर कोई हमारे ऊपर घात करता है तो हम प्रतिघात ना करें या कि स्वघात ना करें। हाँ ! किसी ने मुझे गाली दी तो मैं उसे गाली देता हूँ या मारता हूँ, ये प्रतिघात है और इतना ही नहीं मैं गाली देके अपना मन खट्‌ठा करता हूँ यह स्वघात है। एकदम अपने प्राण ले लेना

लेकिन अपनी जान को सांसत में डालना, अपनी इन्द्रिय और मन को तकलीफ पहुँचाना, अपने मन में संक्लेशित होना, संक्लेश का उपाय करना, ये भी तो अपना ही घात है। दूसरे के संक्लेशित से अपने मन को संक्लेशित कर देना। प्रतिक्रिया तो हम एक बार पोजिटिव कर लेंगे लेकिन कोई हमारे ऊपर घात करे और हम प्रतिघात ना करें और बिल्कुल साइलेंट रह जायें, भीतर कुछ भी न हो ऐसा बहुत मुश्किल है। किसी ने गाली दी और हम प्रसन्न। भारी ऊँची विद्या है ये जिसको आ जाये। बाकी विद्यायें तो सबको आती होगीं, ये वाली विद्या जिसको आ जाये, वो जीत गया, वो संसार से पार हो गया, और इसका एक उदाहरण कन्हैयालाल प्रभाकर मिश्रा ने लिखा।

ऐसा जीवन में एक सामान्य गृहस्थ के भी संभव हो सकता है क्या ? मैं तो ऐसी चीजें पढ़ता रहता हूँ और मुझे लगता है कि हम लोग कितनी बातें जानते हैं, लेकिन एक सामान्य व्यक्ति इस घात-प्रतिघात की प्रक्रिया से कैसे अपने को बचा लेता है। उन्होंने लिखा। उनके अपने जीवन की घटना कि मेरे एक बहुत अच्छे मित्र और इतने पक्के मित्र कि कोई सोच भी नहीं सकता कि दोनों में कभी कोई आपस में कोई तकरार हो सकती है? लेकिन ऐसा हुआ कि मित्र की जीवन साथी नहीं रहीं और मित्र की एक ही बेटी, उसके ब्याह की चर्चा थी। जिम्मेदारी मित्र के नाते मेरी भी थी तो मैंने अपने रिश्तेदार के बेटे से उस बेटी के ब्याह की चर्चा चलाई और मामला कुछ खटाई में पड़ गया और हम दोनों के बीच में कुछ तकरार हो गई। घटना इतनी ही थी। होता है जिन्दगी में इस तरह से बहुत होता है और उन्होंने लिखा कि 4 लोग और जो तैयार ही खड़े थे .....। अगर दो लोगों की दोस्ती हो तो ये ध्यान रखना कि चार लोगों की आँख लगी हुई है। ''महिमा मृगी कौन सुक्रत की विषखण खल विद्वाची'' महिमा और मृगी दोनों सावधान रहे। जंगल में घूमती हुई हिरणी हमेशा ध्यान रखे कि शिकारी का बाण उसका पीछा कर रहा है और जो सुकृत कर रहा है, जो पुण्य कार्य कर रहा है वो हमेशा ध्यान रखे कि चार खल लोगों की आँखें उसके ऊपर लगी हैं। तो बोले कि वो चार लोग पता नहीं क्या इसी का इंतजार कर रहे थे कि इन दोनों में जरा तकरार तो हो फिर इनकी लड़ाई का मजा इनकी दोस्ती बड़ी छनती है। ..... बोले ..... हमारे मित्र को ऐसा-ऐसा समझा-बुझा दिया कि हमारे मित्र ने हमारे ऊपर - कि हमारी जीवनसाथी की धरोहर ये खा गये, ऐसा दीवानी मुकदमा लगा दिया। मुझे पहले तो थोड़ी गुस्सा आई अपने मित्र पर, कि इतने वर्षों की मित्रता और एक क्षण के अन्दर ये हो गया और फिर उसके बाद हँसी आई कि मैंने तो खाई ही नहीं और ये व्यर्थ ही मेरे ऊपर दोष लगा रहे हैं, देखेंगे, निपटेंगे, जो होगा देखेंगे। पर है तो मेरा मित्र, ये बात अभी भी मन से नहीं गई थी। सामने वाले के मन से चली गई

हो तो चली गई हो। और कहते हैं कन्हैया लाल मिश्र कि मैं रास्ते से चला जाता था, आमना-सामना ही नहीं हो रहा था। दूरी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। वो सामने से आते दिखाई पड़े सो मुझे देख लिया उन्होंने, सो बचकर निकलने लगे। मैं तो बचकर जाने वाला था नहीं। मैं सामने पहुँच गया और कंधे पर हाथ रखा कि अरे मैं तो सोच रहा था कि जब अपन ने दोस्ती निभाई है तब दुश्मनी भी जमकर निभायेंगे। अभी तो तुमने मुकदमे की शुरूआत ही की है अभी से क्यों बचकर भाग रहे हो। हम तो ये सोच रहे थे कि अच्छे जमकर मुकदमा भी लड़ेंगे और मान लो तुम्हें जेल हो गई तो तुम्हारा और तुम्हारी बेटी का, दोस्ती के नाते हम ध्यान रखेंगे और अगर हमें जेल हो गई तो जब हम छूटें तो दोस्ती के नाते सबसे पहले तुम ही मिलो। अब, देखो आप, यह विचारों की श्रेष्ठता देखो। ये घात-प्रतिघात से बचने की प्रक्रिया देखें आप, बहुत सांसारिक प्रक्रिया। कहते हैं कि इतना सुनते ही वे मित्र ..... हाथ पकड़ लिया उनसे कहने लगे, 'घर चलो'। यहाँ नहीं, रास्ते में नहीं। घर ले जाकर के बिठा करके और मेरे मना करते-करते भी और मेरे पैरों पर सिर रखकर के फूट-फूट कर रोये। उस दिन का दिन है कि आज का दिन कहाँ का मुकदमा और कहाँ की दुश्मनी, फिर से ज्यों का त्यों दोनों अब बड़े प्रेम से अपना जीवन जीते हैं। भैया संसार में कर्म अगर करना है तो कर्म कैसे करना है, इसकी कुशलता अगर हमें आ जावे तो हम कर्मों से मुक्त हो सकते हैं।

इन अशुभ कर्मों से बचें और जितना बन सके उतना शुभ कार्य, परोपकार के कार्य करें। अगर कोई हमारे प्रति दुर्व्यवहार भी करे, तब भी हमारी सज्जनता है कि हम उसके प्रति सद्भावना और सद्व्यवहार बनाये रखें। तब जीत हमारी है वरना तो यहाँ सब हारे हुए हैं और हमेशा से अपने कर्मों से हारते आये हैं। एक मौका तो अपने जीवन में ऐसा भी लेना चाहिये कि अब, अब हम नहीं हारें। कर्म हमसे हार जावें। हम ऐसे कार्य करें कि अपने किये हुए पुराने कर्मों को हरा दें और अपने आप की जीत हम हासिल कर लें। ऐसी स्वतन्त्रता हमारी है। कर्म करने में व्यक्ति भले ही स्वतंत्र ना हो लेकिन कर्म को कैसे करना है, भले करना है या कि बुरे करना है, इसमें तो हमारी अपनी स्वतंत्रता है। इसी भावना के साथ कि हम कर्मों को जीतने की इस प्रक्रिया को अपने जीवन में जितनी बनेगी उतनी शामिल करेंगे।

''बोलिये - आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।''

○○○

कर्म कैसे करें?

भाग - 7

हम सभी लोगों ने पिछले दिनों अपने जीवन की विविधता और इस संसार की विचित्रता इन दोनों बातों को जानने के लिये एक प्रक्रिया, एक विचार की प्रक्रिया शुरू की थी और हमने यह बहुत अच्छे से समझ लिया है कि हमारे जीवन में जो भी घटित होता है उसका प्रमुख कारण मेरा अपना कर्म है। मैं कर्म निरन्तर करता हूँ, कर्मों का फल भी मुझे ही चखना होता है और इतना ही नहीं, कर्मों का फल चखते समय मेरी जो असावधानी है, मेरी जो गाफिलता है, मेरी जो अज्ञानता है, वो मुझे और नये कर्म बंधन के लिये मजबूर कर देती है।

कर्म सिर्फ एक भौतिक प्रक्रिया नहीं है। कर्म एक मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक प्रक्रिया भी है। कर्म दोनों तरह के किये जा सकते हैं। संसार बढ़ाने वाले कर्म भी जो अत्यन्त सांसारिक होते हैं और संसार से पार होने के कर्म भी किये जाते हैं जो कि आध्यात्मिक होते हैं। सवाल सिर्फ इस बात का है कि मुझे संसार बढ़ाने वाले कर्म चुनना है या कि संसार से पार होने के कर्म चुनना है। कोई भी संसार में शरीर धारण करने वाला ऐसा नहीं है जो कर्म ना करे। कर्म सबको करना पड़ता है। वे कर्म सासांरिक है या कि पारमार्थिक या कि आध्यात्मिक हैं, ये हमारे ऊपर निर्भर करता है।

तब फिर हम विचार करें कि हमें ऐसे कर्म करना है जिससे कि कर्मों का बोझ हल्का हो, कर्म का भार हल्का हो। अगर अपने जीवन में हम अपनी अज्ञानता और असावधानीवश कुछ ऐसे खोटे कर्मों को संचित कर भी लेते हैं तो हम उन छोटे कर्मों को अपने सत्कर्मों के द्वारा परिमार्जित भी कर सकते हैं। ये जो आत्म-संयम, जप, तप, दान ये जो आध्यात्मिक कर्म हैं, वे हमारे सांसारिक कर्मों के दबाव को कम करते हैं। उसके भार से हमें मुक्त करने में मदद देते हैं, कौन व्यक्ति है जिससे कि अपनी असावधानी और अज्ञानतावश बुरा नहीं हो जाता।

यदि एक क्षण अगर हम चूक गये थे तो क्या हम अगले क्षण अपने को सँभाल नहीं सकते हैं, सँभाल सकते हैं और इतना ही नहीं अपनी उस चूक का फल जो मिलने वाला

है उसको भी हल्का कर सकते हैं। जो अपराध हमसे अपनी अज्ञानतावश बन गया है उस अपराध की इन्टेन्सिटी भी हम कम कर सकते हैं। यहाँ तक कि हम आगे सावधान होकर के नये अपराधों से बचकर के अपने जीवन को अच्छा बना सकते हैं। बशर्ते कि हमारा लक्ष्य शुद्ध हो, हमारा संकल्प शुभ हो और हमारा पुरुषार्थ अशुभ से बचते रहने का हो। अगर ये आर्ट हम सीख लें, ये कला हम सीख लें कि हमेशा अपने जीवन की निर्मलता हमारा लक्ष्य है और उस निर्मलता में मेरी अपनी मन, वाणी और शरीर की जो वर्तमान की भली दशा है वो सहायक है, इसीलिये मेरा संकल्प भला करने का है। मेरा संकल्प परोपकार करने का है। संसार के घात-प्रतिघात से मैं अब अपने संसार को, उलझ करके बढ़ाना नहीं चाहता हूँ। इसलिये मेरा संकल्प मैंने शुभ करने का लिया है, ताकि मैं अपने उस शुद्ध लक्ष्य को प्राप्त कर सकूँ और अकेले शुभ का संकल्प कर लेने से काम नहीं चलता। मैं पुरुषार्थ करूँ कि अशुभ से बचता रहूँ।

जैसे कि मेरे वस्त्र गन्दे हो जाते हैं तो मेरे मन में ये बात आती है कि ऐसे गन्दे वस्त्र पहिनना ठीक नहीं है। मुझे तो इनको साफ-सुथरा बनाना चाहिये और मेरे मन में ये विश्वास है कि ये साफ-सुथरे बन सकते हैं। तो ऐसे विश्वास के सहारे हम साबुन, सोड़े का उपयोग करके और उन वस्त्रों की मलिनता को हटाते हैं, उनको उज्ज्वल बनाते हैं। भैया ! ये जो जप, तप, आत्म संयम, पश्चाताप, प्रायश्चित्त ये सारी प्रक्रियाएँ साबुन, सोड़े की तरह हैं, जो हमारे अज्ञानतावश बाँधे गये कर्मों की मलिनता को हटाने में हमारी मदद करती हैं। इसलिये ये बात अपन को अब कर्मों को करते समय ध्यान में रखने की है। कर्मों को यदि हम जीतना चाहते हैं, तो कर्म कैसे करें यह टेक्निक सीख लें। आज टेक्नोलॉजी का इतना विकास हुआ है लेकिन कई बार लगने लगता है कि बाह्य जगत की समृद्धि के लिये इतनी टेक्नोलॉजी, इतनी तकनीकी विकसित हुई, लेकिन अपने आत्म-जगत की निर्मलता के लिये जो तकनीकी, जो टेक्निक हमारे आचार्य भगवन्तों ने हमें दी थी उसको हम निरन्तर भूलते चले जा रहे हैं। बाह्य जगत में जो भी विकास हुआ है उसके लिये ठीक है कि टेक्नोलॉजी जरूरी है। लेकिन एक टेक्नोलॉजी, एक आर्ट हमारे भीतर अपने जीवन के विकास के लिये भी तो होना चाहिये। अपनी मलिनताओं को हटाने का हम पुरुषार्थ करें और निरन्तर अपने जीवन को उज्ज्वल बनाने का संकल्प हमारे मन में हो, तो हमारी ये कर्म बंध की प्रक्रिया सही मानी जाएगी वरना मैंने देखा है कि जिनको मालूम है कि किस प्रकृति का बंध कहाँ तक होता है, किसका उदय कहाँ तक चलता है और किसकी सत्ता कहाँ तक चलती है और क्या टेक्नोलॉजी है कि हम इन चीजों को अपने भीतर ही सत्ता में नष्ट कर सकते हैं, क्या अपकर्षण है, क्या उत्कर्षण है, क्या उदय है, क्या उदीरणा है और क्या संक्रमण है, सब राई-रत्ती जानते हैं। बैठ जावें तो ऐसी चर्चा करें कि

चर्चा सुनकर के सामने वाले को लगे कि अद्भुत है ज्ञान लेकिन जरा जीवन में झाँककर के देखें तो वहाँ सारा कुछ अज्ञानता में व्यतीत हो रहा है।

इसलिये मैंने वो सारी बातें बहुत मुख्य नहीं रखीं। हमने तो सिर्फ कर्म सिद्धांत से यही सीखने की कोशिश करी है कि मेरी अपनी अज्ञानता में मेरे से जो कुछ भी बुरा हो गया है, अब मैं उसके लिये रोऊँ, तो रोने से कोई फायदा नहीं होने वाला; जब वो मुझे अपना फल देगा तब उसका फल पाने से मैं बचूँ, बचने की कोशिश करूँ कि मुझे फल ना पाना पड़े? मैं हाय तौबा न मचाऊँ, दुःखी होऊँ तो भी कोई फायदा नहीं होने वाला। मेरा फायदा तो इसमें है कि मेरी अज्ञानता से मैंने अपने भीतर जो खोटे कर्म संचित कर लिये हैं, हो सके तो कोई वर्तमान में ऐसा उद्यम करूँ, ऐसा पुरुषार्थ करूँ जिससे कि इन खोटे कर्मों का दबाव कम हो जावे और आगे के लिये उनकी जो संतति, उनकी जो परम्परा चल रही थी उसको भी हम रोक सकें। बस इतना ही पुरुषार्थ हमें वर्तमान में करना चाहिये। कर्म जो हम करते हैं उनका फल सिर्फ हमें ही मिलता है। यह बात सब जानते हैं लेकिन ध्यान रखना कि इतना ही नहीं है। कर्म का फल वर्तमान में भी मिलता है और दूरगामी परिणाम भी हमारे अपने कर्मों के होते हैं और इतना ही नहीं, अपने ही एक अकेले के जीवन के ऊपर ही नहीं आस-पास के परिवेश और वातावरण पर भी हमारे कर्मों का असर पड़ता है। यह बात भी हमें जरा विचार कर लेनी चाहिये। कर्म करते समय कितनी जिम्मेदारी हमारी है, यह बात हमें समझ में आनी चाहिये। तब फिर हमारे अपने कर्म करने की जो कुशलता है वह हमारे भीतर अपने आप आ जायेगी, कर्म तो करना है लेकिन कुशलता कैसी हमारे अन्दर होनी चाहिये कि ये कर्म मेरी क्षति ना करें। मेरे परिवेश को भी मलिन न करें।

मेरे किये हुए कर्म सिर्फ मेरी ही क्षति या मेरा ही उत्थान नहीं करते हैं। मेरे आस-पास के परिवेश की क्षति और आस-पास के परिवेश के उत्थान में भी कारण बनते हैं। इस बात पर भी हमें विचार करना चाहिये। मेरे कर्म मेरे वैयक्तिक नहीं हैं। वे सामाजिक और राष्ट्रीय और अत्यन्त व्यापक हैं। जैसे अपन सब जानते हैं कि अगर परिवार में कोई एक व्यक्ति धर्मात्मा है तो उस परिवार की विश्वसनीयता, उस परिवार के प्रति लोगों के मन में प्रशंसा का भाव, उस परिवार की प्रामाणिकता इन सारी चीजों में बढ़ोतरी होती है। एक व्यक्ति परिवार में धर्मात्मा है तो सारे परिवार को उसका फल मिलता है कि नहीं मिलता। सबको उसकी प्रशंसा और उसकी विश्वसनीयता का लाभ मिलता है कि नहीं मिलता, आज हमें किस चीज का लाभ मिल रहा है। आज हमारे साथ एक चीज सबसे बड़ी जुड़ी है कि हम अपने आचार्य महाराज के शिष्य हैं, उनकी उस तपस्या का फल हमें भी मिल

रहा है कि नहीं मिल रहा। जहाँ जाते हैं, वहाँ पर लोग श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। भैया, उनके शिष्य हैं। हमने अभी कुछ भी नहीं किया है, हमने आपसे कोई अभी बात भी नहीं की है, लेकिन उसके बावजूद भी और इसका फल मिलता है कि नहीं मिलता ये सामने उदाहरण है अपने। कोई ऐसी चीज नहीं है सबके देखने में, अनुभव में आती है और इतना ही नहीं है एक मछली सारे तालाब को गंदा करती है, इसका भी उदाहरण सबके सामने है कि अगर दुर्योधन को थोड़ी सी राज्य की लोलुपता नहीं होती तो युद्ध नहीं होता। और एक अकेले गाँधीजी को सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए देश को स्वतंत्रता नहीं मिलती अगर उनके शुभ कर्म का सबको फल नहीं मिलता। तीर्थंकर अपनी आत्मा का खुद कल्याण करते हैं, तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि को सुनकर के चतुर्विध संघ अपना कल्याण कर लेता है। हमारे किये हुए कर्म दूसरे के उत्थान और पतन दोनों में जिम्मेदार हो जाते हैं। माता-पिता की अपने जैसे कि धन-सम्पत्ति अपने बेटे को मिलती है इतना ही नहीं माता-पिता का कर्ज भी बेटे को ही चुकता करना पड़ता है। दोनों ही स्थितियाँ हैं, उनके किये हुए भले और बुरे कर्मों का असर आने वाली सन्तति पर भी पड़ता है। इतनी सावधानी का काम है कर्म करना। सिर्फ हमारे ही अपने जीवन को वे मुश्किल में नहीं डालते हैं या हमारे ही जीवन का उत्थान नहीं करते; वे आस-पास के परिवेश को भी प्रभावित करते हैं। ये बात हमारे ध्यान में बनी रहे, तब फिर कैसे कर्म करना है। ये अपने मन में अपने आप ही ये विचार आना शुरू होगा। ये सारी चीजें ध्यान में रख करके अब अपन थोड़ा सा आज आगे बढ़ते हैं।

एक छोटा सा उदाहरण देख लेवें और फिर उसके बाद अपने को समझना ये है कि मैं जिन कर्मों का फल भोग रहा हूँ वो मैंने किन भावों से बाँधे होंगे। आज अगर मेरी अज्ञानता ज्यादा है, मेरा ज्ञान ढक गया है या कि मेरा अपना विजन क्लियर नहीं है, मेरे अपने जीवन में बहुत सारी गड़बड़ियाँ हैं, उन सबकी जिम्मेदारी मेरे अपने पूर्व किये गये परिणाम हैं। ये अगर मुझे मालूम पड़ जाये कि कौनसे वाले परिणाम से मुझे कैसे वाले कर्मों का बोझ ढोना पड़ता है तो फिर मैं उसके बोझ को हल्का करने के लिये वैसे परिणाम ना करूँ। बहुत आसान सा तरीका है। वो प्रक्रिया पर अब अपन विचार शुरू करेंगे, पर उससे पहले यह बात अपने ध्यान में रखें कि हम जो भी कर्म करेंगे उसके फल में हम आसक्त नहीं होंगे क्योंकि कर्मों का फल हमें दोनों रूपों में आसक्त करता है। जब वो भला फल देता है, तब हमें गाफिल कर देता है। हमारे भीतर अहंकार पैदा करता है और जब वो अपना खोटा फल देता है तब वो हमें संक्लेषित कर देता है और अहंकार और संक्लेष इन दोनों प्रक्रियाओं से मैं और अधिक अपने संसार को बढ़ाता हूँ इसलिये पहली

चीज मैं कर्म के फल में अपनी आसक्ति घटाऊँ और जो कर्म मैं करता हूँ उसको कर्त्तव्य मानकर करूँ। उसमें कर्ता ना बनूँ, ये दूसरी चीज है। पहली चीज कि मैं अपने कर्मों के फल में आसक्ति ना रखूँ। कर्म करूँ तो कर्त्तव्य मानकर के करूँ, और कर्ता बनकर ना करूँ। अगर ये दोनों चीजें हमारे जीवन में आ जायें कि कर्म का फल भोगते समय क्या सावधानी रखना और कर्म करते समय क्या सावधानी रखना। फिर देखियेगा वे कर्म हमारे जीवन को ऊँचा उठाने वाले ही होंगे। एक उदाहरण है। असल में, हम सब लोग कर्म करने में उतने उत्सुक नहीं हैं, हम तो कर्म के फल में उत्सुक हैं, देखा जाये अगर तो और हमें तो कई बार ऐसा लगता है कि फल मिल जाए, हमें कर्म ना करना पड़े तो और अच्छा है। ये जितनी भी लाटरी वाटरी की प्रक्रिया शुरू हुई उसके पीछे उद्देश्य क्या था कर्म नहीं करने पड़ें और घर बैठे हाथ पे पैसा मिल जावे। ''वेल्थ विदाउट वर्क''। गाँधीजी ने इसको एक पाप कहा है। ''वेल्थ विदाउट वर्क इज ए सिन'' और ''नॉलेज विदाउट मोरेलिटी इज ए सिन'' नैतिक मूल्य कुछ भी नहीं है और नॉलेज बहुत सारी है तो वो पाप में ले जाएगी आपको, जैसे कि ले जा रही है आज। कितना तो ज्ञान है लोगों के बीच लेकिन नैतिक विकास की कोई चिन्ता नहीं, आध्यात्मिक विकास की कोई चिन्ता नहीं और ज्ञान तो अपार, वो कहाँ ले जाएगा ? पतन की तरफ ले जाएगा। ये जो अकर्मण्यता है, कर्म नहीं करने की जो प्रवृत्ति है, लेकिन फल की आकांक्षा बहुत है और इतना ही नहीं खोटे कर्म करके भले की आकांक्षा ये संसार बढ़ाने वाली है। इसके लिये एक उदाहरण अपन समझ लेवें। कितने तरह के लोग हैं और अपन उसमें से कौनसे प्रकार के हैं ये जरा सा विचार कर लें हम। एक वो लोग हैं जो कि कर्म तभी करते हैं जब यह तय हो जावे कि फल क्या मिलेगा। असल में ये फल में ज्यादा रुचि रखते हैं। कर्म में नहीं रखते। ऐसा जीवन में अपने भी कभी-कभी मन में आता होगा कि करना ना पड़े और उसका फल मेरे मन मुताबिक मुझे मिल जावे।

दूसरे और अच्छे लोग हैं उससे जो ये कहते हैं कि मैं तो अपना कर्म करूँगा, मेरा कर्त्तव्य है और जब मैं अपना कर्त्तव्य बखूबी करूँगा तो उसका फल भी पाऊँगा। मुझे उस फल को लेकर के चिन्तित होने की क्या आवश्यकता। भले कर्म का फल भला मिलता है, बुरे का फल बुरा मिलता है। अब मुझे इसमें ज्यादा चिन्तित होने की भी आवश्यकता क्या है ? ऐसा होता कि भैया कभी-कभी बुरे कर्म का फल भी अच्छा मिल जाता है, या कि अच्छे कर्म का बुरा फल मिल जाता है, ऐसा अगर कुछ नियम होता तो फिर कुछ चिन्ता की बात थी।

और तीसरे प्रकार के लोग थोड़े और निश्चिन्त हैं, वे तो ये कहते हैं कि मैं तो कर्म करता हूँ, फल तो भगवान पर छोड़ता हूँ। ये भक्त किस्म के लोग होते हैं और दूसरे किस्म

के लोग गृहस्थ हैं और पहले किस्म के लोग अकर्मण्य हैं। अकर्मण्य व्यक्ति कहेगा कि मैं तो कर्म तभी करूँगा जब मुझे फल मिलने की तय कर दो आप। बल्कि मुझे पहले ही फल दे दो फिर देखेंगे, काम तो बाद में करेंगे। पैसा पहले धर दो, तुम्हारा काम हो जावेगा। पैसा रखो पहले। ये क्या है ? ये अकर्मण्यता की तरफ ले जाने वाली प्रक्रिया शुरू हो रही है कि नहीं हो रही ? अवार्ड पहले वर्क बाद में। गृहस्थ सिर्फ इतना मानकर कर्म करे कि उसका कर्त्तव्य है। अच्छा करूँगा, अच्छा फल मिलेगा, बुरा करूँगा, बुरा फल मिलेगा। भक्त व्यक्ति थोड़ा और निश्चिन्त रहता है।

वो कहता है कि मैं तो अपना कर्म करता हूँ, बाकी मैं सब भगवान पर छोड़ता हूँ। वो जाने, हालाँकि भगवान इस प्रपंच में नहीं पड़ता लेकिन मेरी श्रद्धा, मेरी भक्ति मुझे निश्चिन्त करने के लिये यह अच्छा उपाय है कि वो जाने, मैं तो निश्चिन्त हूँ। मुझे चिन्ता करने की कोई बात नहीं, जैसे बच्चे लोग कहते हैं कि भाई मुझे क्या चिन्ता करना, कैसे कमा रहे हैं, क्या कर रहे हैं पिताजी जानें। और चौथे प्रकार के वे हैं जो थोड़े और ज्यादा ज्ञानी हैं। ये कहते हैं कि कर्म मैं करूँगा, मुझे उसके फल की कोई आकांक्षा नहीं है। ऐसा निष्काम कर्म करने वाले तो बहुत बिरले साधुजन जिनको स्थितप्रज्ञ कहते हैं, जो अपने कर्म के फल में समता धारण करते हैं। जो अच्छा फल मिलने पर एक्साइट नहीं होते और बुरा फल मिलने पर डिप्रेस नहीं होते और साम्यभाव से अपना कर्म करते चले जाते हैं। ऐसे बिरले ही हैं। हम भी कभी ऐसा कर्म करके देखें और पाँचवें प्रकार के और हैं जो न कर्म करते हैं और ना कर्म का फल चाहते हैं। जो कहते हैं कि ना तो मैं कर्म करता हूँ, न मुझे कर्म के फल की आकांक्षा है। ऐसे या तो बहुत पहुँचे हैं या एकदम निठल्ले हैं। अब ये डिसाइड कौन करेगा ? ये तो उनके अपने परिणाम डिसाइड करेंगे। सांसारिक कार्यों को नहीं करना और उनके फल की आकांक्षा भी नहीं रखना। ये तो बहुत पहुँचा हुआ व्यक्ति ही हो सकता है और या फिर निठल्ला आलसी व्यक्ति हो सकता है जो कि अपने जीवन के लिये कोई कर्म ही ना करे। और उसके फल के प्रति भी अज्ञानी बना रहे। अब हमें इन पाँच में से कौनसा होना है ये विचार स्वयं करना चाहिये। कर्म तो सभी कर रहे हैं, फल की आसक्तिपूर्वक भी कर रहे हैं और सहज भाव से भी कर रहे हैं।

अच्छा करूँगा तो अच्छा फल मिलेगा और कुछ लोग हैं जो कि कर्म के समय भी समता भाव धारण करते हैं। सबसे बढ़िया तो यही है कि मैं या तो कर्म के फल को भोगते समय समता भाव धारण करूँ और या फिर जो है हमेशा शुभ कर्म करने के लिये तैयार रहूँ। चाहे मेरे खोटे कर्मों का फल मुझे तकलीफ भी पहुँचाये तब भी मैं अपने स्वधर्म में, अपने आत्म कर्म में लगा रहूँ, अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहूँ। या तो ऐसा कर लें और या

फिर समता भाव धारण कर लें। तो कर्मों पर विजय आसानी से हो सकती है, थोड़ा सा विचार अब मुझे इस बात पर करना है कि कितने तरह के कर्म हैं जो कि मुझे मेरे जीवन को निर्मित करने में अपना पार्ट अदा करते हैं, उनका अपना कितना हाथ है मेरे इस जीवन में।

तो कुछ कर्म ऐसे हैं जो कि मेरे शरीर के आकार-प्रकार और रंग-रूप का निर्धारण करते हैं, कुछ कर्म ऐसे हैं जो कि मेरे ऊँचे और नीचे होने का भाव मेरे अन्दर उत्पन्न करने में कारण बनते हैं कि मैं ऊँचा हूँ या कि मैं नीचा हूँ, इसके लिये भी मेरे अन्दर कुछ कर्म हैं जो कि निमित्त बनते हैं। कुछ कर्म हैं जो कि मुझे शरीर में, कितने समय तक किस शरीर में रुके रहना है, इस बात को निर्धारित करने में कारण बनते हैं। ऐसे भी कुछ कर्म हैं जो कि मेरी चेतना को, मेरे आचरण को विकृत करने वाले हैं, उसमें कारण बनते हैं। वो भी कर्म मेरे भीतर हैं । कुछ कर्म हैं जो कि मेरे ज्ञान को ढक लेते हैं, कुछ कर्म हैं जो कि मेरी दृष्टि के मार्ग को ढकने वाले हैं। कुछ कर्म हैं जो मेरे दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा मेरी सामर्थ्य में बाधा डालने वाले और कुछ कर्म और हैं जो मेरे सुख और दुःख में कारण बनते हैं। ऐसे आठ प्रकार के कर्म हैं। आचार्य भगवन्तों ने इन्हें नाम दिये हैं। मेरे अपने ज्ञान को ढकने वाला, मेरी अज्ञानता को बढ़ाने वाला ज्ञानावरणी कर्म है। मेरे अपने दृष्टि को कम और ज्यादा बढ़ाने वाला, मेरे अपने सामान्य प्रतिभा को कमजोर करने वाला दर्शनावरणी कर्म है। मेरे सुख-दुःख में निमित्त बनने वाला वेदनीय कर्म है। मेरी चेतना को, मेरी श्रद्धा को, मेरे आचरण को विकृत कर देने वाला मोहनीय कर्म है। मुझे एक शरीर में निश्चित समय तक रोके रखने वाला मेरा आयु कर्म है और मुझे ऊँचे और नीचे कुल का भान कराने में निमित्त बनने वाला गोत्र कर्म है। मेरे शरीर के आकार-प्रकार, रूप रंग का निर्धारण करने वाला नाम कर्म है और मेरे दान, लाभ, भोग, उपभोग और मेरी सामर्थ्य में बाधा डालने वाला अन्तराय कर्म है। ये कर्म मेरे अपने जीवन में, मैं स्वयं संचित करता हूँ, अपने परिणामों से। ये बहुत फिजिकल नहीं है, बहुत भौतिक नहीं है, ये हमारे साथ इन्टरमिगल करते हैं, हमारे साथ ट्रेप हो जाते हैं। ये बहुत भौतिक मालूम पड़ते हैं लेकिन ये बहुत मानसिक, बहुत भावनात्मक कर्म हैं जिनमें कि मेरा अपना पुरुषार्थ काम आता है। मैंने ऐसा पहले जीवन में क्या पुरुषार्थ करा इससे कि मुझे वर्तमान का जीवन मिला। इस पर विचार जरूर करना चाहिये। कर्म सिद्धांत पढ़ने वाले को और ज्यादा विचार ना करे तो इतना तो जरूर करना चाहिये कि मेरी मौजूदा हालत की जिम्मेदारी किसकी है ? मेरी मौजूदा स्थिति के लिये मेरी कौनसी भावदशा जिम्मेदार रही होगी। पहले और आज वर्तमान की भाव दशा कैसी है, जिससे कि मैं अपने आगामी

जीवन का निर्धारण अपने हाथ से करूँगा ? अगर इतनी बात हमारे ध्यान में रही आये तब समझियेगा कि वाकई में इन कर्मों को ठीक-ठीक समझ लिया है, हमारी कर्म के बारे में अज्ञानता हट गई है। वरना तो इस संसार में कर्मों से पार पाने वाले बहुत बिरले ही हैं। कर्मों से पार पा जाना इतना आसान नहीं है। हमारे ही अपने कर्मों से हम पार नहीं पा पाते। तो देखें एक-एक करके अपन देखेंगे कि कौनसी भाव दशा है जो मेरे इस जीवन के लिये कारण बनी हुई है। मेरे ज्ञान में कमी है। मेरा अज्ञान बहुत है। कोई तो बात होगी। मेरे पास किताब नहीं होगी शायद इसलिये मेरा ज्ञान कम है। मुझे कोई पढ़ाने वाला ठीक नहीं मिला होगा, ठीक इसलिये मेरा ज्ञान कम है। मुझे जरा स्कूल नहीं मिला अच्छा इसलिये मेरा ज्ञान कम है। मुझे कुछ फेसिलिटीज नहीं मिली हैं इसलिये मेरा ज्ञान कम है। बहुत से कारणों पर हमारा ध्यान जाता है। सो ठीक है भैया, किसी के पास पुस्तक नहीं है, पर कई लोग ऐसे भी होते हैं कि जिनके पास पुस्तक नहीं होती फिर भी ज्ञान बहुत होता है। कई लोग ऐसे हैं जिनको कि ठीक-ठाक गुरु नहीं मिला है, द्रोणाचार्य नहीं मिल पाये थे एकलव्य को, लेकिन फिर भी धनुर्विद्या तो उसने सीख ली थी तो फिर मैं कैसे मानूँ कि गुरु के नहीं मिलने पर मुझे ज्ञान नहीं होगा या कि किताब के नहीं मिलने से मुझे ज्ञान नहीं हुआ है और या कि मुझे कोई अच्छा स्कूल नहीं मिला, पढ़ने के लिये या बहुत छोटे स्कूल में पढ़ रहा हूँ। आज तो सब यही सोचते हैं कि बड़े स्कूल में पढ़ूँगा, बड़े कॉलेज में पढ़ूँगा, कोई बड़े इन्स्टीट्यूट में पढ़ूँगा तो बहुत ज्ञानवान हो जाऊँगा। सोच तो हमारा यही है, लेकिन ये सारी चीजें बहुत बाहरी हैं। मेरे ज्ञान और अज्ञान को निर्धारित करने वाली ये चीजें नहीं हैं। मेरे भीतर मेरे अपने परिणाम, मेरे ज्ञान और अज्ञान को निर्धारित करते हैं कि कितना मेरे ज्ञान का क्षयोपशम होगा। मेरे अपने परिणाम निर्धारित करते हैं। आचार्य भगवन्तों ने एक सूत्र लिखा ..... ''तत्प्रदोष निह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः''।

ज्ञान पर आवरण और दर्शन पर आवरण लाने वाले उसको कम करने वाले ये जो ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म हैं जो हमारे साथ, हम खुद उनको ट्रेप कर लेते हैं, हम खुद उनको अटेच कर लेते हैं, उनके पीछे भावदशा क्या है ? प्रदोष ? किसी के ज्ञान की कथा करते समय, जैसे कि ज्ञान की चर्चा चल रही है, बैठे-बैठे सुन तो रहे हैं, लेकिन भीतर ही भीतर ईर्ष्या का भाव है, कोई ज्ञान की अच्छी बातें कर रहा है और उसकी बातें सुन भी रहे हैं लेकिन प्रशंसा का तो एक शब्द मुँह से नहीं निकला है और ना मन में प्रशंसा का भाव है बल्कि उल्टा मन में ईर्ष्या का भाव चल रहा है अगर, तो मानियेगा कि हमारे ज्ञान को हम अपने हाथ से खुद ढक रहे हैं। अपने अज्ञान का इजाफा हम खुद अपने हाथ से बढ़ा रहे हैं।

जबकि कुछ भी नहीं देखने में आ रहा है कि क्या कर रहे हैं। कुछ तो नहीं किया मैंने। मैं तो धर्म सभा में बढ़िया बैठा था। मैं तो सुनने गया था, ज्ञान की बातें, लेकिन मेरा अज्ञान और बढ़ गया। बढ़ेगा कैसे नहीं क्योंकि भाव दशा तो उस ज्ञान की कथा के समय, ज्ञान की कथा करने वाले से और उस सच्चे ज्ञान से आपके मन में ईर्ष्या का भाव था।

जहाँ प्रशंसा की जानी चाहिये थी ज्ञान की, हमने ज्ञान की प्रशंसा नहीं करी बल्कि उससे हमने द्वेष और कर लिया। हमारा ज्ञान ढक गया। हमारे अज्ञान में बल्कि और बढ़ोतरी हो गयी। किसी कारणवश किसी बहाने में "नहीं हैं", "मैं नहीं जानता हूँ," ऐसा कह देना पुस्तक और गुरु के बारे में, पुस्तक माँगने पर कहना कि "नहीं है", पूछने पर कहना कि "मुझे नहीं मालूम।" आपने यह ज्ञान कैसे प्राप्त किया, बड़ा अच्छा ज्ञान है आपका। मैंने खुद अपने द्वारा अर्जित किया है। अपने गुरु के प्रति जिनसे कि ज्ञान सीखा है, एक अक्षर भी जिससे सीखा है उसके प्रति हमारे मन में जिस गुरु से ज्ञान हासिल किया है उसका नाम छिपाने की कोशिश मत करना। मन में ऐसा भाव तक नहीं लाना, वरना हमारे ही ज्ञान में कमी आती है।

आचार्य महाराज तो सुनाते हैं कोई घटना, कि किसी महाराज के जीवन में ऐसा हुआ कि उनका ज्ञान का क्षयोपशम इतना बढ़ गया कि गुरुजी से भी ज्यादा हो गया। अब उनको इस बात में शर्म आने लगी, लोग पूछते थे जबकि आपका इतना उत्कृष्ट ज्ञान ? तो उनको इस बात में शर्म आने लगी कि कैसे कहें कि इन गुरुजी से सीखा। वो तो बिल्कुल ही बुद्धू हैं । उनका नाम बताकर हमें क्या मिलने वाला है ? नहीं मैंने अपने आप, मैंने अपने पुरुषार्थ से इस ज्ञान को अर्जित किया है। ऐसा अहंकार उनके भीतर आ गया और अपने गुरु का नाम छिपा लिया और गुरु के प्रति अविनय का भाव आ गया। उसका परिणाम उनके जीवन में ही देखने में आ गया कि इतना कुन्दन सा शरीर था, धीरे-धीरे पूरा काला (ब्लेकिश) होता चला गया। थोड़ी असावधानी हो गयी इसलिये ऐसी स्थिति बन गयी लेकिन जैसे ही उनके शरीर में परिवर्तन होना शुरू हुआ, उनका ध्यान चला गया और उनको अपनी गलती का अहसास हुआ। तो कहते हैं कि अत्यन्त पश्चाताप किया। गुरु के चरणों में जाकर माफी माँगी और कहते हैं कि कुछ दिनों के अन्दर उनका शरीर ज्यों का त्यों हो गया। भैया, अपने किये हुए कर्मों का तुरन्त भी परिणाम मिलता है और दूरगामी परिणाम भी होता है, बहुत सावधानी की आवश्यकता है। अरे भाई अपन ने ज्ञान हासिल कर लिया है तो जिस पुस्तक से हासिल किया है, जिन गुरुजनों के चरणों में बैठकर हासिल किया है, उनके प्रति आदर और उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने में अपना क्या जा रहा है, लेकिन उन क्षणों में मेरा अहंकार मुझे शांत नहीं बैठने देता। मुझे

याद है कुछ सतना वाले आकर बैठे हैं और उन्हीं के सतना में जब हम सन् बानवे में चतुर्मास करने गये थे तब इतवार के दिन प्रश्नोत्तरी आहार के बाद होती थी और सैकड़ों लोग बैठे हुये हैं और प्रश्नोत्तरी के दौरान एक के बाद एक प्रश्न आते चले जा रहे हैं और मैं जवाब देता चला जा रहा हूँ आचार्य महाराज का स्मरण करके, और एक प्रश्न उस बीच में ऐसा आया कि अद्‌भुत है आपका ज्ञान, इस क्षण में तो ऐसा लग रहा है कि जैसे आपकी जिह्वा पर सरस्वती आकर बैठ गयी हो और उसे पढ़कर के मेरे मन में भी तीस सैकण्ड के लिये यह विचार आ गया कि सचमुच मेरे पास ज्ञान की अच्छी सामर्थ्य है और आप आश्चर्य करेंगे कि अगले वाले प्रश्न का उत्तर जबकि मुझे 2-5 सैकण्ड से ज्यादा नहीं लगते लेकिन एक मिनट तक मुझे अगले वाले प्रश्न का उत्तर नहीं सूझा और अगले ही क्षण मेरे मन में आया कि ये क्या कर रहा हूँ। मैं तो आचार्य श्री का आशीर्वाद लेकर गद्‌दी पर बैठा हुआ हूँ। मैं थोड़े ही उत्तर दे रहा हूँ, उत्तर तो वो ही दे रहे हैं। जैसे ही ये भाव आया और उसके बाद प्रश्न के उत्तर ज्यों के त्यों बनने लगे।

मैंने अपने जीवन में ऐसा कई-कई बार अनुभव किया है। मैं आपको ये इसलिये कह रहा हूँ कि कभी भी अपने छोटे-छोटे क्षयोपशम ज्ञान के अहंकार में, अपने गुरु या कि अपने किसी शास्त्र से जिससे कि हमने यह सारी विद्या हासिल की है, उसका नाम छिपाने का प्रयत्न नहीं करना। ना अपने बच्चों को ऐसी सलाह देना, बल्कि विद्या तो बाँटने से बढ़ती है। दो ही चीजें हैं संसार में जो बाँटने से घटती नहीं हैं। ज्ञान या कि प्रेम कितना ही बाँटो, बढ़ता चला जाता है। इनमें कभी भी जो है और अहंकार नहीं करना। मात्सर्य-देने योग्य ज्ञान को नहीं देना, जानते हुये भी देने से इन्कार कर देना। भीतर कौनसा भाव है। कलुषता का भाव है कि मेरे ज्ञान दे देने से इसका बढ़ जायेगा। ये मेरे से आगे न निकल जायें। ऐसा करते हैं बच्चे, अपनी पोजिशन बनाने के लिये और दूसरे को बुक नहीं देंगे, दूसरों को बताएँगे नहीं अपनी प्रोब्लम्स, सामान्य पढ़ाई में भी। ये तो फिर तत्व ज्ञान की बात है। तत्त्व ज्ञान के समय अगर कोई ऐसा करे तब तो भारी अज्ञानता का ही कारण है। आगे भी अज्ञानता ही हाथ में आने वाली है, इसलिये भैया जब भी कोई बात अपन को मालूम है, तत्त्व की बात है, और कोई पूछे तो इन्कार नहीं करना, देने योग्य ज्ञान है और पाने वाला भी उसकी योग्यता रखता है तो मन में कलुषता रखकर के, इसको क्यों बताऊँ ? इसका ज्ञान बढ़ जाएगा, ऐसा भाव रख करके बताने से इन्कार नहीं करना। जब भी कोई चाहे, हाँ भैया आपके कल्याण की, करुणापूर्वक उसको दो बातें कह देना, तो ही अपना ज्ञान बढ़ेगा। आज मैं इसलिये कह रहा हूँ कि आज अपन को अगर ज्ञान नहीं है तो उसका कारण क्या है ? मैंने कभी ऐसे खोटे भाव किये होंगे जिससे कि मेरा अज्ञान तो ज्यादा है, ज्ञान कमती है। हम अब रोना नहीं रो सकते कि मेरी अज्ञानता क्यों है। अगर

रोना ही हो तो अपने पुराने परिणामों पर रोयें हम कि कैसे खोटे परिणाम किये होंगे जिससे कि मेरा ज्ञान इतना अल्प है। मुझे अपने कल्याण की बात ही नहीं सूझती। मैं उस ज्ञान की बात कर रहा हूँ नहीं तो ऐसा वाला ज्ञान नहीं है। ऐसा वाला ज्ञान तो बहुत लोगों के पास है। ऐसा ज्ञान जिससे कल्याण की बात सूझे वो है ज्ञान। दुनिया भर की जानकारी हासिल करने वाला क्षयोपशम कोई ज्यादा काम का नहीं है। क्षयोपशम वो है जिससे कि सारभूत जो चीजें हैं उनको जानने की सामर्थ्य प्राप्त हो। ऐसे ज्ञान की बात जिसके जानने के बाद मैं अपने कल्याण की बात जानने के लिये उत्सुक हो जाऊँ। संसार को जानने के लिये तो बहुत लोगों के पास बहुत सारा ज्ञान है, वो ज्ञान नहीं। मैं अपने सारभूत तत्व को जानने के लिये, उस ज्ञान का सदुपयोग क्यों नहीं कर पा रहा हूँ। मैंने ऐसे कौनसे खोटे भाव किये होंगे जिनसे कि मेरा इन चीजों में ज्ञान नहीं जाता है, किताब पढ़ने को कहें अगर धर्म की तो मन नहीं लगेगा और अगर कोई पत्रिका अभी खींचकर के बैठ जाएँ तो जब तक पूरी ना हो जाए तब तक छोड़ें नहीं। और अगर अपने कल्याण की दो लाइनें लिखी हुई हैं तो उसमें मन नहीं लगेगा, उठकर के चले जाऐंगे, ये क्या चीज है ? कौनसे ऐसे परिणाम मैंने खोटे किये होंगे पहले जिससे कि मेरी संसार के प्रपन्च को जानने में तो बहुत रुचि होती है और इन चीजों को जानने में जिनसे कि मेरा कल्याण है, अरुचि हो जाती है।

मैंने पहले मात्सर्य किया होगा। सच्चे ज्ञान को देने में मैंने कोताही की होगी, कंजूसी की होगी। इसीलिये आज मुझे सच्चा ज्ञान पाने में और मुश्किल पड़ रही है। ''तत्प्रदोष निह्नवमात्सर्यान्तराया'' ज्ञान और ध्यान के साधनों में बाधा डालना। ये भी अपन वर्तमान में विचार करें कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मैं दूसरे के सच्चे ज्ञान में बाधा डाल रहा हूँ। बच्चे तो कह रहे हैं कि हम जा रहे हैं। वहाँ पर प्रवचन सुनेंगे। ''हाँ सुनो प्रवचन, फेल हो जाओगे, घर से बाहर कर दूँगा''। पढ़ना-लिखना है नहीं बस वहीं पर जा रहे हैं, सुनने के लिये महाराज के पास जा रहे हैं। अरे वाह ! सच्चे ज्ञान के लिये तो आप रोक रहे हैं और संसार का ज्ञान बढ़ाने के लिये कह रहे हैं। ''एक जीव की जीविका एक जीव का उद्धार।'' एक से सिर्फ जिससे आजीविका चलने वाली है वो ज्ञान तो खूब देवो, जिससे जीवन का उद्धार हो उस ज्ञान में बाधा डालो। इससे जो है मेरा ही अज्ञान बढ़ेगा। मेरे ही ज्ञान को ढकने वाला काम कर रहा हूँ मैं। अगर कोई सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति के लिये लालायित है तो कभी उसमें बाधा मत डालना। हमारी दादी हमें दस पैसे देती थीं, अपनी अलमारी साफ करवाने के लिये। हाँ यहाँ पर हैं एक अम्माजी। बिल्कुल दादी जैसी लगती हैं उनको देखकर मुझे याद भी आ जाती है, दादी की, मैंने उनसे कहा भी था। ..... तो उनकी आदत थी, ''हे भैया! हमारी अलमारी कौन साफ करेगा।'' उसमें सब धर्म के ग्रन्थ रखे रहते थे और वो हर हफ्ते उनकी अलमारी साफ करने के लिये लालच देतीं। दस पैसे ले

लो। हम कहते थे, हम करेंगे क्योंकि दस पैसे बहुत होते थे उस समय में, सन् 70 और 71 की बात है। तो हम दस पैसे के लिये अलमारी साफ करते। साफ करते-करते, वो पहले बहुत छोटी-छोटी किताबें चलती थीं, छोटी सी किताब 'दादी हम ले लें'। "हाँ ले लो ..... ले लो, तुम तो ले लो।" वो चाहती यही थीं। दस पैसे के लालच में धर्म की किताबें उठायेगा, पलटेगा, धरेगा, सम्पर्क में आयेगा पता नहीं। कौनसी चीज इसके लिये अच्छी लग जावे सो अपने बस्ते में रख लेगा। बस्ते में रखेगा तो एक दिन खोलकर पढ़ेगा और चार लाइनें अगर धर्म की पढ़ लीं तो इसका कल्याण हो जाएगा, बस ये ललक है, अपने भीतर यह नहीं है, आज मैं यह कहना चाह रहा हूँ। अपने बच्चों के प्रति और अपने परिवारजनों के प्रति कितनी ललक है, अपने भीतर कि चार लाइनें पढ़ लेगा अपने कल्याण की, तो इसका कल्याण हो जाएगा। इसको कौनसा उपाय करूँ जिससे थोड़ा सा समय अपने कल्याण की बातें सीखने में भी लगाये। मन दिन भर लगा रहता है संसार की चीजें जानने के लिये। डिस्कवरी चैनल पर दो घण्टे से बैठा हुआ है। लेकिन डिस्कवर करना है अपने आपको, अपनी चेतना को, इसके लिये क्या कोई समय नहीं है। ठीक है वो नालेज खराब नहीं है भैया, लेकिन उसके साथ इसका कॉम्बीनेशन भी तो होना चाहिये। इस आत्म-ज्ञान की ललक भी तो होनी चाहिये, नहीं तो कल के दिन हमारा अज्ञान बढ़ता चला जाएगा। आप यह नहीं सोचना कि आज वर्तमान में बहुत बच्चे ज्ञानवान हैं, बहुत बातें जानते हैं। कितना क्षयोपशम है, कितना बढ़िया है इनका। इस प्रकार के क्षयोपशम की बात नहीं कर रहा हूँ मैं। ऐसा क्षयोपशम तो बहुत मिल जाएगा मुफ्त (फोकट) में। ज्ञान का वो क्षयोपशम जिससे हम रिलेवेन्ट रिएलिटी को जान सकें, जो सारभूत सच्चाई है उसको जान सकें। और सारभूत सच्चाई तो सात तत्व ही हैं। इनको जानने में हमें जो सामर्थ्य प्राप्त होती है उस सामर्थ्य को प्राप्त करने के लिये परिणाम सँभालना चाहिये।

और दो कारण और बचे - असादना और उपघात। ज्ञान का अनादर कर देना और ज्ञानी का अनादर कर देना। वाणी से और शरीर से; वचनिका चल रही है। कोई बात अच्छी लग भी रही है, लेकिन उसे कुछ नहीं आता है। ऐसा कह देना। तत्त्व की तो चर्चा ही नहीं करी। ये लो, इत्ते ही में वाणी से या शरीर से, वहाँ मन में ईर्ष्या करी थी। प्रदोष में। और यहाँ वाणी और शरीर से असादना कर दी। बाजू वाले से चर्चा में लग गये, अच्छी वचनिका चल रही है लेकिन अपन बाजू वाले से सटे हैं। हाँ उसमें लिखा हुआ है कि धर्म चर्चा करते समय दो लोग आपस में इशारा करें या वाणी से कुछ कहना शुरू कर देवें तो समझना यही तो असादना है ज्ञान की। ये बहुत हो जाती है देख लो आप। और उपघात, सच्चे ज्ञान का नाश ही कर देना, अर्थात् उसे अज्ञान कह देना यह उपघात है। जो धर्म की

बात है उसको तो अज्ञान कह देना और जो संसार बढ़ाने वाली बात है, इसकी। यह ज्ञान है ऐसा कह देना। सम्यक् ज्ञान को तो ज्ञान नहीं कहेंगे और मिथ्या ज्ञान को ज्ञान कह रहे हैं। इस तरह हमने सम्यक् ज्ञान की प्रशंसा नहीं की और उसकी आसादना के साथ-साथ उपघात कर दिया, उसका नाश ही कर दिया। पहले तो उसका अनादर किया और बाद में उसको नष्ट कर दिया। अब बताइयेगा कि हमें अपने जीवन में कैसे सच्चा ज्ञान प्राप्त होगा। तो भैया अगर हमें सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है तो उसकी जिम्मेदारी किसी किताब की नहीं है, किसी गुरु की नहीं है और ना किसी स्कूल और कॉलेज की है। इसकी जिम्मेदारी मेरे अपने भावों की है, मुझे अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिये। मेरे अपने परिणाम मुझे इन सब चीजों से वंचित रखते हैं और यदि मैं अपने परिणाम सँभाल लूँ तो ये सच्चा ज्ञान और सच्चा ज्ञान पाने की सामर्थ्य मेरे भीतर है। मैं उस सामर्थ्य को बढ़ा सकता हूँ। उस सामर्थ्य को ढकने वाले जो भाव हैं, उन सबसे मैं बचूँ। ऐसे कर्म न करूँ जिससे कि मेरा सच्चा ज्ञान ढकने की सामर्थ्य, अनन्त ज्ञान की सामर्थ्य मेरी ढक जावे। मैं अब अपने परिणाम सँभाल करके अपनी उस अनन्त ज्ञान की सामर्थ्य को प्रकट करूँ। ऐसे कर्म करूं जिससे कि मुझे ऐसी सामर्थ्य प्राप्त हो। इसी भावना के साथ बोलो आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 8

हम सभी लोग पिछले कई दिनों से अपने जीवन में जो हम करते हैं उसी से हमारा व्यक्तित्व, उसी से हमारा जीवन, हमारी वाणी और हमारे विचार सभी प्रभावित होते हैं। तब हम क्यों ना ऐसा करें जिससे कि हमारा व्यक्तित्व ऊँचा उठे। हमारा जीवन अच्छा बने। हमारी वाणी और हमारे विचारों में भी श्रेष्ठता आये, जब ये जिम्मेदारी कर्मों की हमारी है तो फिर हमको कर्म करने का कौशल, कर्म करने की कुशलता भी होनी चाहिये। एक ज्ञानी और एक अज्ञानी दोनों अपने जीवन में कर्म करते हैं और उन कर्मों का फल भी भोगते हैं। एक सफल और एक असफल व्यक्ति दोनों ही अपने जीवन में कर्म करते हैं। एक जैसे कर्म करने के बाद भी एक सफलता हासिल करता है, एक ज्ञानवान कहलाता है, एक असफल हो जाता है और अज्ञानी कहलाता है। बाह्य कर्म समान रूप से करने के बावजूद भी ऐसा क्या है जो हमारे जीवन को सफल और श्रेष्ठ बनाता है ? असल में कर्म करने की हमारी जो कुशलता है वो हमारे जीवन को श्रेष्ठ बनाती है और इतना ही नहीं जब हम उन कर्मों का फल चखते हैं, तब उस फल को चखते समय हमारी जैसी भाव दशा हमारी जैसी मानसिकता होती है, वैसा ही आगे के लिये हम नया कर्म संचित करते हैं।

एक ज्ञानी जब भी अपने भले और बुरे कर्मों का फल चखता है तब वो उसके लिये किसी बाह्य कारण को प्रमुखता नहीं देता। वो अपने ही भीतर झाँककर देखता है कि यदि मेरे जीवन में कोई विपत्ति या संकट या दुःख आया है, तो मुझे किसी और से शिकायत करने की आवश्यकता नहीं है, मुझे अपने भीतर झाँककर देखना होगा; उस विपत्ति, संकट या दुःख का कारण कहीं मेरे भीतर ही है। मैंने ही अपने लिये ऐसा पहले शायद कोई कर्म संचित किया होगा जिससे कि आज मुझे संकट और विपत्ति का सामना करना पड़ रहा है। ये ज्ञानी का सोच है, और इतना ही नहीं जब दूसरे पर विपत्ति आती है, तब वो ऐसा विचार नहीं करता कि ये इसके किसी कर्म के उदय से आयी है। कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरे जीवन से इसको कोई दुःख या विपत्तियाँ या संकट का सामना करना पड़ रहा

हो। इसलिये मुझे अपने जीवन को सँभालकर चलना है जिससे कि किसी दूसरे के दुःख या संकट में मैं कारण ना बनूँ। मेरे दुःख और संकट में कोई और कारण बनता है। इस बात का विचार ना करते हुये मेरे दुःख और संकट का कारण मेरे ही भीतर है, ऐसा विचार करना, लेकिन दूसरे के ऊपर आने वाले दुःख और संकट में, मैं कहीं कारण ना बन जाऊँ, इस बात का ध्यान रखना ये है कर्म करने का कौशल।

हमें पिछले दिनों ये बात बार-बार विचार करने में आ रही है और अब ये कुशलता अपने जीवन में सीख लेनी चाहिये। एक भिखारी एक अमीर आदमी के घर के सामने भीख माँगता है और कहता है कि भूखा हूँ, तीन दिन से, कुछ खाने को दे दो, लेकिन उसके अपने ही किन्हीं संचित कर्मों का ऐसा संयोग है, ऐसा उदय है कि कोई उसकी इस बात को सुनकर विश्वास नहीं करता और उसके प्रति दया का भाव नहीं रखता। यह तो उसके अपने कर्म का उदय हुआ, लेकिन सामने वाला क्यों अपने उस दया और करुणा के सहज स्वभाव को भूल जाता है, यह विचारणीय है और दुत्कार करके भगा दिया जाता है उसे, फिर भी वो थोड़ी और जब विनय करता है, याचना करता है, तब घर में जो सेठानी है वो आपे से बाहर हो जाती है और फर्श पोंछने का जो गीला कपड़ा है वो उठाकर के, फेंककर के उसे मार देती है। लेकिन मजे की बात ये है कि वो भिखारी इसके बावजूद भी प्रसन्न है। मेरे लिये इन्होंने खाने की कोई चीज नहीं दी। इस बात के लिये दुःख करना ये तो व्यर्थ ही है, मुझे कुछ तो दिया इसके लिये मुझे धन्यवाद देना चाहिये। गीला कपड़ा, फर्श पोंछने का, फेंककर के मारा ऐसा नहीं कह रहा है, 'दिया' मुझे और मेरा सौभाग्य कि इतना तो मिला और वो उसे रख लेता है। बहुत मुश्किल है ये। ये उदाहरण जब मैं पढ़ रहा था तो मुझे लगा कि ये सब बातें पता नहीं कौनसी दुनिया की और कौनसे संसार की बातें हैं। लेकिन हैं सब इसी संसार की बातें, कि ऐसे लोग भी हैं। उतने ही अहोभाव से, उतने ही प्रसन्नता से और वो ग्रहण कर लेता है और वापस लौट जाता है। रास्ते में तालाब के किनारे, धोकर के कपड़े को, छोटी-छोटी सी चिन्दियाँ बना लेता है और शाम घिरने तक भगवान के मंदिर में जाकर के बैठ जाता है और दीपक में उन कपड़े की चिन्दियों की बाती बनाकर के घी डालकर दीपक जलाता है और उस दीपक से भगवान की आरती करते समय क्या प्रार्थना करता है कि मेरा सौभाग्य, मैं आपसे अपने लिये क्या माँगू, सेठानी के लिये माँगता हूँ, उनके जीवन में क्षमा का दीप जले, उनके जीवन में प्रेम का उजाला हो। ईश्वर से माँग रहा है। ऐसा, ऐसा कर्म करने का कौशल, इतनी कुशलता क्या हमारे भीतर है। अपनी जरा-जरा सी विपत्ति, संकटों और दुःख में

हम किस-किस को दोषी ठहराने का मन बना लेते हैं और ठहरा भी देते हैं, लेकिन किसी को भी ना वो दोषी ठहरा रहा है, ना किसी से उसे शिकायत है, वो तो सिर्फ अपना कर्त्तव्य कर रहा है। आपने मुझे जो दिया उससे मैं बेहतर क्या कर सकता हूँ। मुझे मेरे अपने संचित कर्मों के फलस्वरूप जो भी भला या बुरा फल चखने को मिला, उससे मैं कैसे कुछ बेहतर कर सकता हूँ। ये विचार, कोई भी मुझे भला और बुरा फल नहीं देता, मेरा किया हुआ मुझे भला या बुरा फल देता है, अगर ये चीज हमारे मन में बनी रहे तो हम आसानी से इस संसार में दुःखों को जीत सकते हैं। अपने लिये दुःखों का इंतजाम हम सोचते हैं कि कोई और करता है, लेकिन अपने लिये दुःखों का इन्तजाम हर व्यक्ति खुद करता है। जैसे हम अपने लिये सुख का इन्तजाम करते हैं किसी दूसरे को उसका श्रेय नहीं देना चाहते। बताइये कौन अपने सुखों के लिये दूसरे को श्रेय देगा। किसी ने दिया आज तक ? किसी ने नहीं दिया होगा। मैं सुखी हूँ, मैं अपनी वजह से सुखी हूँ और किसी वजह से सुखी थोड़े ही हूँ, लेकिन मैं दुःखी हूँ तो किसी और की वजह से दुःखी हूँ, मैं अपनी वजह से दुःखी नहीं हूँ। ये ध्यान ही नहीं जाता। नहीं, जिस तरह से मैं सुखी हूँ, तो अपनी तरह से सुखी हूँ, उसी तरह अगर मैं दुःखी हूँ तो उसकी जिम्मेदारी भी मेरी ही है। मेरे ही भीतर उसका कोई कारण मौजूद है। अगर सुख-सुविधा के साधनों का अभाव होने से कोई दुःखी है, तो फिर सुख-सुविधा के साधन मिल जाने पर फिर सुखी होना चाहिये।

लेकिन बहुत से ऐसे लोग हैं जिनको कि सुख-सुविधा के साधन मिलने पर भी दुःखी देखा जाता है। अच्छा तो फिर पद प्रतिष्ठा का अभाव होने से शायद दुःख होता होगा। अरे तो ऐसे तो बहुत सारे लोग हैं जिनको कि पद प्रतिष्ठा मिल जाती है उसके बाद भी वे दुःखी रहते हैं। अरे ! नहीं तब तो शरीर स्वस्थ होता होगा तब सुख मिलता होगा, शरीर की अस्वस्थता से दुःख मिलता होगा। पर जिन-जिन के शरीर स्वस्थ है, उनके भी बहुत सारे दुःख हैं। तब तो ना पद प्रतिष्ठा के अभाव में दुःख मिलता है ना सुख-सुविधाओं के साधनों के अभाव में, ना शरीर की स्वस्थता के अभाव में दुःख मिलता है तो उसका कोई तो कारण होगा। ये सब बाह्य कारण हैं दुःख के, इनके होने या नहीं होने पर भी हमारे अन्तरंग का कारण अगर मौजूद है, हमारे भीतर अगर हमने असाता कर्म का संचय कर के रखा है तो वह असाता अपना फल हमें अवश्य देगी। और मैं अपने लिये असाता भोगता कैसे हूँ, हमें सिर्फ इस पर विचार करना है ताकि आगे मेरे जीवन में असाता, मेरे जीवन में दुःख, संकट और विपत्ति न आये। कोई कितना भी बाहर से मेरे जीवन के लिये संकट उत्पन्न कर सकता है लेकिन जब तक मेरे असाता का भीतर कारण मौजूद नहीं

होगा तब तक कोई भी मुझे कितनी भी विपत्ति में डाल दे, वो विपत्ति भी मेरे लिये सम्पत्ति का काम करेगी और ऐसे सैकड़ों उदाहरण भरे पड़े हैं। पुराण ग्रन्थों को उठाकर के देखें कि कितने-कितने लोगों को विपत्ति में डाला, लेकिन उनके अपने संचित कर्म भले थे। इसलिये वो विपत्ति भी उनका कोई बिगाड़ नहीं कर पायी। तो भैया मेरे अपने संकटों और दुःखों का कारण मेरे भीतर मौजूद है। तो मैंने ऐसा क्या किया होगा जिससे कि मेरे दुःख और संकट आये, इस पर विचार करना है।

आचार्य भगवन्तों ने हमें विचार करके और दे दिया है एक सूत्र - ''दुःखशोकतापाक्रन्दन- वधपरिदेवनान्यात्मपरोभय स्थानान्यसद्वेद्यस्य।''

मैंने अपने लिये आज वर्तमान में जितने दुःख मैं भोग रहा हूँ उसका इन्तजाम तो मैंने खुद किया है। वे कौनसे भावों से मैं अपने असाता कर्म का संचय करता हूँ। अपने दुःखों का मैं स्वयं इन्तजाम करता हूँ। लगेगा कि कोई अपने दुःखों का इन्तजाम खुद करेगा क्या? अज्ञानतावश हम क्या नहीं करते ? मोह के वशीभूत होकर हम क्या नहीं करते ? अपनी हमारी आसक्तियाँ हमसे क्या नहीं करवा लेतीं। हमारे दुःख का उपाय हम अपने हाथ से कर लेते हैं। ये तो जब थोड़ी समझ आती है तब अपने ऊपर रोना आता है या हँसी आती है कि अरे ये हमीं हैं जो हमने ऐसा किया और अपने लिये दुःख का इन्तजाम कर लिया और आचार्यों ने तो सूत्र लिख दिया कितनी चीजें हैं - दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध, परिदेवनानि आत्म परोमय स्थानानि असद् वैद्यस्य।

मेरे भीतर अगर मैंने असाता संचय की है जिसका कि फल मुझे आज भोगना पड़ रहा है तो उस समय मैंने क्या-क्या किया होगा? स्वयं भी दुःखी और दूसरे को भी दुःख में डाला होगा। आत्म, पर, उभय अर्थात् स्वयं को भी, दूसरों को भी और दोनों को भी मैंने दुःख का इन्तजाम किया होगा। दूसरे के लिये भी दुःख का इन्तजाम किया होगा या कि स्वयं भी अपने जीवन में लगातार दुःख का अहसास किया होगा। दुःख होने पर दुःख का अहसास न हो ? हाँ, ऐसा सम्भव है। हम सोचते हैं कि दुःख में दुःखी होने से यह दुःख घट जाएगा। नहीं भैया ! दुःख तो झेले-झेले कटता है। दुःख तो दुःखी होने से और बढ़ता है। देख लो आप, थोड़ा दुःख है और आप अपनी तरफ से दुःखी हो लो तो कम हो गया क्या, दुःख और बढ़ती हो गया। आचार्य भगवन्त कह रहे हैं कि दुःख के निमित्त मिलने पर जो और दुःखी होता है, दूसरों के दुःख का इन्तजाम करता है, मानिये, वो अपने लिए असाता का संचय करता है। दुःख, इष्ट का वियोग होने पर, अनिष्ट का संयोग होने पर जिस तरह पीड़ा के परिणाम होते हैं सब हमारे नये दुःख का इन्तजाम करते हैं और

ये तो चौबीस घन्टे हम लोगों के साथ लगा हुआ है। इष्ट का वियोग हो गया और अनिष्ट का संयोग हो गया। किसी ने कठोर वचन कह दिये, मन पीड़ा से ग्रसित हो गया। बहुत सावधानी की आवश्यकता है। ये सारी स्थितियाँ निर्मित हों फिर भी मुझे अपने मन की प्रसन्नता बनाये रखनी है, वरना मैं अपने लिये खुद दुःखी होकर नये दुःख का इन्तजाम कर लूँगा। ये मुझे सावधानी रखनी है। हम हमेशा ऐसे कहते हुये, सुनते हुये पाये जाते हैं कि हम अपने आप दुःखी हैं, आपको क्या मतलब। अरे ! नहीं भैया। आप अपने आप दुःखी हैं तो आप अपने दुःख का इन्तजाम तो कर ही रहे हैं और आपके दुःखी होने से वातावरण भी प्रभावित होगा। वो भी दुखमय होगा। एक दुःखी व्यक्ति के चारों तरफ पहुँच कर कोई भी व्यक्ति सुख का अहसास नहीं कर पाता, लेकिन एक प्रसन्न व्यक्ति के चारों तरफ कोई भी पहुँच जाये, वो दुःखी भी हो, तब भी थोड़ी देर के लिये अपना दुःख भूल करके प्रसन्नता का अनुभव कर सकता है। इसलिये ऐसा नहीं सोचना कि मैं दुःखी हूँ। जब-जब मैं दुःखी होता हूँ तो दूसरे को दोषी ठहराने का भाव मेरे अन्दर आता है कि मेरे दुःख का कोई कारण है और तब मैं दूसरे को भी दुःख ही पहुँचा करके फिर सुख का अनुभव करता हूँ। ये मेरे भीतर एक मिथ्या भाव उत्पन्न होता है। इसलिये जब इष्ट का वियोग या अनिष्ट का संयोग हो या कि अपने अनुकूल कोई वचन न कहे जायें, तब बहुत सावधानी रखने का काम है। शोक, किसी हितैषी व्यक्ति के विच्छेद हो जाने पर कोई कारण निर्मित हो जाता है। डायवोर्स (तलाक) कैसे हो जाता है ? कल तक जिसके सामने यह कहते पाये जाते थे कि तुम्हारे बिना एक क्षण नहीं रहूँगा उसी के साथ हमारी भाव दशा ये बनती है कि ये कहते पाये जाते हैं कि तुम्हारे साथ अब एक क्षण भी नहीं रहूँगा और विच्छेद और फिर बाद में निरन्तर एक पीड़ा का भाव होता है, उसे कहते हैं शोक। दुःख और शोक में इतना फर्क है।

हितैषी व्यक्ति से अपने किसी कारण से जब विच्छेद हो जाता है तब भीतर ही भीतर उस मोह की वजह से और हमारे अन्दर जो पीड़ा उत्पन्न होती है, जो दुःख होता है उसे शोक का नाम दिया है। ऐसे क्षण भी जीवन में आते हैं, सावधानी रखें, नहीं तो अपने जीवन में ये जो शोक किसी पुरानी वजह से आया है पर आगे का इन्तजाम और कर लेगा।

और ताप, किसी को भी कठोर वचन नहीं बोलना, क्योंकि किसी के भी कठोर वचन सुनकर के भीतर-भीतर जो एक जलन उत्पन्न होती है, जैसे कि हमने आपको एक उदाहरण सुनाया था कि शेर जब घर आ गया था तो जीवन-साथी ने कह दिया था कि ये

शेर थोड़ी है यह तो गधा है। मेरी लकड़ियाँ लाता है जंगल से। तब वो जो एक वचन था वो उसके भीतर घाव की तरह जलन देता था जैसे कि घाव जलन देता है। वो कहलाता है ताप। उसको संताप भी कहते हैं।

आक्रन्दन, जब सहन नहीं होता है भीतर का दुःख, तब जब हम जोर-जोर से आँसू बहाते हुये क्रन्दन करते हैं, वीपिंग जिसको कहते हैं, वो आक्रन्दन है। ये आक्रन्दन भी हमारे आगामी असाता के बंध का कारण है ये ध्यान रखना। हमारे असाता का इन्तजाम हम इस तरह से करते हैं। किसी और को भी हम इसी तरह रुलाते हैं। किसी और के भी संताप में कारण बनते हैं तब भी हम अपने ही असाता का बंध करते हैं, स्वयं भी अगर इन परिणामों को करते हैं तो हमारे लिये ये दुःख की संतति बढ़ती ही चली जाती है। इस दुःख की संतति को बढ़ाने वाले हम स्वयं हैं। दुःख ही दुःख की संतति को बढ़ाता है। ये बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

प्रतिवेदन, जिन्दगी भर जिनके गुण नहीं गाये उनके मरने पर, उसका गुणगान करते हुए रोना, ये परिवेदन कहलाता है, हाँ ऐसा भी करते हैं अपन, जिन्दगी भर जिनकी निन्दा करी होगी, जिनके गुणों का ध्यान नहीं दिया होगा, उनके मरण के बाद उनके गुणों को याद कर-करके हम रोते हैं, बिलख-बिलख करके रोते हैं। तब और हम नये दुःख का इन्तजाम करते हैं। ये इतने कारण आचार्य भगवन्तों ने हमारे अपने दुःख के बताये हैं और कोई बाहरी कारण नहीं हैं। ये मेरी अपनी भाव दशा ही मेरे दुःखों का कारण बनती है और इतना ही नहीं जब अकलंक स्वामी के चरणों में बैठें तो इतने महान आचार्य कहते हैं कि जो अपने जीवन को यूँ ही व्यर्थ बरबाद करते हैं वे अपने दुःखों का इन्तजाम खुद करते हैं। दूसरों के लिये दुखदाई कार्य करना, हिंसा के उपकरणों को उत्पन्न करना, उनका व्यापार करना, पेस्टी-साइड विष इत्यादि इन सबकी मैन्यूफेक्चरिंग करना, इनकी सेलिंग करना, डीलरशिप ले लेना इनकी, ये सारे अपने दुःखों का इन्तजाम है, जितने भी कार्य दूसरे के लिये दुःख पहुँचाने वाले हम करते हैं वे सारे कार्य अन्ततः हमारे दुःख का कारण बनते हैं और सबसे बड़ी चीज तो अपने जीवन को यूँ ही व्यर्थ बरबाद करना। अपने जीवन से कोई भी सार्थक कार्य नहीं कर पाना। पूरे जीवन भर ये असाता के बंध का बहुत बड़ा कारण है। अकलंक स्वामी तत्वार्थ राजवार्तिक में लिख रहे हैं। कभी अपन देखें इन बातों को और जीवन में अपन विचार करें जब अपने ऊपर अपने ही बाँधे गये दुःखों का बोझ भारी हो जाये और हमसे झेला नहीं जाये तो हमें क्या विचार करना चाहिये। अब ज़रा ये विचार कर लें। ये तो विचार कर लिया अपन ने कि मेरे अपने ऊपर दुःखों का जो बोझा

मैं ढो रहा हूँ वो मैंने ही बाँधा है जैसे कि मैं सामान की पोटली ये सोचकर कि मेरे पास इतना सारा सामान है और बाँधकर के सिर पर रख लेता हूँ और उसका बोझा ढोता हूँ। लगता है जैसे कि मैं बहुत सारा सामान लिये हूँ लेकिन मैं तो उसके बोझ से दबा जा रहा हूँ। ये दिखाई नहीं पड़ता। ऐसे ही मैं जब-जब दूसरे के दुःख का इन्तजाम करता हूँ तो सोचता हूँ देखा कैसे बच्चू को दुःख में डाला। लेकिन उस समय मैं अपने सिर पर दुःखों का जो बोझा बाँधता हूँ उसकी तरफ ध्यान नहीं जाता है। आचार्य भगवन्त ध्यान दिला रहे हैं कि अज्ञानतावश, मोह के वशीभूत होकर के, आसक्ति के वशीभूत होकर के, मैंने अपने दुःख का इन्तजाम कर लिया है तो उपाय बताते हैं।

साता के उपाय की चर्चा नहीं करूँगा आज। साता के उपाय की तो कल से चर्चा करूँगा। अगले सूत्र की। लेकिन आज तो सिर्फ ये देख लूँ कि इन दुःखों के आ जाने पर मैं क्या करूँ ? मैं क्या कर्म करूँ ? ये तो ठीक है कि मेरे अन्दर जो भी साता है उसके लिये मैंने क्या-क्या करा होगा, उस पर विचार कर लेंगे और आगे के लिये तैयारी कर लेंगे कि और साता बँधे। ये अलग से कर लेंगे लेकिन आज जबकि मेरे ऊपर दुःखों का बोझा इतना भारी हो गया है, मेरे पल्ले में तो साता है ही नहीं, तो इसी आसाता की स्थिति में, मैं क्या करूँ ? क्या उपाय करूँ ? तब उसके लिये आचार्य भगवन्त कहते हैं कि सबसे पहली चीज दूसरे से अपेक्षायें कम करो। शिकायत करना कम करो। जब भी दुःख आये तो कम से कम दूसरे ने दुःख दिया है ऐसा विचार ही मत करो। मेरे ही भीतर दुःख का कारण है, भैया ! तुमने कुछ नहीं किया। सामने वाला अगर ये फील (महसूस) भी करे कि मेरी वजह से आपको दुःख पहुँचा तो उसके पैर छूकर के कहना कि नहीं, ऐसा मत कहो आपकी वजह से मुझे कोई दुःख नहीं है दुःख तो मेरे भीतर है। मैंने ही कुछ ऐसा

करे तब भी मैं उसको यही कहूँ कि मुझे मेरे कर्म दुःखी कर रहे हैं तुम्हारे कर्म तो तुम्हें दुःखी करेंगे। मुझे थोड़े ही दुःखी करेंगे। किसी के कर्म किसी और को दुःखी करेंगे, ऐसा नहीं है। हमारे कर्म हमें दुःखी करते हैं। तुम जो हमें दुःख पहुँचाने का कर्म कर रहे हो उसका फल जब तुम्हें मिलेगा तब वो तुम्हें दुःखी करेगा। अभी तुम्हारे किये गये कर्म से थोड़े ही दुःखी हूँ, मैं तो अपने किये गये कर्म से दुःखी हूँ। अरे बहुत कठिन है, ये विचार आना बहुत कठिन है, लेकिन करना तो पड़ेगा। आज नहीं करेंगे, कल करेंगे, कल नहीं करेंगे परसों करेंगे, पर आना चाहिये और देखो भैया अपने दुःख से दुःखी लोग ज्यादा नहीं हैं, दूसरे के दुःख से दुःखी लोग तो और ही कम है। अपने दुःख से दुःखी लोग तो

संसार में मिल जायेंगे कि उनको शरीर ठीक नहीं मिला। आर्थिक स्थिति कमजोर है। पद प्रतिष्ठा नहीं मिली। सुख-सुविधा के साधन नहीं मिले। सो इस वजह से दुःखी हैं, ऐसे लोग तो बहुत ज्यादा नहीं हैं और इससे भी कम हैं ऐसे लोग जो दूसरे के दुःख से दुःखी हैं कि भैया इनके दुःख कैसे दूर करूँ? ऐसे तो महान लोग हैं वो कहीं मिल जायें तो उनके पैर छू लेना, जो दूसरों के दुःख से दुःखी हों। अपने दुःख से दुःखी लोग तो संसार में बहुत मिलेंगे। वे भी लेकिन उतने नहीं है, उससे भी ज्यादा हैं दूसरे के सुख से दुःखी। हाँ दूसरे के दुःख से दुःखी बहुत कम, उससे ज्यादा अपने दुःख से दुःखी, और सबसे ज्यादा दूसरे के सुख से दुःखी लोग कि दूसरा क्यों सुख से जी रहा है ? इस बात की बड़ी तकलीफ। अपने भीतर झाँक करके देखें कि कितने क्षण मेरे ऐसे होते हैं जिसमें मैं अपने ही किसी अभाव की वजह से दुःखी होता हूँ और कितने क्षण ऐसे होते हैं जिसमें मैं दूसरे के दुःख की वजह से थोड़ा दुःख महसूस करता हूँ और अधिकांश क्षण तो मेरे दूसरे के सुख को देख-देखकर ही दुःखी होने में ही गुजर जाते हैं और ऐसे-दूसरे के सुख से दुःखी लोगों को तीर्थंकर भी आ जायें, भगवान भी आ जायें, तब भी सुखी नहीं कर सकते। जो दूसरे के सुख से दुःखी हैं उसके लिये तो दुःख से बचने का कोई उपाय नहीं है। अपने दुःख से बचने का तो उपाय है। बेटी का ब्याह करके विदा कर रहे हैं, दुःखी हैं लेकिन प्रसन्नता है कि सुख से रहेगी, कोई असाता नहीं बंध रही, आँसू गिर रहे हैं फिर भी। बेटा जा रहा है विदेश पढ़ने के लिये, आँसू टपक रहे हैं, सिर पर हाथ फेरकर विदा दे रहे हैं, पर मन प्रसन्न है। भविष्य उज्ज्वल हो जाए इतना ही चाहते हैं। धर्मात्मा का संयोग मिला है, एक दिन धर्मात्मा दूर जाता है, तब उसको भेजने जा रहे हैं, आँखों में आँसू हैं लेकिन मन प्रसन्न है कि जब तक ये रहे हमने धर्म सीख लिया। धर्म हमारे साथ है। ये भले ही दूर चले जायें लेकिन धर्म तो देकर के जा रहे हैं। तब भी कोई असाता नहीं बँधेगी। दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाले को भी साता ही बँधेगी और इस तरह ये विचार करने वाले को भी साता ही बंधती है। असाता तो तब बँधती है जबकि हम दूसरे के सुख को सहन नहीं कर पाते है और भीतर ही भीतर शोक संताप से ग्रसित हो जाते हैं तब और नयी असाता का बंध कर लेते हैं।

एक उदाहरण है। शायद मैंने पहले कभी सुनाया हो लेकिन अपन इस अवसर पर फिर से उसे रिवाइज (दोहरा) कर लें। कैसे हम अपने लिये दूसरे से दुःख कमा लेते हैं। हमारे अन्दर आदत बन जाती है। कितनी भी सुख-सुविधाएँ हमें मिल जायें, फिर भी हम सुखी नहीं हो सकते। कितना भी हमारे लिये फुल फेसिलिटीज मिल जायें लेकिन जिसने

दुःखी रहने की आदत बना ली, उसे भगवान भी सुखी नहीं कर सकते। हमें इस आदत को छोड़ना चाहिये। अपेक्षाओं को घटाना चाहिये। शिकायत की प्रक्रिया कम करनी चाहिये तब हम दुःख से बच पायेंगे और इतना ही नहीं मैंने जीवन में जो सार्थक किया है उसका विचार करने से दुःख कम हो जाते हैं, निराशा नहीं होती। हाँ, एक पेड़ की पत्ती टूटते समय काँप रही थी। कवि ने कल्पना करी और उसको दिलासा दी, ''तुम क्यों काँप रही हो, तुम क्यों घबरा रही हो, अरे! तुम्हारा जीवन तो सार्थक हो गया। तुमने वो जो थोड़ी सी छाया किसी को दी है ये क्या कम है। उस एक पत्ती से भी थोड़ी सी छाया तो हुयी होगी, इसका विचार करो।'' मेरे अपने जीवन से दूसरे के लिये जो कोई लाभ पहुँचा देगा उसका विचार करना और अपने दुःख को झेल देना। ये भी एक दुःख से बचने का उपाय है।

दुःख आ जाने पर और वो जो मैं आपसे कह रहा था कैसे हम अपने, अपने आपके स्वभाव में दुःख डाल लेते हैं। एक बेटे से पिता को हमेशा शिकायत रहती थी। शायद आपको याद आ गया, उसने अपने दोस्त से भी कहा कि बेटे को जरा समझा देना। हमारी तो जिन्दगी इतनी निकल गयी। हमारे मन का तो एक काम नहीं करता वो सब उल्टे-उल्टे काम करता है। तो उनके मित्र ने बेटे से कहा कि भैया पिताजी की कितनी उम्र रह गयी, कम से कम उनके मन की तो कर देवें। तो कहने लगा कि कहाँ तक मन की करें। जो मन की करते हैं उसमें उनको दुःख लगने लगे तो बताओ फिर क्या करें ? कहने लगे, हमने नये कपड़े बनवाये। पिताजी से पूछकर बनवाये थे और हम वे नये कपड़े पहनकर के दुकान पहुँचे, कहने लगे और हम कमा-कमा के रखते जा रहे हैं, ये साहबजादा बने मिटा रहे हैं हमारी सम्पत्ति को। हमने कहा ठीक है भैया गलती हो गयी। हमने बेकार में ये पहने। हम खराब वाले पहन लेंगे, जो पुराने पड़े थे वे ही पहन लेंगे। हम चार दिन के बाद दुकान पर फटे पुराने से पहन कर गये। कहने लगे ''लजवाओ न'' अभी तो हम कमावत है, कम से कम हमारे सामने तो अच्छे ही पहन लो। अब बताओ आप, जिस व्यक्ति को किसी भी स्थिति में सुखी ही नहीं रहना है, प्रत्येक स्थिति में दुःखी ही रहना है, तो हम क्या कर सकते हैं।

ऐसे लोगों के सुख का कोई इन्तजाम नहीं कर सकता। भगवान भी नहीं कर सकते। भैया, इस आदत को छोड़ना चाहिये, अगर अपने भीतर ये आदत पड़ गयी है। अपने जीवन में दुःख निकालने की आदत पड़ गयी है, तो इससे अपना जीवन सुधरेगा नहीं और आखरी बात कि अब अपने जीवन में सावधान हो जायें कि दूसरे को मेरे से दुःख ना पहुँचे। कम से कम दुःख पहुँचाने का मेरा भाव तो ना रहे। हो सकता है मैं सुबह से शाम

तक उठूं-बैठूं, आऊँ-जाऊँ, बोलूँ, खाऊँ-पीऊँ, उसमें बहुत सारे जीवों को मेरे नहीं चाहते हुए भी दुःख पहुँच सकता है, पर मैंने चाहा नहीं कि किसी को दुःख पहुँचे। मेरी मानसिकता तो कम से कम मैं ऐसी ना रखूँ कि किसी को दुःख पहुँचे और फिर इतना ही नहीं मैं अपनी क्रियाओं पर भी जरा विचार करूँ, ऐसा ना हो कि मैं भले ही दुःख देने का विचार नहीं करता लेकिन मेरी क्रियाएँ जरा अव्यवस्थित हैं तो उनसे दुःख पहुँचता है तो मुझे अपनी क्रियाओं को भी व्यवस्थित करना पड़ेगा। मेरा भाव तो खराब नहीं है लेकिन मेरी वाणी सुनकर के दूसरे को दुःख उत्पन्न होता है तो मैं जरा अपनी वाणी पर नियन्त्रण कर लूँ। ठीक है मेरे मन में तो ऐसा कोई भाव नहीं है। कई बार ऐसा हो सकता है, मन में भाव ना हो और वाणी से कोई चीज ऐसी निकल जाये तो बाद में हम अपने को सँभाल सकते हैं कि भैया मेरा आशय ऐसा नहीं था। ये चीज हमें सीखनी पड़ेगी। ये कर्म करने की प्रक्रिया हमें सीखनी पड़ेगी, अगर हम अपने लिये आगे और दुःख नहीं चाहते हैं। जितने दुःख हैं उनको हम कैसे झेलें। और उनमें हम अपनी प्रसन्नता को कैसे बरकरार रखें ? ये हमने सीख लिया और अब हम आगे के लिये दुःखों का इन्तजाम दूसरों के लिये ना करें तब हमारे भी दुःख दूर हो जायेंगे। जब हम दूसरे को दुःख देते हैं तो वह लौटकर के हमारे ही ऊपर आता है। अच्छा देखो, किसी गुफा में किसी गुम्बद के नीचे खड़े होकर के जोर से बोलो। गाली देवो तो क्या होगा। वापस आवेगी, लो अपनी वापस ले लो। ये संसार भी इसी तरह की प्रतिध्वनियों का संसार है जिसमें हमारी ही ध्वनि लौटकर के हम तक आती है। यहाँ हम जो फेंकते हैं वो हम तक वापिस लौटकर के आता है। ये सावधानी हमारी है कि हम देखकर के कार्य करें। कैसे ?

एक उदाहरण हैं सबके जीवन में ऐसा घटित होता है, किसी के जीवन में तुरन्त होता है। असल में क्या है ना, कि मुश्किल ये है कि ये कर्मों का फल जो है तुरन्त ही पूरा का पूरा मिल जाता तो लोगों की समझ में आ जाता लेकिन ये थोड़ा बहुत तुरन्त मिलता है अधिक बाद में मिलता है तब तक हम भूल चुकते हैं कि ये कौनसी चीज का फल है, अभी तो हमने कुछ नहीं किया। एक और मुसीबत आ गयी। हम अच्छे-अच्छे चले जा रहे थे और ये मुसीबत आ गई। तुरन्त का तुरन्त मिलकर हिसाब चुकता हो जाता तो भी ठीक था लेकिन ऐसा नहीं है। इसके आफ्टर इफेक्ट्स बहुत होते हैं। दूरगामी परिणाम बहुत होते हैं जो हम एक क्षण में करते हैं। वो कहते हैं ना कि ''तवारीखों के वो मंजर भी हमने देखे हैं जब लम्हों ने खता की और सदियों ने सजा पायी।'' एक क्षण को हम भूल चुके थे और कई-कई दिनों तक हमें उसका पनिशमेन्ट, उसका फल भोगना पड़ा। ऐसी स्थिति हमारे साथ बन जाती है इसलिये बहुत सावधानी की आवश्यकता है। किसी के

जीवन में तो तुरन्त रिटर्न होकर आता है। इसका उदाहरण है एक व्यक्ति .... ये सच्ची घटना है। एक व्यक्ति ने अपने बेटे की शादी में बेटी वाले को इतना अधिक परेशान किया, इतनी तकलीफ पहुँचाई कि जो देखने वाले सज्जन पुरुष थे उनको भी अच्छा नहीं लगा कि भई ये तो ठीक नहीं है। ये कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने लिखा है उनके जीवन का संस्मरण। उन्हीं ने लिखा कि मैंने जाकर के उनसे कहा कि ये आपको शोभा नहीं देता तो मालूम उन्होंने क्या कहा। कहने लगे कि अरे तुम नहीं जानते, गन्ने को निचोड़ो तब ही रस निकलता है। ऐसा उदाहरण दिया। इतना सब करने के बाद भी क्या उदाहरण दे रहे हैं वो गन्ने को निचोड़ो तो ही रस निकलता है। दो-तीन साल के बाद उन्हीं सज्जन की, जिनके बेटे का ब्याह हुआ था, बिटिया का ब्याह हुआ और उनकी बिटिया के ब्याह में बेटे वाले ने उनकी जो दुर्दशा करी सो लोगों से देखी नहीं गयी। हाँ इसी जीवन में और अबकी बार रास्ते में मुँह लटकाये फिर मिल गये वो। भैया उदास क्यों हो, क्या बात हुई? हफ्ते भर में बेटी आ जायेगी। इतनी उदासी की क्या बात है ? बोले यह बात नहीं है। "बात क्या है ?" कहने लगे अब तो लड़की वाले को कोई आदमी ही नहीं समझता। अब कह रहे हैं वो। हमने उनसे कहा तो नहीं, पर हमारे मन में आ गया ठीक तो है आदमी क्यों समझेगा, आपने भी तो पहले उन्हें गन्ने की उपमा दी थी। आपने भी कहाँ आदमी समझा था। आपने भी तो गन्ना ही समझा था, गन्ने को निचोड़ने पर रस निकलता है। भैया ! हमारे साथ ये सारी चीजें हम खुद इकट्ठी करते हैं, जैसा-जैसा हम व्यवहार दूसरे के साथ करते हैं वो हम तक लौटकर के आता है। अगर हम अपने जीवन में दुःख नहीं चाहते हैं तो फिर हम दूसरे के लिये भी दुःख का इन्तजाम करना बन्द कर देवें और अगर अपने जीवन में कोई दुःख आता है, संकट और विपत्ति आती है तो उसके लिये भी दूसरे को दोषी ठहराना, उसकी शिकायत करना अगर हम बन्द कर दें। और तीसरी बात भैया दूसरे के सुख से दुःखी होने की आदत छोड़ देवें और सिर्फ इतना ही विचार करें कि मैंने ही कुछ ऐसा किया होगा जिससे कि मेरे जीवन में ये दुःख, संकट और विपत्ति आये। अगर सही कर्म करने की कुशलता हम सीख लें तो हमारा जीवन जरूर से बहुत ज्यादा अच्छा बनेगा। इसी भावना के साथ कि हम सब अपने जीवन को अच्छा बनायें, बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 9

हम सभी के जीवन में अनुभव करते हैं कि सुख भी हैं और दुःख भी हैं और ये ठीक ऐसा है, जैसे धूप-छाँव हैं, सूर्य उगता भी है और अस्त भी होता है। खेल खेलते हैं तो हार भी होती है, जीत भी होती है। धन्धा करते हैं तो लाभ भी होता है, हानि भी होती है। लेकिन कोई अगर इन दो में से किसी एक को स्थाई मान लेवे तो वही उसके दुःख का कारण है और जो दोनों के बीच, दोनों को स्थाई नहीं मानता है और दोनों के बीच शांति से अपना जीवन जीता है, वह बहुत आसानी से अपने जीवन को ऊँचा उठा लेता है। हम लोगों के साथ मुश्किल यह है कि जब सुख के दिन आते हैं, तब हमारे किसी पूर्व पुण्य के उदय से, साता के उदय से जब थोड़ी सी हमारे जीवन में अनुकूलता आ जाती है तब हम अहंकार कर लेते हैं और ये भूल जाते हैं कि ये क्षण भी थोड़ी ही देर टिकने वाले हैं और इसी तरह तब उसमें हम गाफिल होकर के भी अपना अहित करते हैं और इसी तरह जब हमारे अपने किसी पूर्व संचित असाता कर्म के फलस्वरूप हमारे जीवन में पीड़ा, दुःख और संकट हमें घेर लेते हैं, तब हम उसके चलते इतने बेसुध हो जाते हैं कि अपने उस अनन्त सुख को जो कि हमारा स्वभाव है, विस्मृत कर देते हैं और ये मानकर बैठ जाते हैं कि अब मेरा जीवन व्यर्थ है, जिन्दगी हो गई मैंने कभी सुख का अनुभव नहीं किया। हमेशा मुझे दुःख ही दुःख मिला और जीवन से हम निराश हो जाते हैं। ऐसा व्यवहार तो हम अपने सुख और दुःख दोनों के साथ अभी तक करते आये हैं लेकिन हम उस समय याद रखें कि धूप-छाँव थोड़ी-थोड़ी देर की होती है और उसमें हमें किस तरह अपना रास्ता व्यतीत करना है ये हमारे ऊपर निर्भर करता है। जब हम रास्ते से चलते हैं तो धूप भी आती है, छाँव भी आती है। सुबह की रोशनी में यात्रा करते हैं, शाम होते-होते और रोशनी समाप्त हो जाती है। अँधेरा आ जाता है तो क्या हम अपनी यात्राएँ स्थगित कर देते हैं। नहीं, हम विश्राम करते हैं और सुबह का इंतजार करते हैं कि सुबह फिर सूरज उगेगा। क्या ऐसे ही जब मेरे जीवन में कोई क्षण दुःख के आये, क्या मैं उस समय ऐसा ही मान

करके कि चलो मेरे विश्राम के क्षण हैं, इनमें ज्यादा, ज्यादा संक्लेशित होने से कुछ नहीं होगा, शांत रहने से ये आसानी से निकल जायेंगे। ऐसा विचार करते हैं क्या ? नहीं कर पाते हैं यही इतना और अपने को सीखना है। दो लोग धूप में चले जा रहे हैं और थोड़ी देर जब आगे जाकर दोनों छाया में पहुँचे, तो एक सोच रहा है कि अभी इतनी दूर से धूप में चलकर आये थे, थोड़ी सी छाया मिली, आगे फिर धूप दिख रही है और ऐसा सोच करके छाया में खड़े होकर के भी संक्लेशित हैं। ऐसा भी हम लोगों के साथ है और दूसरा व्यक्ति वो भी छाया में खड़ा है और विचार कर रहा है कि देखो, कितनी बढ़िया तो छाया है, आगे बस थोड़ी सी धूप है उसके बाद तो फिर छाया आ जायेगी। वो भी छाया में खड़ा है और छाया का आनन्द ले रहा है। सुख के क्षणों में इतने गाफिल नहीं होना कि दूसरे के दुःख को न समझ पायें और दुःख के क्षणों में इतने ज्यादा निराश नहीं होना कि फिर जीवन में सुख की आशा ही समाप्त हो जाये। इतना यदि हम सीख लेवें तो ये सुख और दुःख, धूप-छाँव की तरह आयेंगे और निकल जायेंगे। मेरा ज्यादा बिगाड़ नहीं कर पावेंगे। क्या ये, ये टेक्निक हमको सीख लेनी चाहिये। है तो अच्छी पर देर बहुत लगेगी, इसको सीखने में थोड़ा और विचार कर लेवें कि मेरे जीवन में सुख के क्षण कैसे मैं ज्यादा कर सकता हूँ और दुःख के क्षणों को कैसे मैं घटा सकता हूँ। आयेंगे तो दोनों लेकिन उनका ड्यूरेशन मैं किस तरह से मेन्टेन करके रख सकता हूँ और इसके लिये आचार्य भगवंतों ने एक सूत्र दिया है। अगर हमारे जीवन में आज सुख आता है तो उसका कारण हमारे भीतर ही मौजूद है। उसके लिये हमने जो प्रयास (एफोर्ट) किया था वो हमें जरूर याद रखना चाहिये। सुख में इतने गाफिल नहीं हो जाना चाहिये कि मैंने इस सुख के पाने के लिए जो प्रयास (एफोर्ट) किया है वो भूल जाऊँ और दुःख के क्षणों में भी इतने निराश नहीं होना चाहिये कि अपने बारे में ये न सोच सकें कि मैंने ये दुःख आखिर कमाया कहाँ से ? इसका इंतजाम मैंने ही किया होगा। अब मैं आगे सावधानी रखूँ, नहीं तो फिर मुझे लगातार (कन्टीन्यू) इसी दुःख को भोगना पड़ेगा। तब एक सूत्र रखा। असल में, बात तो सिर्फ इतनी है कि दूसरों को सुःख पहुँचाने की सारी चेष्टाएँ अन्ततः अपने को सुख पहुँचाने की हैं और दूसरे के सुख का विचार करना अन्ततः अपने सुखी होने का सीधा-सच्चा सा उपाय है, बात तो इतनी सी है कि मेरे द्वारा दूसरे को सिर्फ सुख ही पहुँचे, कभी दुःख न पहुँचे बस बात इतनी सी है। सोच इतना भी आवश्यक है अब इसको हम कैसे अपने जीवन में एप्लाई करते हैं तो उसके लिये एक सूत्र दे दिया - "भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।"

अगर मेरे जीवन में मैंने साता और सुख का अनुभव किया है तो उसका कारण भी मेरे भीतर है और अगर मुझे इसे और अधिक बढ़ाना है, अपने सुख को विस्तार देना है तो फिर मुझे उन कारणों को अपने जीवन में लाना चाहिये, जिन वजहों से मुझे आज सुख मिला, वे वजह क्या रही होंगी उस पर विचार करें ताकि इनको फिर से जीवन में ला करके आगे के सुख का इन्तजाम किया जा सके। इसलिये जानना बहुत जरूरी है कि आज मुझे जो सुख मिलता है मैं तो ये सोचता हूँ कि मेरे अपने इफर्ट (प्रयास) से मिला है, मेरे अपने वर्तमान के इफर्ट (प्रयास) से मिला है। सुख और दुःख सिर्फ वर्तमान के ही किये गये कर्म से नहीं मिलता हमारे अपने पूर्व के संचित कर्म भी उसके साथ जुड़े हुए है, ये हम पिछले दिनों समझ चुके हैं।

"भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।"

भूत किसे कहते हैं? जो इन्द्रियादि प्राणों से जीता है उसे भूत या प्राणी कहते हैं। भूत का मतलब न 'पास्ट टेन्स' 'न घोस्ट' है, नहीं तो आप भूत के मतलब और कुछ समझें। भूत के मायने है प्राणी जो कि आयु आदि प्राणों से जीता है उस पर अनुकम्पा करना और इतना ही नहीं प्राणी तो सब हैं लेकिन उनमें जो व्रती हैं उनका विशेष ख्याल करना। व्रती दो ही हैं। श्रावक भी हैं और साधुजन भी हैं। इन दोनों के ऊपर अनुकम्पा के मायने क्या है? आचार्यों ने लिखा कि दया से द्रवीभूत होकर दूसरे के ऊपर आये दुःख को अपना मानकर जो भीतर काँप जाता है मन, वो कहलाती है अनुकम्पा और हम तैयार हो जाते हैं ठीक वैसे ही जैसे अपने ऊपर दुःख आने पर उससे बचने के लिये हम तैयार हो जाते हैं। ठीक ऐसे ही दूसरों का दुःख अपना जानकर के उसे उससे बचाने के लिये जो प्रयत्न करते हैं वो है अनुकम्पा। सिर्फ इतने से तो आधा काम चलेगा कि हमारे मन में दूसरे के दुःख दूर करने का भाव आ गया, बहुत अच्छी चीज है। आधा काम तो हो गया लेकिन अब उस दुःख दूर करने का यथासम्भव उपाय और प्रयत्न क्या हो सकता है ? इस पर भी विचार करना और उसको जीवन में एप्लाई करना। हमने पहले अपने जीवन में ऐसा करा होगा तब हमको आज जितनी भी सुख-सुविधा मिल रही है वो उसी के परिणामस्वरूप मिल रही है। ऐसा विचार साथ में करते रहना जब भी साता अपने जीवन में, जब भी सुख महसूस हो तो फौरन याद आ जाये कि मैंने कितना पुरुषार्थ किया होगा पहले, मैंने कितनी प्राणी मात्र के प्रति दया से भरकर के उनकी सहायता करने का भाव किया होगा और आज, आज मैं अपने सुख में गाफिल होकर के चाहे जिसकी क्षति करता हूँ, मेरी अपनी बिल्डिंग बनवाने के लिये अगर चार लोगों की मुझे झोपड़ी मिटानी पड़े तो मैं मिटा देता

हूँ। अरे वाह, मेरे अपने धन पैसे के कमाने के लिये, इकट्ठे करने के लिये अगर मुझे चार लोगों की गर्दन दबानी पड़े तो मैं तैयार हो जाता हूँ। इतना तो दयालू हूँ कि चींटी पर पैर नहीं रखता, लेकिन किसी भी संज्ञी-पंचेन्द्रिय को जीवन से, मेरे सुख की उत्पत्ति के लिये दूसरों को मुझे दुःख में डालना पड़ेगा इसका मैं ध्यान नहीं रखता हूँ। ऐसा विचार आ जाना चाहिये तब कहलायेगी कि वाकई में "भूतव्रत्यनुकम्पादान" ये हमारे भीतर आ जाता है।

गाँधीजी के जीवन की घटना है। जब वो जेल में थे। सत्याग्रह का अवसर था तब उनको जेल हुई थी और उसमें एक अफ्रीकन नीग्रो भी था। पता नहीं कोई पुराना संचित कर्म होगा जिससे कि उस नीग्रो के मन में गाँधी जी के प्रति प्रेम नहीं था, उल्टा द्वेष का भाव था लेकिन गाँधीजी के मन में उसके प्रति कोई द्वेष का भाव नहीं था, प्रेम ही था। उसके प्रति दया और करुणा का भाव था और एक दिन ऐसा हुआ, वैसे तो गाँधीजी को सब कामों में तकलीफ ही देता था। जेल में कहीं उनका भरा हुआ पानी का लोटा लुड़का देगा, कहीं लोटा छुपा देगा, कहीं और दूसरे उपद्रव करेगा। लेकिन चुपचाप रहते थे गाँधीजी। एक दिन मालूम पड़ा कि आज तो वो दिख ही नहीं रहा है, क्या उसकी छुट्टी हो गई ? क्या वो जेल से चला गया। पूछा। बोले - नहीं, वो तो जेल में ही है उसको तो बहुत लम्बी सजा होवेगी। तो फिर आज दिखा नहीं सवेरे से, मेरा कुछ उपद्रव भी नहीं किया, उसने। हाँ वो ढूँढ रहे हैं वो कहाँ चला गया, जो उनके साथ दुर्व्यवहार करता है, उसको ढूँढ रहे हैं। दया तो ऐसी ही चीज है, अपने साथ में भला करने वालों के प्रति तो सबके मन में होती है, किसके मन में नहीं होती है भैया लेकिन प्राणी मात्र के प्रति, जहाँ-जहाँ साँस है, जहाँ-जहाँ धड़कन है, वहाँ सब जगह मेरी करुणा पहुँचनी चाहिये ऐसा हमने पहले किया होगा इसलिये आज जितना सुख मिला है। आज नहीं कर रहे हैं तो आगे के लिये नहीं मिलेगा। अब क्या हुआ कि वो मिल गया। वो तो बीमार था। उसको तो बहुत तेज बुखार था। अब गाँधीजी पट्टी रख रहे हैं। ठण्डी पट्टी, उसका इलाज कर रहे हैं। सारा दिन व्यतीत हो गया, सारी रात कट गई, आँख नहीं लगी और सुबह-सुबह जब उसका बुखार कम हुआ, उसने आँख खोली तो वो दंग रह गया कि ये तो वो ही महाशय हैं जिनको कि मैं इतने दिन से हमेशा तकलीफ देता हूँ। क्या ये सारी रात जागकर मेरी सेवा करते रहे। अब उसके परिणाम बदल गये। कल तक जो दुःख में निमित्त बनता था आज वही एक-एक बात का ध्यान रखने लगा कि गाँधीजी को कोई कष्ट न हो जाये और जब गाँधीजी के सत्याग्रह का, वो जेल का समय पूरा हो गया, बाहर निकले तब उसने कहा कि मैं आपसे एक ही प्रार्थना करता हूँ कि थोड़ी दूर भेजने के लिये मुझे अपने

साथ ले चलो जेल वालों से कहकर के। गाँधीजी के कहने से उस व्यक्ति को गाँधी जी के साथ जहाँ उनको लखनऊ जाना था या इलाहाबाद आना था, वहाँ तक भेजने वो साथ में आया। जब लौटने लगा, ईमानदारी से लौटेगा, जेल से भाग भी सकता था लेकिन अब, अब ऐसा नहीं करेगा और लौटने लगा तो गाँधीजी ने जो घड़ी वे रखे रहते थे वो घड़ी उसको दे दी। कहते हैं जीवन भर मरण के अंतिम क्षण तक वो अपने पास घड़ी गाँधीजी की दी हुई रखे रहा और उसका जीवन ही बदल गया। ऐसा विचार आना चाहिये कि जब-जब मैं किसी दूसरे के दुःख में निमित्त नहीं बनता हूँ और जितनी यथासंभव उसके सुख में निमित्त बनता हूँ तो वास्तव में, मैं अपने ही सुख का इंतजाम करता हूँ।

इसलिये आचार्य भगवंतों ने लिखा कि प्राणी मात्र के प्रति अनुकम्पा, 'दया' नहीं लिखा, दया में तो गुंजाइश है कि आ गये दया का भाव, बस आगे बढ़ गये। नहीं, ठीक वैसा ही दुःख महसूस हो रहा है जैसा दूसरे को हो रहा है इसलिये अब मेरे से सहा नहीं जाता। जैसे अपना दुःख नहीं सहा जाता, ऐसे ही दूसरे का नहीं सहा जा रहा है इसलिये मैं उससे उसे बचाने के लिये निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ। तब तो कहलायेगी अनुकम्पा। हनुमान जी वापिस लौटने लगे जब रामचन्द जी अयोध्या लौट आये और राज्याभिषेक हो गया उनका, गद्दी पर बैठ गये। हनुमान जी भी लौट रहे हैं। सब तो कह रहे हैं, सुग्रीव भी कह रहे हैं कि जब आपको जरूरत लगे तब हमें जरूर याद करना, हम आपके साथ हैं, और सब जाते समय कह रहे हैं। हनुमान जी कुछ भी नहीं कह रहे हैं और जा रहे हैं तो सीता जी ने धीरे से कहा कि आप तो इतने भक्त हैं आप कुछ भी नहीं कह रहे, आप कुछ तो कहो कि कभी जरूरत पड़े, तो क्या कहा था उन्होंने, मैं तो यही चाहता हूँ कि रामचन्द्र जी को मेरी जरूरत कभी ना पड़े। मतलब तुम बचना चाहते हो उनकी सेवा से। नहीं, मैं सेवा से नहीं बचना चाहता। उन पर जब दुःख आयेगा तब न, मेरी जरूरत पड़ेगी। मैं तो चाहता हूँ उन पर दुःख ही नहीं आये इसलिये मेरी जरूरत ही नहीं पड़े। वास्तव में तो अनुकम्पा यही है कि दूसरे को दुःख ही ना हो, मेरी जरूरत ही ना पड़े और अगर किसी को दुःख है तो मैं उसके लिये प्रयत्न करूँ, उससे दुःख से बचाने का और त्यागी व्रती के प्रति तो विशेष रूप से उनके दुःखों से उन्हें बचाने का, उन्हें मोक्ष मार्ग पर लगाये रखने का। वे सच्चे सुख की खोज में निकले हुए हैं अगर हम उनकी सेवा करेंगे तो हम भी सच्चे सुख को पा लेंगे इस भावना के साथ। इसलिये विशेष रूप से त्यागी-व्रतीजनों के प्रति अनुकम्पा का भाव, उन्हें कभी भी दुःख ना पहुँचे इस बात का ध्यान बना रहे। मेरे द्वारा उन्हें दुःख ना पहुँचे। भैया दूसरे को अपन सुख तो पहुँचा नहीं सकते। सुख का उपाय कर सकते हैं। सुख पहुँचे, ना पहुँचे, उसके ऊपर है, फिर भी हमारे मन में भावना ये होनी

चाहिये कि मेरे माध्यम से दुःख ना पहुँचे और फिर उसके बाद कह रहे है ''भूतव्रत्यनुकम्पादान'' दान के बारे में तो अपन बहुत समझ चुके हैं। दूसरे के उपकार के लिये अपनी वस्तु का त्याग कर देना ये कहलाता है दान। काहे के लिये, दूसरे के उपकार के लिये और होता अपना ही उपकार है। देखो अपन तो ये सोचते हैं कि चीजें जोड़-जोड़ के रख लेंगे तो बहुत सुख मिलेगा और यहाँ उल्टी सलाह दे रहे हैं। हम तो अभी तक यही सोच रहे थे कि अपने पास चार चीजें रहें तो अच्छा रहेगा और वे कह रहे हैं कि दूसरे के उपकार के लिये अपनी चार चीजें उसको दे दीं तो आपको सुख मिलेगा। ऐसा ही है तो अपने पास जोड़ के रखने में उतना सुख नहीं है जितना कि दूसरे को दे देने में सुख है। उस सुख का स्वाद जिसने ले लिया है वो जानता है। कंजूस आदमी को उसका स्वाद ही नहीं मालूम वो स्वयं भी उससे कभी सुख नहीं पाता, ध्यान रखना। जिन चीजों को हम दूसरों को दे करके सुख नहीं महसूस कर पाते उन चीजों से हम स्वयं भी सुख नहीं ले पाते। हमारी आसक्ति हमें सुख लेने ही नहीं देती उन चीजों का और अगर हमारे मन में अनासक्ति आ जाये, देने का भाव आ जाये तो वह वस्तु हमारे पास न रहते हुए भी और दूसरे को दे देने के बाद भी हमें सुख पहुँचाती रहती है बताओ आप, हमारे पास रहती तो इतना सुख न पहुँचाती। दूसरे के पास पहुँच जाने पर वह हमें ज्यादा सुख पहुँचाती है।

दिया नहीं और सुख शुरू हो गया लेकिन दूसरे के उपकार और दूसरे की प्रीति प्राप्त करने की भावना होनी चाहिये। अपने अहंकार की पुष्टि के लिये नहीं, ये उसके साथ कण्डीशन है तभी सुख पहुँचेगा नहीं तो नहीं पहुँचेगा। तब तो संक्लेश ही होगा। दे देने के बाद जिस चीज के देने के बाद सुख हो समझना कि सच्चा दान है, वो सुख जरूर उत्पन्न करेगा देने के बाद। संसार का यश-वैभव नहीं चाहिये, सब फीका है उसके सामने, वो जो देने का आनन्द है उसके सामने। और अपन ने अगर आज वर्तमान में कुछ पाया है तो उसका मतलब है हमने दिया होगा इसलिये आज पाया है। जो कुछ भी मिला है हमें और फिर कह रहे हैं कि 'सराग संयम', प्राणियों की रक्षा करना और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना इसका नाम है संयम। इसी से सुख उत्पन्न होता है। हम तो सोचते हैं कि कोई हमारा प्रोटेक्शन करेगा तो हमें सुख होगा। हम चिन्तित नहीं होंगे, हमें दुःख नहीं होगा, लेकिन यहाँ ऐसा कह रहे हैं कि प्राणी मात्र की सुरक्षा करना, उनका संरक्षण करना, उनका घात न हो जायें, ऐसा हमेशा भाव रखना, ऐसी हमेशा क्रिया करना इससे सुख उत्पन्न होगा। हमारे सुख का इंतजाम हम इस तरह कर सकते हैं और अपने मन, वाणी और शरीर पर नियंत्रण रखना क्योंकि ये अनियंत्रित हो जाते हैं तो मेरे दुःख में कारण बनते हैं और अगर

इन पर मेरा नियंत्रण रहे तो यही मेरे सुख में कारण बनने लगते हैं। यही संयम है। सामान्य रूप से तो ये लगता है कि संयम बड़े दुःख का कारण है सब तो छिन जायेगा, कुछ तो रहेगा नहीं, लेकिन वास्तव में, जो सुख है वो प्राप्त हो जायेगा। बाकी चीजें, भले ही कम हो जायें। सो भैया बाकी चीजें कम ज्यादा होती हैं उसका सुख-दुःख नहीं है। जिस व्यक्ति के लिये जितना संतोष है उतना सुख है। देख लो आप, किसी व्यक्ति को अगर बिना शक्कर के दूध पीने की आदत होवे और किसी दिन उसके दूध में शक्कर नहीं डालें तो उसको कोई दुःखी कर सकता है क्या ? या दूसरे के लिये वह अच्छी मिठाई खाते देखकर क्या उसको दुःख हो सकता है ? किसी के घर में जिस व्यक्ति की ये आदत है कि बिना कूलर के रहे उसके घर में कूलर ना हो तो क्या दुःख हो सकता है ? योग का मतलब ध्यान-व्यान नहीं लेना यहाँ पर, और फिर आ गया शांति और शौच जिसके जीवन में, जितनी क्रोधादि कषाओं की निवृत्ति हो गई है वो उतना ज्यादा सुखी है। जो व्यक्ति जिसको क्रोध ही नहीं आता उसको कोई दुःखी ही नहीं कर सकता। वो हमेशा सुखी है, जिसकी जितनी कम कषाय है वो उतना ज्यादा सुखी है। जितना प्रशम भाव रखेंगे उतना ही हम सुखी होंगे और जितना हमारे मन में संक्लेश और द्वेष भाव होगा, द्वेष भाव से दूसरों से हमारी अनबन तो बाद में होती है पहले अपने आप से अनबन हो जाती है, तब तो द्वेष हो पाता है, नहीं तो नहीं हो पाता। अपन कहते हैं कि उनसे हमारी अनबन हो गई, हमारा द्वेष है उनसे लेकिन उनसे अनबन नहीं हुई, पहले भीतर हो गई, पहले भीतर की शांति छिन गई तब फिर बाहर अनबन हुई। हाँ, ऐसा ध्यान रखना। अपन सोचते हैं कि दूसरे का हमने बिगाड़ किया सो दूसरे का बाद में होता है पहले अपना हो जाता है, हमेशा इस बात की सावधानी रखें कि मुझे अपना बिगाड़ नहीं करना है। अगर इतनी भी सावधानी रखें कि मुझे ऐसा करने से मेरा ही बिगाड़ है।

अपने मन की शांति कौन खोना चाहेगा ? अपने मन की सहजता कौन खोना चाहेगा ? लेकिन ये सारी चीजें मेरी शांति और मेरी सहजता को भंग करने वाली चीजें हैं अगर मैं गुस्सा कर लेता हूँ, अगर मैं मायाचारी करता हूँ, मैं अहंकार करता हूँ तो मेरी शांति, मैं अपने सुख को स्वयं अपने हाथ से खोता हूँ। क्या हुआ, कांग्रेस की मीटिंग थी, बैठक थी और किसी रूलिंग को पास करना था और टण्डन सभापति थे और नेहरूजी उपसभापति थे। टण्डन जी को कोई काम था सो बाहर चले गये। नेहरू जी उठकर के सभापति की सीट पर आ गये और जो महावीर त्यागी थे वो आये सो उन्होंने जो रूलिंग एक्ट था वो सामने रखा। बड़ी तेजी पर थी ये बात, इसलिये नेहरूजी भी बहुत तेजी में

थे उन्होंने अपने हाथ में जो पैंसिल लिये थे, उस पैंसिल से महावीर त्यागी की किताब रखी थी उसको नीचे खिसका के गिरा दिया कि जाओ ऐसी 60 किताबें रोज लिख सकता हूँ, नहीं मानता। त्यागी को भी थोड़ी इनसल्ट फील हुई। उन्होंने कहा कि अगर सामने से किताब फेंकी गई है तो इस तरफ से भी बहुत कुछ फेंका जा सकता है। मीटिंग में हल्ला मच गया। सब तरफ से आवाजें आईं, माफी माँगें दोनों जने। उतने में आ गये टण्डन। नेहरूजी अपनी सीट पर, वे अपनी सीट पर। कोई कुछ कहे इसके पहले ही बात तो नेहरूजी को समझ में आ गई, गलती तो मेरी हो गई। टण्डन से कहा कि अभी मेरे और त्यागी के बीच में कुछ आपसी बात हो गई, उसको छोड़ो जो काम की बात हो वो कर लो, क्यों त्यागी ? मेरी बात से सहमत हो। इससे पहले कि कोई कुछ कहे और नेहरूजी उठे। महावीर त्यागी का हाथ पकड़ा और अपनी कार में उनको बिठाया और ये गये वे गये।

एक बार ये समझ में आ जाये कि मेरी मन की शांति को छीनने वाली जो चीजें हैं उनसे मुझे बचते रहना है, मेरे अपने मन की शांति बनाये रखूँगा तो अभी इस जीवन में सुख पाऊँगा और आगे भी मेरे सुख का इंतजाम हो जायेगा। लेकिन क्या करें, मैं अपने मन की शांति को अपने ही कर्मों से और खुद नष्ट करता चला जाता हूँ। जरा-जरा सी बातों में और मन को उद्वेलित करके मैंने अपने मन की शांति खोई। इतना ही नहीं, इस शांति को पाने के लिये मैंने पहले कितना पुरुषार्थ किया होगा जो मुझे आज मिल गई और मैं उसका ऐसे ही दुरुपयोग कर रहा हूँ। जिस सुख को मैंने बहुत मुश्किल से अपने लिये कमाया, उस सुख के क्षणों में अगर हम आगे के सुख का इंतजाम नहीं करते तो हमसे ज्यादा घाटे का सौदा करने वाला और कोई नहीं इस संसार में। और हम सब ऐसे ही घाटे का सौदा करते रहते हैं कि पहले का बहुत कमाया हुआ आज चार दामों में बेच देते हैं। बहुत सावधानी की आवश्यकता है और आखिरी सूत्र की बात है निर्लोभ वृत्ति। शौच के मायने क्या है - 'निर्लोभ वृत्ति', 'शुचिता', 'पवित्रता', निर्लोभ वृत्ति से आती है पवित्रता। जोड़-जोड़ के रखने से नहीं आती है पवित्रता। पवित्रता तो निर्लोभ होने से आती है। जितना हमारे मन में संचय का भाव कम होगा उतना ज्यादा सुख होगा। जितना अपन संचय करते हैं क्या वो संचित वस्तुएँ मुझे सुख दे पाती हैं, बल्कि उन संचित वस्तुओं की सुरक्षा करने की चिंता और मुझे घेर लेती है। दुकानदार के यहाँ जब तक रखी हैं तब तक मुझे सुख देती हैं क्योंकि मुझे मिल नहीं रहीं। हाँ जिस दिन वो दुकानदार के यहाँ से उठकर मेरे यहाँ रखी जायेंगी उस दिन से उसमें से सुख गायब। वो जो दुकानदार के यहाँ दूसरी आ गईं उसमें सुख दिखेगा। ये रोज का अनुभव है। इसमें कोई बहुत नयी बात नहीं कह रहा हूँ, अपने जीवन में रोज का। फिर उस चीज में से सुख नहीं मिलता बल्कि ये चीज हमेशा

बनी रहे, कैसे बनी रहेगी, कोई उठा के न ले जावे, सम्हाल के रखो, इसकी चिन्ता। लाये थे अपने सुख के वास्ते और एक और मुसीबत आ गई। भैया बहुत सीधा सा हिसाब है, जितनी निर्लोभ वृत्ति होगी, जितना चीजों का कम लोभ होगा, जितनी अनासक्ति होगी उतना ही सुख निकलेगा।

एक उदाहरण है बनारसीदास का। उदाहरण तो है ही कि जिनके घर में चोर घुसे थे और पोटली भरकर सामान रख लिया था उठाते नहीं बना सो खुद पंडितजी ने उठवा दिया कि ले जावो, अच्छा हुआ कि इतनी मुश्किल और कम हुई। एक बिल्कुल फकीर किस्म का व्यक्ति था। बिल्कुल सज्जन व बहुत कम उसके पास सामग्री थी और उसके घर में चोर घुस गया असल में, उसके रहने की स्टाइल इतनी बढ़िया, इतना प्रसन्न और सुखी व्यक्ति इसके पास होगा कुछ ना कुछ। घुस गये चोर अब जब चोर घुसे तो उनको कुछ नहीं मिला, बड़े परेशान कि ये तो मामला गड़बड़ हो गया और ये जो सज्जन थे उनकी भी नींद खुल गई। इसने देखा कि कोई घुसा है सो जाकर के चुपचाप उठकर के खिड़की पर बैठ गये और धीरे से कुण्डी भी खोल दी, कहा धीरे से कुछ डरने की बात नहीं है। अब देखो बिना बताये आये हो हमें पहले बता देते कि हम आ रहे हैं तो हम इंतजाम कर लेते। अब तो है ही नहीं कुछ। ऐसा बहुत कठिन है, लेकिन लिखा तो है ऐसा कभी कहीं घटित हुआ होगा ऐसा, इसमें कोई शक नहीं। अब वो चोर भी मुश्किल में है कि ऐसा आदमी नहीं देखा हमने सज्जन, जो यह कह रहा हो कि हमें बताकर आते। तुम यहाँ से खाली हाथ जाओगे इस बात का दुःख मुझे होगा। कुछ ढूँढ करके बताये देता हूँ कि यहाँ कहाँ रखा है। एक बार किसी ने मुझे 10 रुपये का नोट मुड़ा-तुड़ा सा दिया था वो शायद रखा होगा अलमारी में, तुम्हें नहीं मिलेगा। मुझे मालूम है उस कागज के नीचे रखा है और फौरन जाकर के अलमारी खोल करके और निकाल लिया कि ये लो। अब बताइयेगा, खाली हाथ तुम जाओगे तो मुझे दुःख होगा मुझे बिना बताये काहे को आ गये, मैं इंतजाम नहीं कर पाया। आये हो तो ये लेकर जाओ। अब वो चोर क्या कहे, ऐसे साहूकार के पास तो कभी नहीं आया। साहूकार वो जो अपना दे सके और चोर वो तो अपना दे न सके अभी तक मैंने चोरों के यहाँ पर चोरी की थी, आज साहूकार के यहाँ पर आया हूँ जो देने को तैयार है और जाने लगा तो वो सज्जन पुरुष बोले - इतनी ठण्ड में रात में घर जाओगे, कुछ ओढ़कर तो आना था। एक कम्बल है मेरा, इसको ले जाओ। मैं तो इस चार दीवारी के भीतर बैठा हूँ, मुझे उतनी ठण्ड नहीं लगेगी, सहन कर लूँगा। तुम तो बाहर जाओगे, कितनी ठण्ड होगी, ये ले जाओ। सो उसको वो भी उढ़ा दिया, बताओ इतनी निर्लोभ वृत्ति कभी अपने जीवन में जाग्रत हो सकती है क्या ? अपनों के प्रति ही सही

चलो पराये के प्रति नहीं। अपनी तो अपनों के प्रति तक नहीं होती है। अगर बहन राखी बाँधने आवे तो भैया चिंतित है। उसको कम्बल और दस रुपये देकर विदा कर दिया खिड़की पर बैठे वो सज्जन चन्द्रमा की तरफ देख रहे हैं। और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं आज मेरे घर पहली बार तो कोई आया और क्या दे पाया उसे दस रुपये और कम्बल? आज अगर मेरे पास ये इतना सुन्दर चमकीला चन्द्रमा होता तो मैं उसे भी दे देता और वो व्यक्ति वापिस लौटकर आया। उसकी माँ ने कहा कि किसके यहाँ से चुराकर के लाये, पचा नहीं पाओगे इतने निर्लोभी व्यक्ति के, जाओ वापिस लौटा के आओ। तो वो वापिस लौटाने दरवाजे पर खड़ा है और ये जनाब ईश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं। वो तो गदगद् हो गया, चरणों में गिर गया। दूसरे की निर्लोभ वृत्ति दूसरे को भी निर्लोभ बनाती है। हमारी लोभ की प्रवृत्ति दूसरों में भी लोभ जागृत कर देती है। ये ध्यान रखना आज निरन्तर बढ़ता हुआ लोभ हमारे दुःख का कारण है। हमने पहले निर्लोभ रहकर के ये मनुष्य जीवन का सुख पाया होगा और आज इस मनुष्य जीवन में लोभी होकर के और हम स्वयं अपने सुख से वंचित हैं तो भैया अपन ने इस सूत्र से इतनी बातें सीख लीं कि हम अपनी संकुचित और छोटी वृत्ति को हटावें। सब प्राणी मात्र के प्रति हमारे मन में, दया का भाव आवे। हमारे मन में, हमारे जीवन में जो शक्ति व सामग्री हमें प्राप्त हुई है, जो भौतिक सुख हमें प्राप्त हुए हैं उन भौतिक सुखों में सुख नहीं है। उन भौतिक सुखों के त्याग में सुख है। मैंने पहले भौतिक सुख छोड़े होंगे तब मुझे आज ये भौतिक सुख मिले हैं। आज इन भौतिक सुखों में, मैं अगर रच-पच जाऊँगा तो आगे फिर ये भी नहीं मिलेंगे और आध्यात्मिक सुख तो मिलने वाला ही नहीं है। अगर भौतिक सुखों का त्याग कर देते हैं तो मुझे आध्यात्मिक सुख मिलता है और भौतिक सुख तो रूगन की तरह मिल जाते हैं? क्या कहते हैं उसको कि जब हमने धान की खेती की चावल के लिये तो भूसा तो वैसे ही मिल जावेगा। अगर हमने भौतिक सुखों के प्रति निर्लोभ वृत्ति, अपनी जो हमें सुख-सुविधा के साधन मिले हैं जो हमें सामर्थ्य मिली है उसका अगर हम सदुपयोग करें तो हम अपने सुख का इस जीवन में भी और अगले जीवन में भी बहुत अच्छे से इंतजाम कर सकते हैं। इसी भावना के साथ कि हम सब अपने जीवन में उस सच्चे सुख को प्राप्त करें जिससे कि हमारा जीवन अच्छा बने।

आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।

○○○

कर्म कैसे करें?

भाग - 10

एक संसार जिसे हम अपनी खुली आँखों से देखते हैं और जिसे हम अपने ही साथ तर्क व बुद्धि से मैनेज़ करने की कोशिश करते हैं, लेकिन ये जो हमारी खुली आँखों से दिखने वाला संसार है सिर्फ इतनी ही वास्तविकता नहीं है। एक और संसार है जो कि हमारी इन आँखों से नहीं दिखता है।

श्रुत यानी सुनी गई है, परिचित है, अनुभव में भी आई है, ये संसार जो दिखाई पड़ता है इसकी कथा। लेकिन वह जो एक अंतरंग जगत है उसके बारे में ये दोनों आँखें देख नहीं पातीं। और भी संसार में बहुत सी ऐसी चीजें हैं जिनको कि ये दो आँखें नहीं देख पातीं जिनको देखने के लिये हमें कोई तीसरी आँख अपने भीतर पैदा करनी पड़ती है ? वो श्रद्धा, निष्ठा, आस्था, सर्मपण है और विश्वास की आँख है, उस आँख के खुलने के लिये कुछ तो हमारे पास अच्छे कर्म होने चाहिये। तब फिर वो, जो अंतरंग जगत है, वो जो श्रद्धा और विश्वास है उसे हम समझ पाते हैं। हमारे जीवन में हमने पता नहीं ऐसे कौनसे कर्म किये हैं जिससे कि सहसा हमारी श्रद्धा, हमारा विश्वास उस आंतरिक जगत पर नहीं हो पाता है ? ठीक ऐसे ही जैसे कि जीवन भर जिस जगह बैठकर के एक भिखारी भीख माँगता रहा। उसके मर जाने पर लोगों ने देखा कि उसी जगह पर सोने की अशर्फियाँ दबी हुई थीं, वो भिखारी जीवन भर इस बात को नहीं जान सका, उसे अपनी निजी संपदा देखने की आँख नहीं मिल सकी। ऐसे ही हम लोगों के पास अपनी निजी आत्म-संपदा है उसे देख पाने की जो हिय की आँख है, वो हमारी नहीं खुल पाती है। इतना ही नहीं सिकंदर जैसे लोग हुए जिन्होंने मरते समय अपने दोनों हाथ बाहर निकाल करके हमें ये विश्वास दिलाना चाहा कि यहाँ से कोई कुछ हाथों में लेकर नहीं जाता। जो अटेच हो जाता है वो हमारे साथ जाता है। ये सारी चीजें यहीं बाहर पड़ी रह जाती हैं और खाली हाथ लौटने की वेदना लेकर के हम लौटें, इससे पहले क्यों ना हम, अपने आप की पहचान कर लें (जो कि हमारे साथ जाता है)। इस अपने आप की पहचान करने का विश्वास, ऐसी आस्था, हमारे भीतर पता नहीं क्यों पैदा नहीं हो पाती ?

एक साधु रास्ते से गुजरता है और कहता है कि जो सच्चाई का साथ देता है वो मुक्त हो जाता है और मनुष्य नहीं सुन पाता इस बात को और एक पिंजरे में बैठा हुआ जो राजा के घर में लटका हुआ पिंजरा, उसमें बैठा हुआ पक्षी उस बात पर विश्वास कर लेता है कि सचमुच मुझे हमेशा सच का साथ देना चाहिये और होता क्या है ? जब दूसरे राज्य का दूत आकर के राजा से मिलना चाहता है, तो राजा भीतर से समाचार भेजता है कि कह दो कि मैं नहीं हूँ। पर वो पक्षी जिसने अभी थोड़ी देर पहले साधु के वचन सुन लिये थे कि "हमेशा सच्चाई का साथ देना" उसने कहा राजा भीतर है और कहा जा रहा है कि राजा नहीं है और ये बात जैसे ही राजा को मालूम पड़ी कि मेरी बात तो गड़बड़ा गई इस पक्षी की वजह से, तो कहा कि हटाओ इस पक्षी को। इतना ही तो चाहता था वो, पिंजरा खोल दिया गया। पक्षी अब उस साधु की ही तरह गीत गा रहा है, किसी वृक्ष पर बैठकर कि "हमेशा साथ सच्चाई का ही देना"। मैंने तो मुक्त हो के देख लिया। जरा देर के लिये मैंने सच्चाई का साथ दिया था और मैं मुक्त हो गया। लेकिन इस बात पर हम विश्वास नहीं कर पाते। आखिर क्या चीज है ? क्या चीज है जिससे अपनी निजी सम्पदा पर हमारा विश्वास नहीं होता ? क्या चीज है कि हमारे अपने ऊपर हमारा विश्वास नहीं होता ? क्या चीज है कि सच्चाई पर हमारा विश्वास नहीं होता ? और क्या ऐसी चीज है जो कि सपने को सच मानने के लिये मजबूर कर देती है। हाँ, पाने लायक कुछ भी नहीं है और पाने लायक जो है वो मेरे अपने भीतर है।

क्या हुआ था, राजा का राजकुमार बीमार था और वो उसके सिराहने बैठे रहे और झपकी लग गई और तब उन्होंने सपने में अपने बारह बेटे और बहुत बड़ा साम्राज्य देखा। और इतने में राजकुमार मर गया और जीवनसाथी की चीख सुनकर के उनकी आँख खुल गई और आँख खुली तो देखा कि बेटा तो मर चुका है। तब बहुत जोर से हँसे थे, तो लोगों ने यही समझा था कि पागल हो गये लगते हैं दुःख में। लेकिन उनसे पूछने पर कि आप हँसे क्यों ? तब उन्होंने कहा कि आज मुझे मालूम पड़ा कि इस संसार की वास्तविकता ये है कि सिर्फ यहाँ पर बन्द होने पर ही आँख से सपना नहीं दिखता यहाँ तो खुली आँख से भी हम सपने ही देखा करते हैं। मैं उन बारह बच्चों को जो अभी स्वप्न में, जिनको कि मैं बिल्कुल सच मान रहा था, वे मेरे चले गये स्वप्न टूटने पर, उनके लिये रोऊँ या कि जो ये सामने राजकुमार मेरे सामने से मरण को प्राप्त हो गया, इसके लिये रोऊँ। इसलिये मैं हँस रहा हूँ। ये सारी चीजें, ये जो एक हमारा इस संसार को देखने का नजरिया है, इस पर कौन आवरण डालता है, इसे कौन विकृत कर देता है, मेरे ऐसे कौनसे कर्म हैं जो मुझे सच्चे

देव, गुरु, शास्त्र पर श्रद्धा नहीं होने देते ? जो मुझे सात तत्त्वों का श्रद्धान नहीं होने देते ? जो कि मेरे जीवन के लिये हितकारी हैं उन पर मेरा विश्वास क्यों नहीं बनने देते हैं। जहाँ-जहाँ भी आत्मा की, और मेरे कल्याण की चर्चा होती है, वहाँ मेरी रुचि क्यों नहीं जाग्रत होती ? वहाँ मेरा और रुझान क्यों नहीं होता और संसार के प्रपंच में मेरा रुझान क्यों हो जाता है? इन सब बातों पर कई-कई बार मन में विचार तो आता है आखिर ऐसा क्या किया मैंने कि किसी और को तो विश्वास हो जाता है और मेरा विश्वास नहीं जमता। मेरा आत्म-विश्वास इतना कमजोर क्यों है, ऐसा हम हमेशा अपने मन में विचार करते हैं। आचार्य भगवन्तों के चरणों में बैठें तो वे समझाते हैं कि किसी और ने, हमें अविश्वास में डाल दिया हो, हमारी श्रद्धा को खण्डित कर दिया हो या हमारी आस्था को, निष्ठा को नहीं जमने दिया हो, ऐसा नहीं है, हमारे ही अपने कर्म हैं।

भैया कर्मों के बारे में तो ऐसा है कि जैसे कि माँ ने चार लड्डू बनाये हों और थोड़े-थोड़े से दिये तीन लड्डू में से, तो हमने अपना असंतोष व्यक्त कर दिया, लेकिन उन चार लड्डुओं में से एक लड्डू पर किसी सर्प ने आकर के विष गिरा दिया है, अब बताइयेगा कि वो पूरा लड्डू कोई हमें दे दे तो क्या हम खाना पसंद करेंगे, हमें वो तीन में से थोड़ा-थोड़ा ही ठीक है वो चौथा पूरा भी कोई दे दे तो हमें नहीं चाहिये। ज्ञान पर थोड़ा सा आवरण ढक जावें, बाकी तो क्षयोपशम बना रहता है सो थोड़ा बहुत तो जानने में आता है, दर्शन पर थोड़ा सा आवरण पड़ गया है, बाकी थोड़ा तो देखने में अभी भी आ रहा है। मेरे दान, लाभ, भोग-उपभोग की सामग्री में थोड़ा बहुत आवरण पड़ा हुआ है लेकिन थोड़ा सा तो मुझे अभी प्राप्त हुआ है, ये सारी तीनों चीजें थोड़ी-थोड़ी तो प्राप्त हुई हैं, लेकिन एक सबसे ज्यादा खतरनाक है, मेरा अपना मोह जो कि मेरे पूरे जीवन को विषाक्त और विकृत कर देता है। मिलता पूरा का पूरा है, लेकिन वो पूरा का पूरा मेरे जीवन को विषाक्त कर देता है। वो मेरी श्रद्धा को विषाक्त कर देता है, वो मेरे आचरण को भी बिगाड़ देता है, दोनों प्रकार का है। मेरी श्रद्धा को विकृत करने वाला, मेरी श्रद्धा को ठीक जगह नहीं जमने देने वाला, बल्कि मेरी श्रद्धा को जहाँ मेरा अहित है, उस पर मेरे विश्वास को जमा देने वाला और जहाँ मेरा हित होता है, वहाँ से मुझे रुचि ही जाग्रत होने नहीं देता, ऐसे भी एक मोहनीय कर्म है। और एक मोह की वैरायटी ये है कि वो मेरे अपने आचरण को हमेशा बिगाड़ती रहती है, अगर हमारा सेल्फ-कोन्फीडेन्स नहीं है इसके मायने है हमने कोई ऐसा दुष्कर्म किया है, जिससे कि हमारे भीतर श्रद्धा की रोशनी जाग्रत नहीं हो पाती और वो कौनसा कर्म है, वो कौनसे परिणामों से मेरे भीतर संचित होता है ये जान लूँ ताकि आगे उस कर्म को ना करूँ जिससे कि मेरी श्रद्धा मजबूत हो सके, जिससे

कि मेरा विश्वास जम सके, जिससे कि मैं अपने आत्म-विश्वास को बढ़ा करके अपना उद्धार कर सकूँ, अपना कल्याण कर सकूँ। "केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य"।

मेरी दृष्टि को, मेरे नजरिये को, प्रभावित करने वाला, मेरे नजरिये को बिल्कुल विकृत कर देने वाला, दर्शन मोह है और सारा खेल इस संसार में दृष्टि का ही है, जैसा देखना चाहें वैसा दिखाई पड़ता है, जैसा है वैसा देखने के लिये तो आँख चाहिये, वर्ना इन दो आँखों से तो जैसा हम देखना चाहते हैं वैसा दिखता है, एक्सजेटली कैसा है, वैसा देखने के लिये तो बहुत श्रद्धा की और विवेक की आँख चाहिये, जब हमारा मन राग-द्वेष से युक्त होता है, तब चीजें भली और बुरी जान पड़ती है। चीजें कैसी हैं ये नहीं जान पड़ता। चीजें भली हैं या कि बुरी। आकाश नीला है लेकिन कभी हँसता मालूम पड़ता है, कभी रोता मालूम पड़ता है, जब हमारा जी अच्छा नहीं होता तो एक-एक चीज ऐसी मालूम पड़ती है जैसे कि सब उदास हों और जब हमारा मन प्रफुल्लित होता है तो उदास व्यक्ति भी हँसता हुआ जैसा जान पड़ता है। ये सारा का सारा खेल हमारी अपनी दृष्टि का है और इसी दृष्टि को विकृत कर देने वाला मेरा कोई कर्म मेरे भीतर बैठा हुआ है। हम अपने आपको नहीं देख पाते हैं और बाकी सारी दुनिया को देख पाते हैं। ये क्या चीज है जो कि हमें खुद अपना परिचय नहीं होने देती ? ऐसा कौनसा कर्म है ? यही है जो दृष्टि को विकृत बनाने वाला मोह है, जो हमें चीजों को राग-द्वेष से युक्त होकर के देखने को मजबूर करता है, जबकि हमें वीतराग भाव से चीजों को देखना चाहिए और वीतराग भाव से ही देखने पर चीजें ठीक दिखाई पड़ती हैं। राग-द्वेष से देखने पर तो चीजें ठीक दिखाई नहीं पड़तीं। लेकिन क्या करें हमारे अपने कर्म हमें ऐसा करने के लिये प्रेरित करते हैं और सब ठीक होने के बाद भी मेरे भीतर का जो मोह है वो मुझे इन सब चीजों के बारे में ऐसा उलट-पुलट सोचने के लिये मजबूर कर देता है।

"केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य"

कैसे परिणाम होते हैं, जबकि ये अश्रद्धान मेरे भीतर जागृत होता है। असल में जो महान आत्माएँ हैं, महापुरुष हैं उनमें जो दोष नहीं है, उन दोषों का हम आविष्कार कर लेते हैं, उन दोषों की उनमें कल्पना करने लगते हैं, इसे कहते हैं "अवर्णवाद"। और ये जो अवर्णवाद है, जिसमें दोष नहीं है उसमें उन दोषों को देखना, उन दोषों की कल्पना करना ये मेरी दृष्टि को दूषित करते हैं। हाँ किसी व्यक्ति में और वो भी महापुरुष में वे दोष नहीं हैं और हमने उन दोषों का उसमें अगर आविष्कार कर लिया है अगर उसकी कल्पना भी कर ली है मेरी दृष्टि दूषित होने से अब मुझे कभी भी वास्तविकता मालूम नहीं पड़ेगी।

मैं अपनी उस दृष्टि की निर्मलता को कभी हासिल नहीं कर पाऊँगा और संसार में जिसकी दृष्टि निर्मल है, वो ही अपने जीवन को ऊँचा उठा सकता है। दृष्टि की निर्मलता और श्रद्धान से ही सारा संसार चलता है। एक कदम भी अगर हम अविश्वासपूर्वक रखते हैं तो डगमगा जाते हैं, संसार भी विश्वास से ही चलता है और संसार से पार होने का रास्ता भी विश्वास और श्रद्धा से ही चलता है, ऐसे इस विश्वास को हम कैसे कायम रख सके और ऐसी श्रद्धा को बिगाड़ने वाले कर्मों से हम कैसे बचें, बस ये हमें ध्यान रखना है। 'केवली' किसे कहते हैं जिनको अपने चार घातिया कर्मों के नाश करने पर अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई है, जो संसार के दोषों से मुक्त हो गये हैं अठारह ही दोष हैं, हम सबमें। उन अठारह दोषों से जो रहित हैं। वे अरिहंत केवली भगवान हैं उन्हें भी भूख लगती होगी ? उन्हें भी प्यास लगती होगी ? उन्हें भी रोग-शोक होते होंगे ? वे भी भोजन करते होंगे ? ऐसी हम उनके भीतर कल्पना कर लेते हैं, ये जो हमारी केवली भगवान के बारे में मिथ्या कल्पना है, दोष पूर्ण कल्पना है वो हमारी अपनी दृष्टि को विकृत करती है। जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कही गयी जिनवाणी जिसे हम 'श्रुत' कहते हैं उसमें ऐसी कल्पना कर लेते हैं कि कहाँ लिखी है ग्रन्थों में कि रात्रि भोजन नहीं करना चाहिये। कई जगह लिखा हुआ है कि रात में खा सकते हैं। कौन कहता है, कहाँ लिखा हुआ है कि आलू नहीं खाना चाहिये ? ग्रन्थों में लिखा है कि आलू खाना चाहिये, इतना ही नहीं मांस और मदिरा का सेवन भी ग्रन्थों के द्वारा सम्मत है, ऐसा मिथ्या दोष जब हम उन पर लगा देते हैं, जब हम गुरुजनों की और तीर्थंकरों की वाणी पर ऐसा दोषारोपण कर देते हैं कि उन्होंने तो इन सब चीजों को सही (वेलिड) माना है, तब मानियेगा कि ये हमारी दृष्टि को विकृत करता है। हमारे आत्म-विश्वास को धीरे-धीरे हटाता है। हमने तो अपनी विषय कषाओं के पोषण के लिये उन सब चीजों में भी तब्दीली कर दी और अपने मन मुताबिक उन चीजों में वे चीजें शामिल कर दीं, ऐसे श्रुत का अवर्णवाद मेरी दृष्टि को विकृत करता है। बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। मैंने स्क्रिप्ट में मिक्सअप करना अपनी दृष्टि के अनुरूप अपने राग-द्वेष से प्रेरित होकर के, वो हमारी ही दृष्टि को विकृत करेगा। दूसरे का तो बिगाड़ होगा ही, अपना खुद का भी बिगाड़ होगा। इसलिये कभी भी ऐसा प्ररूपण नहीं करना। ''एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त। रागी-कुमतिन-कृत श्रुतभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास।''

ऐसा प्ररूपण नहीं करना जिससे कि विषय-कषायों का पोषण हो और वो भी धर्म के नाम पर। जिससे वैराग्य हो, जिससे कि संसार से पार होने का रास्ता मिले वो ही करना क्योंकि हमारे कल्याण करने वाले गुरुजनों और तीर्थंकरों ने यही कहा है। वे कभी हमें

संसार में भटकाने वाली चीजों में लगने के लिये प्रेरित नहीं करेंगे। हमारी अपनी लोलुपता, हमारा अपना स्वार्थ उनके माध्यम से हम अपनी बात को कह देते हैं, इससे क्या होगा ? कल के दिन हमें फिर निर्मल दृष्टि नहीं मिलेगी, निर्मल ज्ञान नहीं मिलेगा। हमारी दृष्टि हमेशा विकृत ही बनी रहेगी क्योंकि हमने जो निर्मल चरित्र था उसमें दूषण लगा दिया, जो निर्मल वाणी थी भगवान की, उसमें हमने दूषण लगा दिया। अब कभी हमें सच्ची वाणी का साथ नहीं मिलेगा। बहुत सावधानी की आवश्यकता है। संघ किसे कहते हैं, मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ है। संघ समूह है, सज्जनों का समूह ही संघ है, उन सज्जनों का जो कि अपने आत्म-कल्याण में लगे हुए हैं। वास्तव में, जो सज्जन अपने आत्म-कल्याण में लगे हुए हैं उनकी बात कह रहा हूँ। अकेला वेष धारण कर लेने से कोई सज्जन नहीं होता, न कोई साधु होता है। जो अंतरंग में साधुता को अपना चुका है उसकी उस साधुता को ना देखकर के यह कहना कि अरे इनके पास तो खाने-पीने को नहीं है, शरीर पर कपड़ा लत्ता नहीं है जो संसार में दुःखी दिखाई पड़ रहे हैं आगे कोई क्या सुख मिलेगा ? ऐसा मिथ्या आरोपण अपने मन में कल्पना कर लेना इससे क्या होगा ? इससे हमारी ही दृष्टि विकृत होगी।

जो दोषी हैं उसके दोष देखना तक वर्ज है और जो निर्दोष हैं उसमें दोषों का आरोपण कर देना वो तो फिर अपने जीवन को नष्ट करने का उपाय ही है। वो जो दोषी हैं वो तो स्वयं अपने दोषों से नष्ट हो रहा है लेकिन हम जो निर्दोष हैं उसमें दोषों की कल्पना करके अपने पतन का उपाय स्वयं कर लेते हैं, बहुत सावधान रहना चाहिये। आज पाँच मिनट और लेऊँगा। विलम्ब तो हुआ मेरे जिम्मे सवा नौ बजे आई है बात। अभी 20 मिनट हुए हैं, इसलिये पाँच मिनट और लूँगा, बस। तो केवली, श्रुत और संघ तीनों में दोष कैसे लगा देते हैं हम और कैसे अपनी दृष्टि को विकृत कर लेते हैं और फिर संघ के बाद धर्म और देव ये दो और बचे हैं, धर्म कौनसी चीज है ? धर्म के मायने है अहिंसा, वीतरागता। धर्म तो सूरज की रोशनी की तरह है जितना हम खिड़की खोलेंगे, दरवाजा खोलेंगे, हमारे तक भीतर आयेगा। वो किसी की बपौती नहीं है, अहिंसा किसी की बपौती है क्या ? धर्म इतना व्यापक और इतना विशाल है, लेकिन ये कह देना कि जितने लोग इस अहिंसा धर्म का पालन करते हैं, इस वीतरागता का पालन करते हैं वे सब मरकर के खोटी जगह जाते हैं। बताइये, धर्मात्मा जो धर्म का पालन करते हैं उनकी बड़ी दुर्गति होती है। अब बताओ और अहिंसा में धर्म नहीं है धर्म तो हिंसा में है ऐसा मान लेना। हिंसा को ही धर्म मान लेना और अहिंसा धर्म से विमुख हो जाना या कि अहिंसा धर्म का पालन करने वाले को ये कहना कि वे खोटी गति में जायेंगे, असुर होवेंगे। ये क्या है ? ये हमारी अपनी, अगर

हमारी श्रद्धा नहीं जम पा रही है। हमें दृष्टि की निर्मलता जिसको सम्यग्दर्शन कहते हैं, जिससे कि संसार से पार हुआ जाता है वो चीज नहीं मिलती। मेरे अपने खोटे कर्म अभी मुझे देखना चाहिये। आज अगर वर्तमान में जो हम कहते हैं कि जरा आत्म-विश्वास बढ़ाने की कोई प्रक्रिया तो बताओ, किताबें निकल गई हैं। किताबें बिक रही हैं इस बात के लिये कि आप अपने फेथ को, आप अपने पोजिटिव ऐटीट्यूड को कैसे मेन्टेन करें, अपने नजरिये को कैसे बदलें और अपना आत्मविश्वास कैसे बढ़ायें क्योंकि सक्सेस के लिये तो पहले नम्बर जरूरी है कि आपको आत्मविश्वास होना चाहिये और वह आत्मविश्वास क्या आत्मा में रुचि क्यों कम हो गई ? उसके लिये मैंने कौनसे खोटे कर्म किये थे, इस पर विचार करना चाहिये। मैंने हिंसा को धर्म मान लिया होगा, मैंने अहिंसा का पालन करने वालों की दुर्गति हो जावे, ऐसा विचार किया होगा इसलिये आज मेरा अपना विश्वास मेरे ही ऊपर नहीं है। और देव किसे कहते हैं? जिनेन्द्र भगवान को देव कहते हैं, लेकिन स्वर्ग के देव भी देव कहलाते हैं, जिनेन्द्र भगवान के बारे में, अरिहंत भगवान के बारे में, वीतरागी भगवान के बारे में, तो दोषों की कल्पना करनी ही नहीं चाहिये, यहाँ तक कि जो स्वर्ग में रहते हैं देव उनके बारे में भी मिथ्या कल्पना नहीं करना चाहिये। क्या कल्पना करते हैं कि ये जो देवी-देवता हैं ये तो मांस खाते हैं, शराब पीते हैं, सुरापान करते हैं और देवांगनाओं का जो निरन्तर भोग करते हैं, उनको चाहिये सुरा और सुन्दरी। ऐसा कह देते हैं हम ऐसी कल्पना कर लेते हैं उनमें। ध्यान रखना वे अत्यन्त सुन्दर होते हैं, मंद कषायी होते हैं, परिग्रह धीरे-धीरे उनका कम होता जाता है।

"गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः"

उनमें से अधिकांश तो सम्यग्दृष्टि होते हैं और उन पर हम ऐसा दोष लगा दें कि वे सुरापान करते हैं, मांस का भक्षण, भैया उनके तो मानस आहार होता है, कंठ में से अमृत झर जाता है, बस इतना ही है। लेकिन ऐसी मिथ्या धारणाएँ हम बना लेते हैं। ये मिथ्या धारणाएँ हमारे जीवन को, हमारी दृष्टि को दूषित करती हैं। ये तो ठीक ऐसा है, दृष्टि की निर्मलता और दृष्टि की विकृति तो ऐसी है भैया अपन को जो चीज अपने राग-द्वेष से रुचि जावें, उसी को अपन सही मानते हैं और जो अपने को नहीं रुचती, सो अपन सब उसको मिथ्या करार देते हैं। मुश्किल तो यही है जैसे कि हमने आपको उदाहरण दिया था कि बिल्ली महारानी सेठजी के घर में पली थी और एक बार विदेश यात्रा पर गयी और फिर बाद में लौटी तो उनका बड़ा स्वागत हुआ कि विदेश से लौटी है, उनकी अपनी सहेलियाँ उनसे मिलीं और कहा कि कोई संस्मरण सुनाओ विदेश का। तुमने तो वहाँ पर जो

महारानी हैं उनको भी देखा होगा। सुनते हैं कि उनके मुकुट में तो कोहिनूर हीरा लगा हुआ है, कितना सुन्दर होगा वहाँ का वर्णन, तो करो। तो वो कहती है - बिल्ली अन्य सहेलियों से कि सुनो ये सब वाहियात बातें हैं। क्या रखा है इसमें ? वहाँ पर चूहे बहुत मोटे-मोटे हैं, बिल्ली की आँख से तो इतना ही दिखेगा। बिल्ली की आँख कोहिनूर नहीं जानती, बिल्ली की आँख और कुछ नहीं देखती, उसको तो चूहे दिखते हैं। हमारी भी आँख के साथ यही मुश्किल है कि जैसा हम संसार को देखना चाहते हैं जो हमारी आसक्ति है वही हम बाहर भी देख लेते हैं। भैया इस आँख को जरा सा दुरुस्त करने की बात है। मेरे अपने कर्म जो मैंने अज्ञानतापूर्वक कर लिये हैं जिससे कि मेरी आँख पर पर्दा पड़ गया है, मेरी आँख से मुझे ठीक-ठीक नहीं दिखाई पड़ता, मेरी आंख में विकृति आ गयी है, सो इस वाली आँख का तो डॉक्टर से इलाज हो सकता है, लेकिन वो जो हृदय की आँख वो जो भीतर की आँख है, उसका इलाज भी हमें करना पड़ेगा और उसके इलाज के लिये आचार्य भगवंतों ने सूत्र दे दिया कि कभी केवली भगवान के बारे में, कभी जिनवाणी के बारे में, कभी सज्जन पुरुषों व साधुजनों के बारे में, कभी धर्म के बारे में और कभी सामान्य स्वर्ग के देवों के बारे में भी, जो चीजें उनमें नहीं हैं उनकी कल्पना मत करना, उन दोषों को उनमें, जो निर्दोष हैं, वो मत देखना। अगर ऐसी दृष्टि भी हमारे अन्दर आ जावे तब हमारा जीवन बहुत ऊँचा उठ सकता है। कल और आपसे बात करूँगा इसी विषय पर। इसी भावना के साथ की अपन प्रेमपूर्वक और सारी चीजें एक-दूसरे से मिलजुल करके और अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिये करेंगे। अपनी दृष्टि को पोजिटिव करेंगे। अपनी दृष्टि को निर्मल रखेंगे ताकि हमारा जीवन आसान हो। इसी भावना के साथ .....

''आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय''

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 11

हम सभी के जीवन में जो कर्म हम करते हैं, उनका फल भी हमें चखना पड़ता है। बुरे कर्मों का फल बुरा होता है और भले कर्मों का फल भी हमें अच्छा या भला मिलता है। ये एक बहुत कॉमन सी चीज है। लेकिन नियम सिर्फ इतना ही नहीं है, नियम इससे भी ज्यादा है। जैसे अगर हवाएँ किसी बगीचे के ऊपर से गुजरती हैं तो वे हवाएँ सुगन्ध से भर जाती हैं और अगर वे ही हवाएँ किसी श्मशान में सड़ने वाले शवों के ऊपर से गुजरती हैं तो हवाएँ दुर्गन्ध से भर जाती हैं। ठीक इसी तरह हम किसी को अपने जीवन में उसके प्रति अच्छा करें, तब भी संभव है कि वहाँ से रिटर्न अच्छा न मिले और कभी-कभी किसी के प्रति हम अच्छा न करें फिर भी वहाँ से रिटर्न अच्छा मिल सकता है। हमारे प्रेम की हवाएँ सामने वाले की घृणा से टकराकर अगर दुर्गन्ध से युक्त हो जाती हैं तो इसमें कोई ज्यादा आश्चर्यचकित होने की बात नहीं है। ये हमें देखना पड़ेगा। ये निर्णय लेने से पहले हमें ये आब्जर्व करना पड़ेगा कि हमने जो कुछ भी कर्म किया है वो किस स्थिति में, किस परिस्थिति में किया गया है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार उसका रिटर्न वैसा का वैसा हमें मिले ऐसा जरूरी नहीं है, बदलकर के भी मिल सकता है तब चकित होने की आवश्यकता नहीं है।

अगर हम एक गेंद जोर से फेंकते हैं और सामने दीवार है तो गेंद हमारे तक ज्यों की त्यों वापस लौटकर के आती है। वही गेंद हम जोर से फेंकते हैं और सामने अगर रेत का टीला है तो उसमें घँस कर रह जाती है। और वही गेंद जब हम फेंकते हैं और सामने अगर कीचड़ भरा पड़ा है तो हमारे ऊपर कीचड़ के छींटे भी लेकर आती है। हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा कि हमने किसके प्रति कैसा व्यवहार किया है, सामने वाले का राग-द्वेष भी हमारे किये गये कर्म से प्रभावित होकर के हमें भी वैसा ही फल पाने के लिये बाध्य कर देता है। इसलिये कर्म करने की जो कुशलता है वो हमें बनाकर के रख लेनी चाहिये। भले और बुरे दोनों प्रकार के संस्कार हमारे जीवन में हैं। ये कौन डालता है संस्कार हमारे

भीतर? कभी-कभी चाहते हुए भी हमारा मन अच्छा करने का सोचते हुए भी अच्छा क्यों नहीं कर पाता और कभी-कभी हम दूसरे का बुरा सोचते हैं, फिर भी हम दूसरे का बुरा नहीं कर पाते। आखिर बात क्या है ? कभी-कभी हम सोचते हैं कि हम अपने जीवन को व्रत, नियम और संयम से अनुशासित करें, लेकिन नहीं कर पाते। कभी-कभी हम सोचते हैं कि हमारी अपनी दृष्टि को हम निर्मल बनायें लेकिन हमारी दृष्टि की विकृति जा नहीं पाती है।

कोई तो है जो, जो इन सबमें हमें बाधा डालता है। जो हमें थोड़े भी व्रतों को ना होने दे, वो भी एक तरह की कषाय है और जो हमें पूर्ण रूप से महाव्रत न होने दे, वो भी एक कषाय है। वो भी हमारे अपने परिणामों की कलुषता है। कषाय और कोई चीज नहीं है, कषाय हमारे परिणामों की कलुषता है। अब उस कषाय को या कि उस मन की कलुषता को हम समझें, तो सम्भव है कि हम वर्तमान में कई ऐसे कर्म करें जिससे कि हमारा जीवन ऊँचा उठे, अच्छा बने। रेत का एक कण भी अगर खाने की चीजों में मिल जावे, तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है। अगर दुर्गन्ध का एक कण भी वातावरण में आ जाये, तो सारे वातावरण को विषाक्त और दुर्गन्धमय कर देता है। यही स्थिति हमारे अपने परिणामों की कलुषता या कषाय की है।

हमारे भीतर द्वेष और घृणा के जो भाव हैं हमारे अनचाहे, हमारे संस्कारवश, जो आते चले जाते हैं, वे ठीक ऐसा ही वातावरण को दुर्गन्धित करते होंगे जैसे कि हवा में एक दुर्गन्ध का कण आ जावें तो सारे वातावरण को विषाक्त कर देता है या कि खाने में एक रेत का कण आ जावे तो खाने के मजे को किरकिरा कर देता है। नीम तो कड़वी ही होती है भैया, लेकिन ध्यान रखना कि नीम का बीज भी कड़वा होता है। ये जो भी हमारे अन्दर अशुभ परिणाम होते हैं वे तो अशुभ हैं ही, लेकिन उन अशुभ परिणामों का जो बीज हमारे भीतर, जो कषायें पड़ी हुई हैं वे भी ठीक ऐसी ही हैं। अगर हम किसी से गाली सुनना पसन्द नहीं करते तो हमारा फर्ज है कि हम भी अब गाली देना बन्द करें। अगर हम किसी से अपने जीवन में दुःख नहीं पाना चाहते हैं तो हमारा फर्ज है कि हम भी दूसरे को दुःख देना बन्द करें। और आचार्य भगवन्त इसी स्टाइल में यह लिखते हैं कि यदि हम आगे कर्म नहीं बाँधना चाहते हैं तो हम कषाय करना बन्द कर देवें। जिन्हें कर्म न बाँधना हो वे कषाय न करें। जो दुःख नहीं चाहते वे दूसरे को दुःख देना बन्द करें। ठीक इसी तरह जो अपने जीवन में कर्मों का बंधन नहीं चाहते, जो संसार से मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिए आचार्य भगवन्तों ने एक ही बात लिखी कि वे कषाय ना करें।

कषाय की तासीर है कि वो हमें अपने आपे में नहीं रहने देती, चाहे वो कैसी भी कषाय हो, क्रोध के रूप में हमारे पास आयी हो, या अपना रूप बदलकर के। ये कषायें इन्टरचेन्जेबल होती हैं और इन्टरकनेक्टेड तो होती ही हैं। एक जगह से हिलाते हैं सब प्रभावित हो जाता है और इतना ही नहीं हम बहुत जल्दी इनको एक-दूसरे में इन्टरचेंज कर लेते हैं।

ये हमें किसी भी रूप में चाहे क्रोध के रूप में आयें, चाहे अहंकार के रूप में आयें, चाहे छल-कपट करने के रूप में आयें, चाहे किसी चीज के प्रति हमें आसक्त कर लोभ के रूप में आयें, चाहे किसी भी रूप में आयें, हम अपने आपे में नहीं रह पाते। सामान्य रूप से भी देखने में आता है कि जब किसी को गुस्सा आती है, तब अपन कहते हैं भैया अभी बात मत करो, वो आपे में नहीं हैं। और जब हम अपने आपसे गाफिल हो जाते हैं, असावधान हो जाते हैं यह सबसे पहला काम है, किसी को अगर डिफीट करना हो तो उसकी असावधानी के समय पर सबसे आसानी से उसको डिफीट किया जा सकता है।

और ये कषायें यही काम करती हैं। हमें केयरलेस कर देती हैं। जरा सा किसी ने हमारे मन का काम नहीं किया या जरा सा हमारे मन की नहीं कही और ये भीतर बैठी रहती हैं, धीरे से हमें धक्का देती हैं कि देखा। अपन भी कहते हैं कि हाँ बात तो ठीक है। ये धीरे से हमारे भीतर धक्का देती हैं और फिर हम तैयारी कर लेते हैं पूरी। क्यों ? वे हमारे उस सॉफ्ट कार्नर को जानती हैं ये हमारी कषायें, कि ये कमजोर कोना है, और वहाँ हम जैसे ही इससे प्रभावित होते हैं हम अपने आपे में नहीं रहते और हम असावधान हो जाते हैं, फिर दूसरी चीज और है इनकी, दूसरी तासीर है, पहले नंबर तो ये हमें असावधान करती हैं। जैसे बच्चे लोग जो हैं, जब आपस में खेलते हैं तब पहले दूसरे को थोड़ा सा ''वो देखो, वो देखो'' और फिर गिरा देंगे उसको। ठीक ऐसा ही है इनका काम। और इतना ही नहीं असावधान करने के बाद ये ऐसा अहसास कराती हैं कि तुम अगर हमें करोगे, ... क्रोध कहता है कि तुम अगर क्रोध करोगे तो बड़ा अच्छा लगेगा। बड़ी शान्ति मिलेगी। हम भी इन पर भरोसा कर लेते हैं। जैसे कि जब किसी को वो खुजली हो जाती है ना कोई, तो उसको लगता है कि इसको जरा सा रब कर दें, जरा जोर से इसको रगड़ दें तो जरा शान्ति मिल जायेगी, और थोड़ा रगड़ते हैं तो शान्ति सी लगती तो है लेकिन और बढ़ती चली जाती है वेदना और जलन बढ़ती चली जाती है। ठीक ऐसे ही इनकी तासीर है। जरा सा अगर किसी ने एक बात कही है, भीतर की कषाय कहती है 'तुम कमजोर' न हो, सुन लई, वह एक कहे, तुम फौरन दो कहो जब जानें कि हो तुम ताकतवर हो। वे हमें प्रेरणा

देती हैं हम असावधान हो जाते हैं जैसे ही दूसरे की बात को जो हमारे मन की नहीं है, हम उसको महत्व देते हैं। कषायें चाहती ही यही हैं कि हम महत्व दें। और हमने जैसे ही महत्व दिया, हम अपने आपे से बाहर हुये, असावधान हुये और बस इनकी तासीर है कि ये धीरे-धीरे हमें ये डायरेक्शन देती हैं कि तुम हमें करोगे तो सुख मिलेगा और हम उस लालच में कि शायद खुजली को खुजाने से आराम मिलेगा, अपनी तकलीफ को भी और ज्यादा बढ़ा लेते हैं। जरा सी कषायें शुरू-शुरू में ये सोचकर के कि मेरा वर्चस्व हो जायेगा, कर लेते हैं और फिर बाद में तो हम अपने वश में नहीं रहते और ये बढ़ती चली जाती हैं।

आचार्य भगवन्त इस बात को बहुत अच्छे से जानते थे और इसलिये एक सूत्र लिख दिया - ''कषायोदयात् तीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य''।

जब भी अपने भीतर की भलाई को विकृत होते देखो तो समझ जाना कि मैंने कुछ ऐसा संस्कार भीतर अपने कर्मों से डाल दिया है जिससे कि आज मैं चाहते हुये भी भला नहीं कर पा रहा हूँ। मेरी अपनी पुरानी मन की कलुषता मुझे आज भला करने से रोकती है। जब-जब भी मेरी अन्तर-आत्मा मुझे भला करने की आवाज देती है, मेरी कषायें बीच में आकर के कहती हैं कि क्या रखा हुआ है इसमें, कुछ नहीं होने वाला इससे भलाई बुराई से। संसार में बहुत लोग भलाई करते हैं, क्या मिलता है। उनको कुछ नहीं मिलता ऐसी सलाह हमारी बुद्धि देती है वो किससे प्रेरित है वो हमारी कषाय या कि हमारे मन की कलुषता से प्रेरित है। वो संस्कार इतना प्रबल है भैया ! इस संस्कार को नहीं डालना हो आगे से, न करें ..... क्योंकि इस संस्कार के दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं। हम अगर आज भला नहीं कर पा रहे हैं तो उसके पीछे कारण है। हम अगर व्रत, नियम लेकर के अपने जीवन को नियन्त्रित नहीं कर पा रहे हैं। आत्मानुशासित नहीं कर पा रहे हैं, तो उसका कोई कारण है और वो कारण है मैंने पहले ऐसा संक्लेश परिणाम किया होगा। कषायोदयात् परिणामः। कषायों के उदय में जब हम परिणामों को तीव्र बनाते हैं, हमारा अपना एफर्ट है, तीव्र बनाना कि नहीं बनाना। हम चाहें तो उनको मन्द भी बना सकते हैं, उनकी दिशा भी बदल सकते हैं। कषायों की तीव्रता क्या कहलाती है, उसके लिये भी आचार्यों ने लिख दिया कि कोई ऐसा ना समझे कि कषायों की तीव्रता मतलब उछल-कूद शुरू कर दी हो, और मुक्का मारना शुरू कर दिया हो। नहीं, शान्त बने, कोने में बैठा हुआ भी, उसकी कषायें भी बड़ी तीव्र हो सकती हैं। बिल्कुल भैया सयाने बने बैठे हुये हैं बिल्कुल ऐसे जान पड़ रहे कि इनसे ज्यादा सज्जन कोई नहीं है, तब भी कषायों की

तीव्रता, मापनी हो तो माप लेना। जो जगत कल्याण करने वाले सज्जन पुरुष हैं उनके प्रति अगर मन में दुर्भाव उत्पन्न हो तो समझना कि कषाय बहुत तीव्र हैं। क्या ? इसमें कुछ नहीं लगना, चुपचाप बैठे होंगे कोने में, लेकिन भीतर जब भी जो जगत का कल्याण करने में लगे हैं, ऐसे सज्जन साधु पुरुषों के प्रति मन में दुर्भावना आ जाये, धर्म का विरोध करने की भावना मन के भीतर आ जावे, यहाँ तक कि धर्म का घात करने की भावना आ जावे तो समझना कि कषाय की अत्यन्त तीव्रता है।

ये है कषाय की तीव्रता जो कि हमारे अन्दर ऐसा संस्कार डाल देती है कि जब हम अच्छा करना चाहते हैं, जब हम सोचते हैं कि आज तो मैं मंदिर जरूर से जाऊँगा, आज तो मैं पूजा करूँगा, आज तो मैं सेवा करूँगा, आज तो मैं दूसरे की मदद करूँगा और नहीं कर पाते हैं भीतर से कलुषता आकर के फौरन हमें उन सब कार्यों को करने से रोक देती है। भैया इन कषायों की तीव्रता को हम पहिचानें। अपने भीतर की इस मन की कलुषता को पहिचानें। और फिर क्या उपाय हम कर सकते हैं वो उपाय भी हम खोजें। ठीक है हमने अपनी अज्ञानतावश अपने मन की कलुषता से अपने भीतर एक ऐसा संस्कार डाल लिया है। वो तो हमारी अज्ञानता के क्षण थे। आज हमें मालूम पड़ गया है कि ऐसा संस्कार डालना ठीक नहीं है। हम उसे दिशा दें। बहुत आसानी से दिशा दे सकते हैं। कैसे दे सकते हैं दिशा। हमारे भीतर, हम सबके भीतर कोई न कोई कषाय है। अपन बैठे हैं इस समय भी कोई न कोई कषाय है । अधिकांश लोगों के अन्दर लोभ कषाय होगी, थोड़े बहुत लोगों के अन्दर मान कषाय होगी। हो सकता है कि कुछ लोग मायाचारीवश बैठे हों। हो सकता है, लेकिन इस समय क्रोध किसी को नहीं है। सब इन्टरचेन्ज करते चले जाते हैं। हम अपने क्रोध को तुरन्त मान में बदल लेते हैं, क्योंकि जैसे ही गुस्सा आया और देखा कि चार लोग बैठे हुये हैं, इनके बीच में इनसल्ट हो जाएगी हम अपने क्रोध को दबाकर के मान में कन्वर्ट कर देते हैं। सम्मान की भावना आ जाती है और फिर जब हमें लगता है कि यहाँ तो सम्मान नहीं मिलेगा तो हम धीरे से उठकर के और दूसरी जगह जाते हैं, और लोगों से कहते हैं कि चूंकि और लोगों को बैठना था, मैं इसलिये वहाँ से उठकर चला गया, मेरी अपनी मायाचारी में वो सम्मान कन्वर्ट हो जाता है। तुरन्त क्रोध को कब हमने मान में कन्वर्ट कर दिया। मान को कब हमने मायाचारी में कन्वर्ट कर दिया और फिर बाद में लोभ जागृत हो गया तो उस लोभ के चलते हो सकता है कि किसी दूसरे काम में हम लग जाते हैं इस तरह हम चारों चीजों को कन्वर्ट करते रहते हैं। तार कहाँ से लगा था। लोभ से शुरू हुआ था, पहुँच गया क्रोध तक और क्रोध धीरे-धीरे कन्वर्ट होकर के, प्रकट नहीं होता और लोभ में परिवर्तित होकर के दिखाई तक नहीं पड़ता। ये कषायें इस तरह

की हैं। हमें इनको दिशा देनी चाहिये। कोई ना कोई कषाय हमारे अन्दर होती है और हम उसको कन्वर्ट कर लेते हैं, जब इस तरह इन्टरचेन्ज कर सकते हैं तब क्यों न हम उनको अशुभ की जगह शुभ में, डिस्ट्रक्शन की जगह कन्सट्रक्शन में लगा दें। अगर यह एनर्जी है तो इस एनर्जी को, जो कि डिस्ट्रक्टिव है, जो अपना और दूसरे का घात ही करेगी तब क्यों न उसको कन्सट्रक्टिव बना दिया जाये।

लोभ धन पैसे का भी हो सकता है और लोभ मंदिर जाने का भी हो सकता है, चार बातें धर्म की सुनने का भी हो सकता है। पीछी कमण्डल ले लूँ, महाव्रत धारण कर लूँ, इस बात का भी लोभ हो सकता है। उसी लोभ के उदय में धन पैसा कमा सकते हैं और उसी लोभ कषाय के चलते अपना धर्म ध्यान भी कर सकते हैं। अभी अपन कौनसे लोभ से बैठे हैं महाराज चार बातें धर्म की सुनायेंगे। कुछ तो समझ में आयेंगी, कुछ तो कल्याण हो जाएगा, हमारा भी, चलो हो के आते हैं। अब इस लोभ की दिशा भी बदल सकती है। अभी तो सिर्फ ये है मन में कि चार बातें धर्म की सुनेंगे और दूसरे प्रकार का लोभ उत्पन्न हो जाये। क्या पता महाराज के पास जाने से कोई मंत्र वगैरहा दे देवे और मंत्र दे देंगे तो अपन तिजोरी में रख लेंगे, पैसा बढ़ जाएगा। लोभ का क्या कह सकते हैं कि किस दिशा में चला जाएगा। लोभ हमें इस बात के लिये बाध्य नहीं करता कि अब आप ऐसे ही वाला लोभ करो। वो तो हमारे अन्दर हम जैसा पुरुषार्थ करेंगे, लोभ को वैसी दिशा दे सकते हैं।

इसी तरह हम अपने मान को, क्रोध को और माया को भी दिशा दे सकते हैं। गुस्सा करना है तो अपने ऊपर गुस्सा कर सकते हैं कि मैं इतना खराब क्यों हूँ। दूसरा खराब है इस बात पर गुस्सा तो आता है, लेकिन मैं इतना क्यों बेईमान हूँ, मैं क्यों इतना जो है कठोर हूँ, इस बात पर क्यों नहीं हमारे अन्दर गुस्सा आता है। हम अपने उस गुस्से को, क्रोध को दिशा दे सकते हैं और दिशा देना सीख लिया तो देर नहीं लगती जीवन को संयमित होने में।

एक उदाहरण है जल्दी बात समझ में आ जायेगी। नया-नया विवाह हुआ था उस नवुयवक का और वो मुनिजनों के प्रवचन सुनकर वापस लौटा तो जीवन-साथी ने कहा कि तुम रोज प्रवचन सुनने जाते हो, हमारा भैया भी मिलता होगा वहाँ पर, वो भी रोज सुनने जाता है प्रवचन। "हाँ, मिलता तो है।" तो बात आगे बढ़ी। जीवन-साथी ने कहा कि हमारा भैया सोच रहा है कि वो मुनि बने। इस नवयुवक ने सुना और जोर से हँसा। बोले -"हँसते क्यों हो ?" बोले - मैं इसलिये हँस रहा हूँ कि उसके बस का नहीं है मुनि

बनना, क्योंकि जो सोचता है वो बनता नहीं है। बोले - "हाँ अगर बनना है तो बन क्यों नहीं जाते, मना किसने किया, सोच क्यों रहे हैं ?" जब भूख लगती है तो क्या सोचते हैं कि खाना खाऊँ। खा लेते हैं, जब कभी कोई कड़ी बात कह देता है तो क्या सोच-सोचकर गुस्सा करते हैं। तुरन्त कर लेते हैं, बताओ आप। जब कोई हमें कड़ी बात कहता है और हम बिना सोचे उस पर गुस्सा कर लेते हैं तो हमारे मन में अगर ये भाव आया है कि हम मुनि बन जायें तो बन क्यों नहीं जाते, देर क्यों लगा रहे हो? उसके बस का नहीं है। ऐसा सुनने के साथ जीवन-साथी को अच्छा नहीं लगा कि भैया के बारे में ऐसा सोच रहे हैं ? अच्छा आप ऐसी बातें कह रहे हैं, आप भी तो रोज प्रवचन में जाते हैं, क्या आप भी एक क्षण में बन सकते हैं मुनि। अपनी ही बात अपने पर लागू हो गयी। कही तो गयी थी हँसी-हँसी में और अपनी ही बात अपने ऊपर लागू हो गयी, सिर्फ जरा सा इन्टरटेन, बातों-बातों का खेल। वो भी किसी न किसी कषाय के वशीभूत होकर के कर रहे थे, लेकिन सिर्फ चिढ़ाने की दृष्टि से, और कहा था कि बन क्यों नहीं जाते। पर इतना कहने पर कि आप भी तो सुनते हैं, रोज आप क्यों नहीं बन जाते। बस कहते हैं कि वो नवयुवक जो स्नान करने जा रहा था, अपने कपड़े वहीं छोड़कर घर से बाहर जाने लगा। जीवन-साथी ने हाथ पकड़ा कि कहाँ जा रहे हो। बोले बस बात खत्म हो गई। निर्णय हो गया। क्षण भर के अन्दर अपने आपको संयमित और नियन्त्रित कर लेने की सामर्थ्य भी है हमारे अन्दर, उन्हीं कषायों के चलते। एक क्षण में हमने निर्णय ले लिया। हम ऐसे निर्णय जैसे कि कषाय करने के बारे में ले सकते हैं, कषाय से बचने के बारे में भी ऐसे ही निर्णय ले सकते हैं। कोई ज्यादा कठिनाई नहीं है। होली के दिन कोई अगर अपशब्द कह देवे तो बताइयेगा हमारे चेहरे पर शिकन आती है या कि मुस्कान। होली का दिन है, अपशब्द कहेगा, हमें पहले से ही मालूम था और उस दिन चेहरा म्लान नहीं होता है, शिकन नहीं आती। और अगर वो ही अपशब्द होली के एक दिन बाद या एक दिन पहले कहे जायें तो मेरे ऊपर निर्भर करता है कि मैं गुस्सा करना चाहूँ, तो करूँ और नहीं करना चाहूँ अपने मन को कलुषित, तो नहीं भी करूँ।

कषायों का संस्कार मेरे मन को प्रभावित करेगा। लेकिन उस प्रभाव को मुझे तीव्र करना है या कि घटा देना है, ये मेरी अपनी च्वाइस है। ये मेरे अपने हाथ की बात है। कषाय से बचने के लिये पहला तो यही उपाय है कि हम जैसे मन को जल्दी से कलुषित कर लेते हैं, ऐसे ही मन को जल्दी से अच्छा बना लेने की टेक्नीक भी सीखें और दूसरी चीज जहाँ ऐसे निमित्त मिलें कि हमारी कषाय को हवा मिले उन निमित्तों से दूर रहें। हमारे मन को कलुषित करने वाले संयोग अगर हमें मिलें तो हमारा फर्ज है कि हम उनसे दूर रहें।

अपने जीवन में जैसे हम कलुषता के निमित्तों से दूर रहें, ऐसे ही दूसरे को भी उससे दूर रखें। दूसरे के मन में अगर कषाय जागृत हो जाये तो हम उसको हवा न दें, और दूसरे से कह दें कि जब हमारे भीतर कषाय जागृत हो तो आप उसे हवा मत देना। हो सके तो ठण्डा पानी डाल देना, ताकि वो हमारे मन को और अधिक बिगाड़ न सके। कलुषित न कर सके।

इसको चरित्र मोह कहते हैं कल अपन ने मोह की एक वैराइटी देखी थी जो हमारी श्रद्धा को विकृत करती है, श्रद्धा को होने नहीं देती। दृष्टि की निर्मलता को मलिनता में कन्वर्ट कर देती है। ऐसे ही हमारे अच्छे आचरण को और बुरे में बदल देने वाली, हमारे भले स्वभाव को कलुष कर देने वाली ये कषायें हैं। इन पर हमें कमाण्ड करना चाहिये। अभी तक तो हम इनकी ग्रिप में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अब हमारी ग्रिप इन पर होनी चाहिये। कब करना है, कितनी करना है, किस ढंग से करना है, और कितनी देर करना है, कब करना है, सुबह-शाम-दोपहर। कौनसे टाइम, फिक्स होना चाहिये। दुनिया भर के कामों का सबका समय फिक्स है तो इसका भी तो होना चाहिये। अभी आप गाली देंगे तो हम गुस्सा नहीं कर पायेंगे। देखिये आप शाम को दीजिएगा तो गुस्सा कर पायेंगे, अभी नहीं कर पायेंगे, इतना टाइम नहीं है कि आप गाली दें और हम गुस्सा कर पायें। आपको हम कोई रिएक्शन नहीं कर पायेंगे। ऐसा नहीं कह पाते हम। ऐसा कर भी लेते हैं जब हमारा मन किसी बहुत अच्छी बात से प्रफुल्लित होता है उस बीच में, अगर कोई बहुत कड़ी बात भी कह दें तो हम उसको इगनोर कर देते हैं, क्योंकि अभी हम बहुत आनन्द में हैं, किसी काम में लगे हुये हैं तो हम ऐसा नहीं कर सकते हैं कि कब करना है और कितनी देर तक करना है अरे दो-पाँच मिनिट तो दुनिया करती है आप सुबह से शाम तक कर रहे हो। हटाओ उसको। अभी घण्टे भर के लिये किया और हटा दिया। अगर मन कलुषित हो गया है तो कितनी देर तक जैसे कि वाईपर गाड़ी पर पानी गिरता है और फट से हटाकर एक तरफ रख देता है। क्या ऐसा वाईपर अपने भीतर नहीं लगा सकते हम। लगा सकते हैं। सीखना पड़ेगा भैया, ऐसा नहीं है ..... जितनी टेक्नोलॉजी बाहर डेवलप हो रही है, उतनी ही अपने भीतर भी डेवलप करनी पड़ेगी। ऐसे, जब दुनिया भर में इतनी टेक्नोलॉजी डेवलप हो रही है तो हम इतना नहीं कर सकते कि एक स्विच भीतर भी बनवा लें कि फट से ऐसा घुमाया और सब कलुषता एक तरफ। फिर चित्त, वैसा ही निर्मल। आ गई तो आ गई किसको नहीं आ जाती। आप कचरा फेंकेगे तो थोड़ी गन्दगी हमारे भीतर आयेगी ही। हमने फौरन पोंछा लगाया और बाहर फेंक दी। हम तैयार हैं, हमने फिर से साफ कर लिया। ये हमें सीखना पड़ेगा।

कितनी इन्टेन्सिटी ही करना और कितनी देर तक करना। अभी तो अपन चूंकि क्रोध ही कर रहे हैं इसलिये उसके बारे में विचार कर रहे हैं, लेकिन जब आये तब इसको एप्लाई भी करना पड़ेगा। अभी तो ठीक है, अभी तो समझ में आ रहा है। लेकिन जब आये तो फौरन उसको हटाना है, इतना ही याद आ जावे।

एक उदाहरण है इसका, यहीं आगरा में जब मैं चर्चा कर रहा था यही क्रोध के बारे में, एक बेटे ने मुझे बाद में आकर सुनाया कि आज तो मजा आ गया। हम एम.डी.जैन से बाहर निकले अपनी कार लेकर के और जैसे ही हमने टर्न की तो वहाँ से एक कार बहुत स्पीड में आयी, और दोनों बिल्कुल टक्कर होते-होते रुक गये। जैसे ही ऐसी स्थिति आयी मेरे अन्दर थोड़ा सा गुस्सा आया कि मैंने जब होर्न दिया था, लाइट भी दी तो क्यों आपने नहीं रोकी ? मैं टर्निंग लेकर आ रहा था। मैंने सारे इन्डीकेशन प्रोपर दिये थे। मेरी कोई गलती नहीं थी, सामने वाले की गलती थी। ऐसा मेरे मन में आया और जैसे ही ऐसा मेरे मन में आया तो मुझे थोड़ा सा अनईजी फील हुआ। मेरा मन सामने वाले के प्रति कलुषित हुआ। क्रोध आया मेरे मन में। लेकिन अगले ही क्षण याद आया कि अभी-अभी तो हम क्रोध पर सुन करके आये हैं विचार किया कि कब करना और कितना करना और कितनी देर तक करना। इसकी बात याद आते ही हँसी आ गयी अपने आप चेहरे पर। और मेरे चेहरे पर मुस्कान आयी तो सामने वाला कार में बैठा हुआ उसके चेहरे पर भी मुस्कान आ गयी। बोले, मैंने हाथ बाहर निकाला कि तुम निकाल लो, उसने भी हाथ बाहर निकाला कि तुम निकाल लो। अगर कोई और अवसर होता तो बोले कि मैं दरवाजा खोलकर और उसके बोनट पर हाथ पटकता कि बड़ी कार लेकर घूमता है और चलाना तक नहीं आता। और हो सकता है कि तना-तनी हो जाती। लेकिन जरा में, हमने उस क्रोध को दिशा दे दी और जरा सी ये बात आ गयी कि क्या करना, हो गया ठीक है। ऐसे हम अपनी कषायों को दिशा दे सकते हैं। छोटा सा उदाहरण सुनाकर के बात पूरी करता हूँ, ये उदाहरण तो आपको फोकट में बीच में आ गया मुझे याद, वो जो मैं सोचकर आया था वो तो आया ही नहीं।

क्या हुआ कि एक बहुत बड़े प्रोफेसर थे और कोई एक सम्मेलन में उनको संचालन करना था। तो उनके मित्र जो उनके कलीग थे प्रोफेसर वो भी थे। बड़े-बड़े लोगों की बात सुना रहा हूँ कि ऐसा भी हो सकता है कि व्यक्ति इतना पढ़ा-लिखा, उनके जीवन में भी ये कषायें मन को कलुषित कर सकती हैं और हो सकता है एकदम बिल्कुल मूरख हो, बुद्धु हो वो भी इन कषायों से बच सकता है। सवाल सिर्फ अपने आपको सँभालने का है।

अगर ज्ञान अपने को सँभालने में कारण बनता है तो वो ज्ञान श्रेष्ठ है। और ऐसा ज्ञान जो कि हमें हमारे जीवन को पतित कर दे ऐसा ज्ञान कोई काम का नहीं है। तो दोनों प्रोफेसर हैं, दोनों का मन है कि कार्यक्रम अच्छे से हो, संचालन अच्छे से है, तो क्या करें। माहौल बिल्कुल प्रतिकूल था। इस स्थिति में करना है फंक्शन तो प्रोफेसर ने कहा कि कोई बात नहीं, अपन दो हैं दोनों से काम चलेगा और मैं ही खुद अनाउन्स करता हूँ। और वो रिक्शा करके और रिक्शे से पूरे शहर में जाकर के कह आया कि सम्मेलन होने वाला है, युनिवर्सिटी में और आप सबके लिये हम आमन्त्रित करते हैं और लोगों को लगा के अरे प्रोफेसर खुद कर रहा है और शमा बँध गई, सम्मेलन हो गया। अब वो सम्मेलन तो बढ़िया से चल रहा था। सब वक्ता बोल रहे थे अपनी-अपनी तरह आ के। लेकिन जो मित्र सारे शहर में अनाउन्स करने गये थे उनको खड़ा किया तो वो जरा लम्बा बोल गये। अब लम्बा बोल गये तो ये जो दूसरे प्रोफेसर मित्र थे उनने धीरे से उनका कुर्ता खींचा कि सुनो बहुत देर हो गई। मैंने ही तो शमा बाँधी और मुझे ही नहीं बोलने दे रहे। आ सकती है। ये कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने अपनी किताब में उदाहरण दिया और कहते हैं कि उस क्रोध के वशीभूत होकर के उन्होंने इतने लोगों के बीच भी मंच से अपने उस प्रोफेसर मित्र की जो इन्सल्ट हो सकती थी वो कर दी। अनाप-शनाप कुछ भी कह दिया। अब वो जो मित्र थे वो सकते में आ गये कि सभा बनते-बनते बिगड़ ना जाये, सो ये तो चुप रहे। अगर वे भी उबल जाते तो बिगड़ ही जाती बात, चुप रहे और चुपचाप धीरे से उनको माइक लेकर के और किसी बढ़िया वक्ता को खड़े कर दिया और फिर से सारा सम्मेलन हो गया। लेकिन दोनों तरफ के लोगों ने कहा कि माफी माँगो, लेकिन बात इतनी बढ़ गयी कि दोनों एक-दूसरे से नहीं मिले। ये नेहरू और महावीर त्यागी वाली बात नहीं है कि वो अपनी कार में हाथ पकड़ कर के ले गये थे। आपको याद है कल परसों। वो ऐसी नहीं है ये थोड़ी हटकर के हो गयी। ये दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल भी नहीं मिले और चले गये।

कई दिन तक अनबोला रहा, बात ही नहीं हुई। प्रोफेसर जो थे उनके मन में कई बार आया कि क्या इत्ती सड़ी सी बात पर, अगर ज्यादा बोल लिया था तो बोलने देना था। मैंने कुर्ता पकड़ कर क्यों खींचा। तो उनने एक चिट्ठी पर क्या लिखा कि हम तो सोच रहे थे इत्ते दिन से तुम नहीं मिलने का नखरा कर रहे हो, अगर तुम नखरा कर रहे हो तो जल्दी से आ जाओ। मैंने चाय बनवाके रखी है। आपको कितनी जल्दी याद आ गया हमने जरा सा इशारा किया, टी टाइम होना चाहिये यही सही है तो वो ही टाइम है, उन्होंने कहा कि अगर तुम, मैं ये सोच रहा था कि इतने दिन हो गये अगर तुम नखरा कर रहे हो तो जल्दी से आ जाओ। मैं चाय पिलाऊँगा, और अगर सही में गुस्सा हो तो भी आ जाओ। आज

दो दो हाथ कर ही लेऊँगा। हाँ, ऐसा लिख दिया उस चिट्ठी पर कि अगर हमने तो सोचा था तुम नखरा कर रहे हो, नखरा कर रहे हो तो कोई बात नहीं, बलिहारी है तुम पर, पर अगर गुस्सा कर रहे हो तब भी आ जाओ। आज तो दो-दो हाथ करने का मन है। और जैसे ही ऐसी चिट उन प्रोफेसर साहब के पास पहुँची, भैया ! कोई कित्ता भी हो मन की निर्मलता तो हमारा स्वभाव है, यह कलुषताएँ तो क्षणिक हैं जो अपने मन को घेर लेती हैं और जैसे ही यह चिट्ठी पढ़ी और भागे-भागे आये और चाय पीते-पीते वे मित्र बोले कि भैया, उस दिन जरा बेवकूफी हो गयी। इनने भी धीरे से कहा "किसकी मेरी या तुम्हारी" दोनों ने जोर से ठहाका लगाया और गले मिले और बात खत्म। बताइयेगा क्या हम इस तरह अपने मन की कलुषता को एक-दूसरे के साथ जैसे बढ़ा लेते हैं, ऐसे ही एक-दूसरे के साथ मिलकर अपनी इस कलुषता को क्या हम वाश-आउट नहीं कर सकते, हम कर सकते हैं स्वयं नहीं कर पाते हैं तो दूसरे की मदद से हम इस प्रक्रिया को थोड़ा सा विनम्र होकर के थोड़ा सा झुककर के अपने मन को कलुष होने से बचा सकते हैं, इसी भावना के साथ कि हम सब अपने मन को निर्मल बनायें और ये कलुषता का संस्कार जो हमें निर्मल होने में बाधक बनता है उसको हटाकर के अपने जीवन को हमेशा के लिये अच्छा बना सके, इसी भावना के साथ।

बोलो आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।

○○○

कर्म कैसे करें?

भाग - 12

हम सभी लोगों ने पिछले दिनों इस बात पर विचार करना शुरू किया था कि हाँ इस संसार में जो भी विविधता दिखाई पड़ती है, किसी के पास धन बहुत है, किसी के पास धन का अभाव है। किसी को शरीर स्वस्थ मिला है किसी के शरीर की अस्वस्थता पीड़ा देती है। किसी को पद प्रतिष्ठा मिली है, किसी को ज्ञान मिला है और किसी को पद प्रतिष्ठा कुछ भी नहीं मिली और ज्ञान भी बहुत अल्प है। ये ऐसी विविधता किसने दी होगी यहाँ हमें। तब हमने बहुत विचार करने के बाद ये निर्णय अपने अनुभव से लिया था कि यहाँ हम जो भी करते हैं जैसा भी करते हैं, उसका भला-बुरा प्रतिफल हम स्वयं पाते हैं, किसी और की उस प्रतिफल के पाने में जरूरत नहीं है। आग गरम है, जलाती है जो उसमें हाथ डालेगा उसका हाथ जलेगा। फिर चाहे वो जयपुर में डाले या कि जयपुर से बाहर डाले। भारत में हाथ डाले, या कि विदेश में जले। जब भी कोई आग में हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा। छोटा वाला बेटा डाले, चाहे बड़ा वाला व्यक्ति डाले, ज्ञानी डाले चाहे अज्ञानी डाले, इससे फर्क नहीं पड़ता। वो जो जिसका स्वभाव है उसके अनुरूप ही अपना प्रतिफल देगा। कर्म जो हम करते हैं उसके साथ उसका स्वभाव भी निश्चित हो जाता है और वह फिर हमें वैसा ही प्रतिफल देता है। कुछ हम रोज करते हैं जिनका हमें तुरन्त ही फल मिलता है और उनके आफ्टर इफेक्ट्स भी होते हैं। कुछ कर्म हैं जो हमारे साथ अटेच होते चले जाते हैं। जिनका हमें बाद में फल मिलता है। किसी को अगर हमेशा दूसरे के बारे में बुरा सोचने का संस्कार डल जावे तो वो संस्कार इतना प्रबल हो जाता है कि तुरन्त तो फल देता ही है और बाद को भी वो अपने साथ जुड़ा रहता है और वो अपना फल देता रहता है। तो इस तरह हम कर्म करते भी हैं, कर्म का फल भी भोगते हैं और निरन्तर नये कर्म संस्कार की तरह अपने साथ जोड़ते भी चले जाते हैं और हमने ये भी समझा है कि कर्म करने में हमारी स्वतंत्रता है, और वो हमारे नजरिये पर डिपेन्ड करता है, हमारे एट्टीट्यूड पर डिपेन्ड करता है कि हमें भले कर्म करना है या कि बुरे कर्म

करना है और अज्ञानतावश मैंने जो भी भले-बुरे कर्म बाँध लिये हैं, जब वो अपना फल दें तब उनके साथ 'हाऊ टू बिहेव'। ये भी मैं ही तय करूँगा कि मुझे कैसे बिहेव करना है उनके साथ, क्योंकि मेरे जब अशुभ का उदय आता है तब ये जरूरी नहीं है कि मैं अशुभ के उदय में संक्लेषित होऊँ। लेकिन मैं होना चाहूँ तब।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुरूप ही कर्म अपना फल देता है। कई बार बहुत पीड़ा होने के बाद भी और हम उसको टोलरेट कर लेते हैं, हम उसे इगनोर कर देते हैं और अपने काम में लगे रहते हैं तब वो कर्म अपना फल थोड़ा-थोड़ा देकर के, या कि किसी दूसरे फोर्म में अपना फल देकर के चला जाता है। तो इस तरह हम जब कर्म उदय में आते हैं तब उनके साथ भी जैसा व्यवहार करना चाहें, वैसा व्यवहार कर सकते हैं। जब तक वे हमारे साथ संचित हैं हम उनको अगर वहीं का वहीं नष्ट करना चाहें तो नष्ट भी कर सकते हैं। हम उनमें जो चेन्जेज हैं वो भी कर सकते हैं। भले कर्मों की सामर्थ्य बढ़ा सकते हैं, बुरे कर्मों की सामर्थ्य भीतर-भीतर घटा सकते हैं। जब हम कोई बुरा कर्म कर लेते हैं उसके बाद जो प्रायश्चित्त करते हैं, पश्चाताप करते हैं, कन्फेस जिसको हम कहते हैं या कि अच्छे कर्म करना शुरू कर देते हैं तब वो जो बुरे कर्म मेरे साथ संचित हो जाते हैं उनका दबाव कब हो जाता है और मेरे साथ भले कर्मों का जो संचय है वो बढ़ना शुरू हो जाता है। ये सारी प्रक्रिया हमारे हाथ में है। हमारे वर्तमान के कर्मों पर ही हमारे अतीत के कर्म टिके हुए हैं। हमारे वर्तमान के कर्मों पर ही हमारा भविष्य टिका हुआ है। हमारा अतीत हो सकता है कि बहुत बुरा हो लेकिन हम हमारे वर्तमान को सँभाल करके और अपने भविष्य को उज्ज्वल कर सकते हैं। ये सामर्थ्य हमारे भीतर है। इन सब बातों पर अपन पिछले दिनों विचार कर रहे थे। बीच में थोड़ा सा गेप हो गया। फिर अपन इसको फिर कन्टीन्यू कर रहे हैं।

और ऐसे कौनसे कर्म हैं जिससे कि हमने आज वर्तमान में जो कुछ भी पाया है उस पर हम विचार कर लें। अगर हमारे ज्ञान कमती है, हमारे देखने की जानने की सामर्थ्य कमती है तो उसके लिये कुछ ना कुछ हमने पहले ऐसा किया होगा जिससे कि आज जानने-देखने की सामर्थ्य में ऑवस्ट्रक्सन आ गया है, बाधा आ गई है। हमारे ज्ञान को ढकने वाले, हमारी दृष्टि को ढकने वाले कर्म हैं, उस पर हमने विचार किया। हमारे जीवन में जो दुःख और सुख है वो भी हमारे संस्कारों की वजह से है। तो जरूरी है इस बात को समझना कि आज वर्तमान में दुःख मिला तो उसका कोई कारण मेरे भीतर होगा। आगे अगर मुझे दुःख नहीं पाना है तो फिर मुझे ऐसा इन्तजाम करना चाहिये। अगर मैं दुःख नहीं

पाना चाहता तो फिर दूसरे को दुःख देना बंद कर देना चाहिये। अगर मैं किसी से गाली सुनना पसन्द नहीं करता तो फिर मुझे दूसरे को गाली देनी बन्द कर देना चाहिये। बहुत सीधा-सीधा सा हिसाब है। जो चीजें मैं अपने जीवन में नहीं चाहता हूँ, लेकिन वो चीजें मेरी अज्ञानता से मेरे साथ ट्रेप हो गई हैं, अटेच हो गई हैं। तो अब मैं आगे तो कम से कम इतना करूँ कि जिन चीजों को मैं पसंद नहीं करता हूँ उन चीजों को ना करूँ। ऐसे मैं दुःख से बच सकता हूँ, और सुख के उपाय अपने जीवन में आगे के लिये संचित कर सकता हूँ। असल में, दूसरे को दुःख देने की भावना अन्ततः हमें भी दुःखी करती है और सब जीवों को सुख पहुँचाने की, सबसे मैत्री रखने की, प्रोटेक्शन, सबकी सुरक्षा की भावना हमें सुख देती है। जितना हम संचित करते हैं उतना हमें दुःख मिलता है और जितना हम त्याग करते हैं, जितना हम निर्लोभ वृत्ति अपनाते हैं उतना हमें साता का बंध होता है। इन बातों पर विचार किया है।

और इतना ही नहीं ऐसा क्या है कि जब हम चाहते हैं कि हम सच्चाई पर भरोसा करें लेकिन सच्चाई पर भरोसा नहीं होता। हमारे भीतर विश्वास ही नहीं होता। श्रद्धा ही नहीं जागृत होती सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के प्रति। तो हमने ऐसा क्या करा होगा पहले जिससे कि आज वर्तमान में श्रद्धा जागृत नहीं होती ? कुछ तो करा होगा। आज तो हम सब अच्छा कर रहे हैं लेकिन पुराना वाला भी तो हमारे साथ में संचित है। जिससे हमारी श्रद्धा होते-होते गड़बड़ा जाती है। संदेह बहुत जल्दी हो जाता है और विश्वास करना बहुत मुश्किल होता है तो मेरे भीतर कोई ऐसा कर्म है। हमने उस पर विचार किया कि "केवलि-श्रुत-संघ-धर्म देवावर्णवादो दर्शन-मोहस्य।"

जब-जब मैं महापुरुषों में जो दोष नहीं हैं उन दोषों का आविष्कार करता हूँ। उन दोषों की उनमें कल्पना करता हूँ, इससे मेरी दृष्टि की निर्मलता नष्ट होती है, इससे मेरी जो श्रद्धा है मलिन होती चली जाती है। मुझे अब अपने अन्दर श्रद्धा और विश्वास की सामर्थ्य बढ़ानी है। मुझे, महापुरुषों में जो दोष नहीं है उन दोषों का आविष्करण या उन दोषों की कल्पना नहीं करनी चाहिये वरना कल के दिन मेरी श्रद्धा और विश्वास टूट जायेगा और मुझे हर जगह सन्देह होने लगेगा और इतना ही नहीं हमारे अपने आचरण को भी मलिन करने वाले कुछ कर्म हैं जो हम करते हैं, कषाये हैं जो हमारे आचरण को मलिन करती हैं। हम उन कषायों के उदय आने पर और अधिक तीव्र परिणाम, संक्लेष के परिणाम कर लेते हैं जिससे कि वो हमारे साथ और अधिक अटेच हो जाती हैं।

एक ऐसी कषाय है जो हमारी दृष्टि को भी मलिन करती है। क्रोध मान, माया, लोभ की एक ऐसी वैरायटी है जो कि हमारी श्रद्धा को भी गड़बड़ाती है और क्रोध, मान, माया,

लोभ की एक वैरायटी है जो व्रत, नियम नहीं लेने देती, उसमें बाधा डालती है और क्रोध, मान, माया, लोभ की एक ऐसी वैरायटी है जो हमें महाव्रत लेने में बाधा डालती है और इतना ही नहीं, ऐसी भी क्रोध, मान, माया, लोभ है जो कि हमें हमारे स्वभाव से परिचित नहीं होने देती। इन सबसे अपने को बचाने का पुरुषार्थ करना।

ये सारी बात मैंने ब्रीफ कर दीं। अब आगे शुरू करें। आज के लिये हमें क्या करना है। हम अगर मनुष्य हैं तो हमने ऐसा क्या किया है, जिससे कि हम मनुष्य बने हैं? यदि हम पशुओं को देखते हैं तो मन में ये विचार आना चाहिये कि वे पशु क्यों बने ? उन्होंने ऐसा क्या किया कि उन्हें पशु बनना पड़ा। ये दो लोग तो हमें दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सुनते हैं कि देव भी हमारी तरह ही अपने किन्हीं अच्छे कर्मों की वजह से बन जाते हैं ? तो एक देव की भी स्थिति है। कुछ ऐसे भी हैं जो कि अपना नरक भोगते हैं, इसी संसार में। उनको इस स्थिति में कौन ले जाता है तो कुल मिलाकर के एक ही चीज है, हर व्यक्ति का अपना कर्म उसे यहाँ पर वह चाहता है जैसा कर्म करता है, वैसा उसका फल उसे प्राप्त हो जाता है। आचार्य भगवन्तों ने लिखा कि हम सावधान रहें। यदि हम जान गये हैं कि नरक अच्छी चीज नहीं है और हम नरक जाना पसन्द नहीं करते हैं तो हमें सावधान रहना चाहिये। कहा है - ''ब्रह्मारम्भ - परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः'' अर्थात् बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह करने से जीव अपने आपको नरक की तरफ ले जाने की तैयारी करता है। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम आज यही कर रहे हों। आरम्भ किसे कहते हैं ? बहुत अधिक पाप के कार्य करना आरम्भ कहलाता है और बहुत अधिक ममत्व रखना ये परिग्रह कहलाता है। यह मेरा है, मैं इसका स्वामी हूँ, इस तरह के भाव को बोलते हैं परिग्रह। आरम्भ और परिग्रह सामान्य रूप से तो सभी करते हैं। लेकिन जब कोई बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह करे तब फिर मानियेगा कि वो अपनी नरक जाने की तैयारी कर रहा है। नरक एक्चुअली क्या है ? जहाँ मारी-थारी मची हुई है। जहाँ लोलुपता है, जहाँ आसक्ति है, जहाँ बहुत पाप की बहुलता है। वो ही तो नरक है। हम जब चाहें उसे निर्मित कर लें। हम अपने आस-पास कई बार निर्मित कर लेते हैं ऐसा नरक। जहाँ मारी-थारी मची हुई है, मेरा-तेरा मचा हुआ है। ये मेरा है, ये तेरा है। और जहाँ बहुत अधिक पाप की बहुलता है। यहीं तो नरक है। अगर हम ये सब करेंगे तो अन्ततः हम अपना नरक अपने हाथ से निर्मित करेंगे इसलिये सावधानी जरूरी है। थोड़ी सी तो आजीविका, चार रोटी तो चाहिये है, दिन भर का पेट भरने के लिये, लेकिन पेटी भरने के लिये इतना पाप, जरा विचार कर लीजिए। अरे भई आजीविका तो कोई भी चला लेता है। तो आजीविका

चलाने के लिये ही अगर मुझे कोई कार्य करना है तो मैं उस कार्य को चुनने से पहले देखूँ कि उस कार्य में मेरे से बहुत अधिक जीवों का घात तो नहीं हो रहा है। मेरे को बहुत झूठ तो नहीं बोलना पड़ता उस कार्य में। मेरे को कहीं चोरी करने के लिये मजबूर तो नहीं होना पड़ता। मैं ऐसा धन्धा कर रहा हूँ जिसमें चोरी करने को मजबूर होना पड़े। ऐसा तो नहीं है जिसमें मुझे अपने व्यवहार को मलिन करना पड़ता हो लोगों से। ऐसा धन्धा तो नहीं कर रहा हूँ। जिससे कि मेरी आसक्ति और बढ़ती चली जाये।

इन सब बातों का विचार हमें करना चाहिये। जो ऐसा विचार करता है वो समझियेगा कि अपने हाथ से अपना नरक निर्मित नहीं कर रहा है। वो सावधान है। और यदि ऐसा नहीं कर रहा है तो वो अपने हाथ से अपना नरक ही निर्मित कर रहा है। बहुत आरम्भ मतलब यही है कि मैं अपनी आजीविका के लिये बहुत पाप कर रहा हूँ जो थोड़े पाप कर्म में हो जाना था उसको बढ़ाकर के बहुत अधिक कर रहा हूँ। आज जितने भी ये जो पोल्ट्री फार्मिंग, फार्मिंग ये आज जितने भी जीवों की हिंसा करके बहुत धन्धे किये जा रहे हैं, कॉस्मेटिक्स के बहुत बड़े-बड़े प्लान्ट्स मैन्युफेक्चरिंग, ये जितने भी हैं वो सब थोड़े से पैसे के लिये किया जाने वाला बहुत बड़ा पाप है। जो अन्ततः हमें नरक ही निर्मित करेगा। अभी जरूर हमें सुख-सुविधा की सामग्री प्राप्त हो रही है। लेकिन ये मेरे भीतर एक स्थिति में नरक ही निर्मित करेगी। जरा सुख-सुविधा की सामग्री वालों से पूछें कि वे कितने दुःखी हैं। उनके पास दुनिया भर के सुख हैं लेकिन जो जीवन का सुख है, वो गायब है। और अपने जीवन में भी अपन ये अनुभव करते हैं। चार चीजों में शांति से गुजारा होता है और चालीस रख लेवें तो उन्हीं को संभालना। जब तक प्राप्त नहीं हुई थीं तब तक प्राप्त हो जावे, इस बात का संक्लेश। अब प्राप्त हो गई हैं तो उनको कैसे सँभाल कर रखूँ, इस बात का संक्लेश और कल के दिन वे अगर छिन जायेंगी, उनका अभाव हो जाएगा तो फिर जिनके नहीं होने पर पीड़ा, जिनके होने पर भी पीड़ा और जिनके छिन जाने पर पीड़ा, उन चीजों को हम जरा सँभलकर इकट्ठा करें, बस इतना ही कहा जा रहा है। वरना हम अपने हाथ से अपना घाटा करेंगे यह सावधानी हम रखें। कर्म तो हमें करना है, कौन नहीं करता है, ''योगाः कर्म सुकौशलम्'' जरा कर्म करने की कुशलता तो हम सीख लेवें। ये ही कुशलता है कि जिसमें मेरा अहित होता है जिसमें मेरा नरक निर्मित होता है, मैं उस तरह के भावों और उस तरह के कर्मों से अपने को बचाऊँ। परिग्रह ममत्व को कहते हैं और बहुत के मायने हैं। संख्या की अपेक्षा भी और परिमाण की अपेक्षा भी, दोनों ही हम बहुत अधिक अपने पास संगृहीत करके रखते हैं। अनावश्यक, उसके लिये हमें कितना शोषण

करना पड़ता है, कितना दूसरे को तकलीफ पहुँचानी पड़ती है और स्वयं हमारे जीवन को उससे कोई ज्यादा सुख पहुँचता, हो ऐसा नहीं है। आपको ज्यादा अनुभव है भैया। आप तो मेट्रो सिटी में रह रहे हैं। महानगर में रह रहे हैं। यहाँ की तामझाम और वे सारी चीजें आपकी देखी हुई हैं और उनसे मिलने वाला सुख-दुःख का अनुभव भी आपको ज्यादा है पर अगर हम गौर से देखें तो हम महसूस करेंगे कि भैया तुम छोटे से गाँव में हो, भले ही कुछ चीजों का अभाव है मगर सुख से तो हैं। हमें तो इधर बहुत तकलीफें हैं भले ही बहुत बड़ी हवेली है और अनाप-शनाप पैसा है। मगर लड़के बिगड़ गये, तुम्हारे तो फिर भी ठीक है। बताओ आप ऐसी बहुत सी चीजें अपने देखने में, अपने जीवन में अनुभव में लाते हैं तब फिर क्यों हम ऐसा कर्म करें जिससे कि हमारा ही अहित हो। हमें यह चीजें चाहिये हैं, लेकिन बहुत चाहिये हैं ऐसा तो जरूरी नहीं है।

विनोबा ने लिखा कि शरीर तो एक ही मिला है, उस पर एक जोड़ी कपड़े पहने जा सकते हैं, आप भले ही संदूक में पचास जोड़ी रख लो, पहनोगे तो एक ही। क्या पचास जोड़ी एक बार में पूरे के पूरे पहनोगे, ना एक ही पहन पायेंगे, लेकिन उस एक के पहनने के लिये उनचास। सुख तो दे रहा है एक जोड़ी कपड़ा लेकिन उसमें सुख नहीं हैं, वो जो उनचास पेटी में रखे वो भीतर बहुत गुदगुदी पैदा करते हैं। हमारे पास इत्ते सारे रखे हुए हैं। अच्छा रखे रहो, क्या काम के हैं देखने भर के हैं वो। कुछ सुख दे रहे हैं क्या ? सोच-सोचकर हम सुखी हैं, सो ठीक है। जिस दिन उसमें से एक कम हो जाएगा सो उसका दुःख भी मिलेगा जबकि कपड़े जो शरीर पर पहने हैं वो कौनसा दुःख दे रहे हैं वो तो कुछ भी नहीं दे रहे हैं । आपके शरीर की सुरक्षा के लिये हैं सो सुरक्षा कर रहे हैं। वो जो सन्दूक में रखे हैं, सो थोड़ा सा होने का सुःख और जब नहीं हैं सो और दुःख। जबकि शरीर के वस्त्र में कोई फर्क नहीं आया। उनमें से एक कम हो गया इस बात का दुःख। फोकट का दुःख ये कहलाता है, लेकिन ये चीज ध्यान में आये तब ना।

एक नौकर काम करता था सेठजी के यहाँ पर। हमने शायद पहले भी सुनाया था। हम फिर से सुना रहे हैं। क्योंकि कुछ लोग भूल गये होंगे। सेठजी के वहाँ वो नौकर काम करता था। एक दिन साफ करते-करते सफाई में और उससे घड़ी सेठजी की टूट कर नीचे गिरी। उसको लगा कि अब तो मामला गड़बड़ है। क्या होगा ? सेठजी नाराज होवेंगे। और तनख्वाह में से हो सकता है, पैसे काट लें। तो शाम को आये सेठजी और उनसे कह दिया कि वो मेरे से घड़ी टूट गयी। तो सेठ जी ने कहा - अब ठीक है थोड़ा सावधानी से किया करे काम और सुनो वैसे तो कोई विशेष बात नहीं है, लेकिन तुम्हें नहीं मालूम इस घड़ी

के साथ मेरा बड़ा रिश्ता है। ये मुझे अपने ब्याह के समय मिली थी और मुझे इससे बहुत लगाव है। और मुझे पीड़ा बहुत है कि ये गिर गयी। और सामान कोई टूट जाता घर का तो शायद इतनी पीड़ा नहीं होती पर इससे मुझे ज्यादा लगाव है तो इससे मुझे पीड़ा हो गयी। खैर अब टूट ही गयी है तो कोई बात नहीं और नहा-धोकर के आये खाना-वाना खाकर के और फिर नौकर ने कहा तो मैं जाऊँ। अरे जाओ, पर सुनो मैं सोच रहा था कि अगर ये घड़ी नहीं टूटती तो मैं तेरे को दे देता। अब, अभी नौकर को दिन भर से घड़ी टूटने का उतना दर्द नहीं था जितना कि इस बात को सुनकर के कि ये घड़ी मुझे मिल सकती थी और टूट गई। अब दुःख शुरू हो गया। अब नौकर महाराज को भी दुःख होना शुरू हो गया। अभी तक तो टूट गई थी इसका दुःख नहीं था। वो मेरी पगार में से पैसे ना कट जाये, इसका दुःख था। अब घड़ी टूटने का दुःख इसलिये हो गया कि मुझे मिल सकती थी और टूट गयी। ये मेरी हो सकती थी, ये जो मेरे मन में भाव आ गया। घड़ी दुःख नहीं दे रही भैया। वह देती हो तो जब टूटी थी तब देना चाहिये था। वो मेरी है और फिर टूट जावे तो बहुत दुःख देती है। घड़ी-साज के यहाँ ढेर सारी घड़ियाँ टँगी हुई हैं। वो अपन को सुख देती हैं, दुःख देती हैं क्या ? कुछ नहीं देती वो जब अपन खरीद कर अपने घर में ले आते हैं तो सुख देती हैं और जब गिर जाती हैं तो दुःख देती हैं। हमारा अपना ममत्व हमें सुख-दुःख देता है और जिस व्यक्ति का ममत्व बहुत है आसक्ति बहुत है। बहुत चीजों में आसक्ति है और बहुत मात्रा में आसक्ति है। बताइये उसको दुःख ही दुःख नहीं मिलेगा और जहाँ दुःख ही दुःख है उसी का नाम तो नर्क है। जहाँ क्षण भर का सुख नहीं है दुःख ही दुःख है। जहाँ सुख में से भी दुःख निकालने की प्रवृत्ति वाले लोग रहते हैं वो ही नर्क है। क्या हम, क्या हम उसे निर्मित करना चाहेंगे अपने जीवन में। नहीं, कोई भी नहीं चाहता कि वो नर्क जावे या अपने जीवन में ही नर्क निर्मित करे। तब फिर जरूरी है ..... हम तो हमेशा कहा करते हैं कि जैसे ये बैनर लगाये जाते हैं ना यहाँ पर तो एक बैनर बनवा लेना चाहिये, अपने घर में लगाने के लिये। और इस पर क्या लिखना चाहिये। मैं बहुत पाप कार्य करता हूँ और बहुत सम्पत्ति से ममत्व रखता हूँ, मैं नरक जाऊँगा। हाँ ऐसा लिखवा लीजिये उस पर और रोज जब दुकान से लौट कर आये वो देख लीजिये। अगर मैंने सावधानी रखी है तो बच जाऊँगा और गड़बड़ करी है तो नरक जाऊँगा। मैं अपने हाथ से ये इन्तजाम कर रहा हूँ। तो बार-बार ये बात हमें ध्यान में बनी रहेगी। कर्म तो हमें करना है लेकिन इतनी सावधानी रखना है कि उससे मेरा अहित ना हो। बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह करने से हम नरक जाते हैं। अच्छा बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह क्या कहलाता होगा इस पर अपन विचार करेंगे। छोटे-छोटे से उदाहरण हैं।

क्या हुआ एक कवि सम्मेलन होना था तो उसमें कवि लोग किसी गाँव में गये और वो गाँव शहर से थोड़ा इन्टीरियर में था। तो वहाँ आँधी और पानी बहुत होने से कवि सम्मेलन पोसपोंड हो गया। पोसपोंड हो गया तो उनको सबको वापिस आना था। सबको वापस आना था तो उसमें से एक कवि ने बोला कि मेरे पास दो कम्बल हैं अपन सब लोग मिलकर उन दोनों को ओढ़ लेते हैं और कम से कम ताँगा स्टैण्ड तक चलते हैं फिर वहाँ से ताँगा मिल जाएगा और बस तक पहुँच जाएँगे अपन। तो उसमें से जो संयोजक कवि थे उन्होंने कहा कि अरे भई वो जो दिल्ली वाले आये हैं ना कवि सम्मेलन सुनने, उनकी गाड़ी ले लेते हैं अपन तो। जो पहले से अनुभवी कवि थे, वो कहने लगे कि मिलेगी नहीं । ऐसे कैसे कह रहे हो, हमारी तो उनसे बहुत पहचान है। उनसे पूछा तो मालूम है क्या जवाब दिया उन्होंने। देखो यात्रा में ड्राइवर बहुत थक गया है अभी वो विश्राम करेगा अभी गाड़ी नहीं मिल सकती।

कितना करते हैं और जोड़-जोड़ के रख लिया और अगर सदुपयोग नहीं कर रहे हैं तो मानिये कि बहुपरिग्रही है, बहुत आसक्ति है तब तो सदुपयोग नहीं कर पा रहे हैं और बहु-परिग्रही का एक और उदाहरण है दूसरे ढंग से। एक व्यक्ति जा रहे हैं बस में, उनके पास एक रेडियो है। वो उसने बस की छत पर रख दिया है सत्रह दफे लोगों को सुना-सुनाकर कह चुके हैं। ड्राइवर से कहा कि देखो त्रिपाल ढाँक देना। हजार रुपये का है रेडियो गीला न हो जाये। क्लीनर से कह रहे हैं, ऊपर चढ़ते-उतरते समय जरा सावधानी रखना, हजार रुपये का है, अच्छी बात है। फिर और लोगों को जो आसपास में बैठे हैं उनसे कह रहे हैं कि वो देहरादून में मैंने चीज खरीदी वो एक रुपये में दो सेर मिल गयी और वो ही अगर मैं मसूरी में खरीदता तो एक सेर मिलती। और सुनो ये जो पेन देख रहे हैं न, पेन बताओ, कित्ते का होगा ? अरे ये तो महँगा लग रहा है जनाब डेढ़ सौ रुपये का होगा। एक पहाड़ी लड़के को बुद्धु बनाकर पाँच रुपये में लाया हूँ, पाँच रुपये में। उसने भी चुराया ही होगा कहीं न कहीं से, बड़े प्रसन्न हैं। इतना ही नहीं बता रहे हैं कि ये देखो डाक आयी उसमें से दो रुपये की टिकिट पर सील ही नहीं लग पाई, मैंने वो इसमें से उखाड़ ली और दूसरे पर लगाऊँगा, काम आयेगी। अपना ईमान जिसे सस्ता है और धन महँगा है, वो बहुपरिग्रही। ठीक, जो धन का सदुपयोग न करे वो बहुपरिग्रही। अब आ जायेगा जल्दी समझ में ताकि बचें अपन इससे। और तीसरी चीज, मौसी ने बुलाया शादी के बाद बेटे-बहू को। दोनों गये हैं वहाँ, और मौसी ने चेन दी है दोनों को। वो चेन शब्द, चैन है वो किन्तु बेचैन कर देती है वो बहुत (हँसकर) चेन जरूर है वो कोट के, कालर के ऊपर रहे

तो बड़ा चैन मिलता है और उसके भीतर रहे तो चैन नहीं मिलता। लोगों को दिखती रहे तो बड़ा चैन मिलता, नहीं तो बेचैगी कोई देखे नहीं अगर। ऐसी वो चेन दे दी। अब आ रहे हैं जनाब बस में बैठे, और चार लोग और बैठे हैं रिश्तेदार, बताना कितने वजन की, लग तो रही है महँगी, महँगी नहीं होगी, हो सकता है पालिश की हो उसमें। डिस्कशन चल रहा है। कितने की होयेगी ? जो दूसरे की भावना और त्याग से ज्यादा मूल्यवान वस्तु को माने, वो बहुपरिग्रही। बस ये तीन चीजें है बहुपरिग्रही होने की। जो चीजों का सदुपयोग न करे, जोड़-जोड़ के रखे वो बहुपरिग्रही। अकेला जोड़कर रखने वाला बहुपरिग्रही नहीं होता। जो सदुपयोग न करे वो बहुपरिग्रही। और जो अपना ईमान खो देवे, ईमान को सस्ता माने, चीजों को महंगा मानें, वो बहुपरिग्रही। और जो दूसरे की भावनाओं की कदर न करे, मौसी ने दी है ये तो नहीं कहा एक भी बार। कितनी भावनाओं से उसने दी होगी, कितना त्याग किया होगा। यह पूछ रहे हैं कि कितने वजन की है कितनी महँगी होगी ? किस तरह हम अपने जीवन को बना रहे हैं अपने हाथ से। और हम कहाँ जाएँगे, कैसा हमारा जीवन आगे बन जायेगा।

आचार्यों ने इसीलिये ये बात लिखी कि जहाँ अल्प पाप करने से कार्य चलता हो, वहाँ बहुत मत करना। जहाँ अपनी आवश्यकता थोड़े में पूरी होती हो वहाँ पर ज्यादा आसक्ति मत बढ़ाना, तो अपन आराम से इस चीज से बच जाएँगे। और भी कुछ चीजें हैं जो कि हमें नरक ले जाने में या कि जीवन को नरक बनाने में, दोनों ही बातें, नरक ले जाने में या कि जीवन नरक भी बन जाता है, किन्हीं चीजों से। आचार्यों ने कहा है कि जो अशिष्ट आचरण करता है वो अपने हाथ से अपना नरक निर्मित करता है। आचरण हमारा अशिष्ट नहीं होना चाहिये किसी के भी प्रति। किसी को भी हम छुद्र ना मानें, किसी का भी हम तिरस्कार ना करें। ये चीज हमारे आचरण में शामिल हो। अब अशिष्टता किसे कहते हैं? जब अपने आपको सब कुछ मानें और दूसरे के कुछ भी नहीं मानें और जेन्टिलनेस किसे कहते हैं ? जो सबका ख्याल रखे। सबके प्रति प्रेमभाव रखे और फिर कह रहे हैं जिसका गुस्सा पत्थर की लकीर के समान हो। जो बद्ध बैर हो अर्थात् बैर को बाँध लेने की आदत जिसकी हो। समझ लो कि उसने अपने भीतर अपना नरक निर्मित कर लिया। कोई और नहीं करेगा। उसने खुद निर्मित कर लिया अपने हाथ से। ऐसा पत्थर के समान कठोर, क्रोध, अगर है, दया शून्य होना नरक निर्मित करना है। जब हम दया से शून्य हो जाते हैं, तब भी हम अपना नरक निर्मित करते हैं। दूसरे को पीड़ा पहुँचाकर के या दूसरे की पीड़ा देखकर के मन ही मन प्रसन्न होगा। बढ़िया रहा, भोगो बेटा। वो तो वैसे ही दुःखी है अपने कर्म से, आप प्रसन्न हैं कि अच्छा हुआ। भैया ! शत्रु की भी अति नहीं चाहना चाहिये।

मित्र की तो छोड़ो। शत्रु की भी क्षति ना हो, और अगर क्षति हो तो कम से कम प्रसन्न तो नहीं हो। शत्रु की क्षति में भी प्रसन्न नहीं होना। ये परिणाम हमारे कितनी जल्दी गड़बड़ा जाते हैं इसकी सावधानी रखना और कहते हैं, साधुजनों के बीच आपस में फूट डाल देना। इनकी उनसे, उनकी इनसे, बहुत करते हैं लोग। इस महाराज के पास उस महाराज की निन्दा करेंगे और उसके पास जाकर के कि महाराज वो आपके बारे में ऐसा कह रहे थे। कई लोग यही करते रहते हैं, आपको नहीं मालूम। उनका काम ही यही है। ये अपने हाथ से अपना नरक बनाना। साधु सज्जन पुरुष हैं, त्यागी व्रती हैं, मुनिजन हैं उनके बीच फूट डाल देना, उनके बीच आपस में विरोध पैदा कर देना, इसमें रुचि लेना। ये सब अपने हाथ से अपना नरक निर्मित करना है और मरते समय अत्यन्त संक्लेश परिणामपूर्वक मरण करना, ये नरक जाने का उपाय है। भैया और भी बहुत सारी चीजें हैं, जो अच्छी नहीं हैं वे सब चीजें सब समझते हैं कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है। जो जितना बहुत अधिक बुरा है वो सब हमें वहाँ ले जाता है क्योंकि वहाँ बुरा ही बुरा है। नरक के मायने जहाँ सब कुछ गड़बड़ है और हम यहीं से उसकी शुरूआत करते हैं। तो अपन यहाँ पर भी सावधानी रखें। कर्म तो करना है लेकिन ऐसे कर्म ना करें जिससे कि अपना जीवन कष्टकर हो जाये। दूसरे के लिये भी तकलीफ दायक हो जाये और अपने लिये भी क्षति पहुँचे। ये सावधानी रखें तो हम अपने नरक से अपने को बचा सकते हैं। इसी भावना के साथ कि हम अच्छे कर्म करें जिससे कि हमारा जीवन अच्छा बने।

बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।

○○○

कर्म कैसे करें?

भाग - 13

हम लोगों ने यह बात बहुत अच्छी तरह से पिछले दिनों समझ ली है कि हम जैसा कर्म करते हैं, उसके प्रतिफलस्वरूप हमें वैसी ही जीवन में सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। कोई नहीं चाहता कि वो अपने जीवन में दुःख पाये। जो दुःख बढ़ाने वाले काम करते हैं वो भी ये नहीं चाहते कि उनके जीवन में दुःख आये, पर क्या करें हमारी अपनी अज्ञानता, हमारी अपनी पुरुषार्थहीनता और इतना ही नहीं हमारे अपने जो संस्कारों की प्रबलता है, वो हमें कर्म कैसे करना चाहिये और कर्म का फल भोगते समय क्या सावधानी रखनी चाहिये, यहाँ जाकर के हम गड़बड़ा जाते हैं।

हमने पिछले दिनों ये बात अपने अनुभवों से और आचार्यों के कहे अनुसार जान ली है कि यदि मैं मनुष्य हूँ तो उसकी जिम्मेदारी मेरी है और अगर कोई पशु के रूप में जीवन जी रहा है तो उसकी जिम्मेदारी उसकी है। देव और नारकी जीव भी इस संसार में अत्यन्त सुख और अत्यन्त दुःख में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अब मुझे यह डिसाइड करना है कि मैं यदि मनुष्य हूँ तो मैंने ऐसा क्या करा होगा कि जिससे कि मैं मनुष्य हुआ हूँ और यदि कोई पशु है तो उसने ऐसा क्या करा होगा जिससे कि उसे इस तरह तिरस्कार भोगना पड़ रहा है ? तिर्यक् शब्द से तिर्यन्च शब्द बना है और उसका अर्थ ही यह है कि जो बोझा ढोता है और हमेशा तिरस्कार को प्राप्त होता है। ऐसे अपने जीवन को व्यतीत कर देता है वो पशु है। छोटा सा कीड़ा भी होगा आप कहेंगे हटाओ, हटाओ, उसको हटाओ। गाय आ रही होगी, उठाओ तो लाठी, भगाकर आवो। छोटे से लेकर के बड़े तक जितने भी तिर्यन्च जाति के जीव हैं, उन सबके साथ हमारा यही व्यवहार होता है।

लेकिन हम विचार करें कि एक जीव ने इस तरह अपना जीवन जीने की मजबूरी कैसे अपने कर्मों से अर्जित कर ली होगी। क्यों वो इस तरह जीने के लिये मजबूर हो गया ? कल हमने समझा था कि कैसे हम अपना नरक निर्मित कर लेते हैं। कैसे हम अपने परिणामों को बिगाड़ कर के और यहाँ इस संसार में ही नहीं, जब हम यहाँ से ट्रांसमाइग्रेट

करते हैं। असल में, ऐसा है कि हम जिस तरह यहाँ जीते हैं उसी तरह आगे के लिये भी जीने के लिये हम तैयारी कर लेते हैं। यहाँ कोई प्रेम से जीता है, शांति से जीता है तो समझियेगा कि वो एक ऐसी जगह जाएगा जहाँ कि उसे एनवायरनमेन्ट ऐसा मिलेगा जहाँ वो शांति से जी सके और यदि जिस व्यक्ति को यहाँ कलुषता और तेरे-मेरे का भाव या बहुत अधिक शोषण की प्रवृत्ति या कि लोगों के दुःख में हर्ष महसूस करने की प्रवृत्ति है तो फिर वो ऐसी जगह जाएगा जहाँ कि उसे ऐसा वातावरण मिले जिसमें कि वो जैसा उसने किया है उस संस्कार के अनुरूप ये जो एक निश्चित पर्याय मिलती है, एक निश्चित अवस्था में हमें कुछ दिनों तक ठहरना पड़ता है, उसके पीछे कौनसे अपने परिणाम ऐसे होते होंगे ? मालूम होना चाहिए ताकि हम सावधान हो जायें। हम कैसे कर्म ना करें जिससे कि हमारा नरक निर्मित हो या जिससे कि हमें जाकर पशु जगत में उत्पन्न होना पड़े और जिन्दगी भर तिरस्कार भोगना पड़े।

आचार्य भगवन्तों ने लिखा कि अगर ऐसी स्थिति को आप नहीं पाना चाहते तो ध्यान दें ऐसी स्थिति कैसे मिलती है तो "माया तैर्यग्योनस्य"। तिर्यन्च अवस्था में अगर कोई व्यक्ति है तो उसने अपने पूर्व जीवन में बहुत मायाचारी करी होगी। और भी बहुत से कारण हैं लेकिन प्रमुख कारण है, मायाचारी। मायाचारी के मायने क्या है ? मायाचारी के मायने हैं दिखावा, प्रदर्शन। मायाचारी के मायने हैं माया संसार की जोड़-जोड़ कर रखना और मायाचारी के मायने हैं अलग-अलग दिन भर में सैकड़ों किस्म के चेहरे लगा के जीना। मायाचारी के मायने हैं जो जैसा है वैसा ना होकर कुछ और ही होना। इतने सारे अर्थ हैं मायाचारी के। अब समझना पड़ेगा अपन जैसे हैं, वैसे दिखना पसन्द ही नहीं करते। कोई नहीं पसन्द करता। जिस व्यक्ति का जैसा चेहरा है वो उससे बढ़िया दिखना चाहता है। नहीं, अच्छा आप बताओ, झूठ बोल रहा हूँ तो आप बताओ, सबके लिये है ये अपन सोचते हैं, वो फोटोग्राफर से भी कहते हैं जरा बढ़िया सा फोटो खींचना। अरे अब जैसा है वैसा ही आयेगा, वो क्या करेगा क्या बढ़िया कुछ कर देगा। नहीं, लेकिन सबके मन में कैसा भाव रहता है, जैसा हूँ वैसा नहीं। हमारे मन में अपनी एक इमेज होती है कि हमें ऐसे दिखना चाहिये। हम जैसे हैं वैसे नहीं, कुछ अलग, अपने मन में रहता है कि ऐसे दिखना चाहिये और एक और भाव हमारे भीतर रहता है कि लोग हमें किस तरह देखते होंगे। ये सारी स्थितियाँ कहीं ना कहीं ले जाके हमें मायाचारी की तरफ ले जाती हैं। एक फोटोग्राफर ने अपना संस्मरण लिखा कि उसने जब फोटोग्राफी शुरू की तो उसने अपने यहाँ पर एक बाहर बोर्ड लगा दिया कि आप जैसे हैं वैसा फोटो खिंचवाना हो तो ओनली फाइव रुपीज, सिर्फ पाँच रुपये में। आप जैसा सोचते हैं कि ऐसे हैं या ऐसे होना

चाहिये वैसा वाला फोटो - टेन रुपीज (दस रुपये)। आप जैसे लोगों को दिखना चाहते हैं वैसा वाला फोटो ट्वन्टी फाइव रुपीज (पच्चीस रुपये) और उसने लिखा अपने संस्मरण में कि पूरी जिन्दगी में फोटोग्राफी करता रहा, और जो सबसे सस्ता फोटो वो किसी ने नहीं खिंचवाया। सबने 25-25 रुपये वाला फोटो खिंचवाया। कोई नहीं चाहता कि मैं जैसा हूँ वैसा मेरा फोटो आये। जबकि वो सबसे सस्ता फोटो। इससे क्या ध्वनित होता है ? हमारे भीतर ऐसा भाव या तो संस्कारवश कह लेवें या कि हमारी असावधानी, अज्ञानता कह लेवें। इस वजह से होता है। यदि हम थोड़े से सावधान हो जायें और इस बात के लिये जागृत हो जायें कि भई जैसे हैं वैसे ही रहें ना। अगर अपने को वैसा नहीं पसन्द करते हैं तो अपने को इम्प्रूव करें। एक चेहरा लगाकर के क्यों जिये ? इतना भी यदि हम अपने मन में विचार कर लेवें, तब बहुत सारी चीजें जो जीवन में हम कर रहे हैं उनका स्टाइल चेंज हो जाएगा। कर्म तो सभी कर रहे हैं, बस कर्म करने के पीछे जो मानसिकता है वो बदलने से कर्म का फल बदल जाता है।

एक ही कर्म 10 लोग कर रहे हैं पर सब अपने-अपने अभिप्राय से कर रहे हैं तो वही कर्म उनके लिये अलग-अलग फल देगा। अभिप्राय बहुत कीमती है। कई बार ऐसा होता है कि अनजाने में नहीं चाहते हुये भी संस्कारवश, हमारा अभिप्राय मायाचारी का हो जाता है और सब इस चीज को जानते हैं कि त्रिलोक मण्डल हाथी का पूर्व जीवन अगर किसी को मालूम हो तो वे एक बहुत बड़े मुनि महाराज थे। वे एक गाँव में गये और वहाँ उस गाँव में जिस दिन वे पहुँचे उसके पहले एक और मुनि महाराज थे, वो महीने-महीने उपवास करने वाले बड़े तेजस्वी महाराज थे। वे वहाँ से गये और इनका वहाँ ऐसा कोई इन्सीडेन्स हुआ उसी जगह पर ये जाके बैठ गये। लोग तो इसी इम्प्रेशन में आये कि ये वो ही वाले मुनि महाराज हैं जो तपस्वी हैं और सबने इनकी पूजा-अर्चना करी और वाहवाही करी कि धन्य है हमारा सौभाग्य जो ऐसे महाराज के दर्शन हुए, जो इतने तपस्वी हैं। और ये चुपचाप सुनते रहे भीतर अभिप्राय गड़बड़ा गया। मिल रही है प्रशंसा तो आनन्दित होओ, एन्जाए करो। नहीं हैं वैसे तो भी एन्जाय करो। अभिप्राय खोटा हुआ। और इतने से खोटे अभिप्राय से, वे मुनि महाराज चाहते तो कह देते कि मैं वो वाला मुनि महाराज नहीं हूँ जिसकी कि आप प्रशंसा कर रहे हैं, मैं तो आज ही यहाँ आकर बैठा हूँ लेकिन भीतर में, और मन में आ गया कि ठीक है। उतने की वजह से, उस मायाचारी की वजह से तिर्यन्च आयु का बंध हुआ और त्रिलोक मण्डल हाथी की पर्याय प्राप्त हुई। ये प्रथमानुयोग का उदाहरण है। बहुत सावधानी की आवश्यकता है। हमें, हम जैसे हैं, कोई भले ही हमें

उससे ज्यादा माने, पर अपने भीतर अपने को उससे ज्यादा नहीं मानना चाहिये। जितना है उतना ही ठीक है। अन्यथा अपने हाथ से हम अपना घाटा करेंगे।

आज यही तो अपन कर रहे हैं। अपनी माली हालत जैसी है उसको किसी को नहीं दिखाना चाह रहे हैं; सबको ये दिखाना चाह रहे हैं कि हाँ उससे भी बेहतर जीवन जी रहे हैं। अपन रास्ते में किसी से मिलो और उससे पूछा - कैसे हो, कहेगा बहुत बढ़िया। कैसा चल रहा है, एकदम बहुत बढ़िया। सामने वाला भी सोचता है, अरे यार सच्ची में ही इनका बढ़िया चल रहा होगा। मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूँ कल से आप ऐसा शुरू कर दो कि आपको जो भी मिले उससे कहें कि हमारा तो कुछ ठीक नहीं सब गड़बड़ चल रहा है। लेकिन हम लोगों का कई बार ऐसी चीजें जो न बड़ी औपचारिकताएँ निर्मित कर ली हैं कि इनमें हम इतने मजबूर हो गये हैं, अपनी इन सब चीजों को जो कि वास्तविकता है उसको हम इगनोर कर देते हैं। और जो वास्तविकता नहीं है उसको हम प्रकट करते हैं। एक बार अगर हमारे जीवन में ये दिखावा आ जावे। फिर हमारे स्टेटस का सवाल है; घर में हमारे जो-जो चीजें है उनमें से अधिकांश रखना सिर्फ लोगों के दिखाने के लिये है। अगर इतनी चीजें नहीं रखेंगे तो फिर बेटे की शादी में इतने ज्यादा पैसे नहीं मिलेंगे और बिटिया की शादी नहीं होगी, बहुत मुश्किल होगा, दिखाना पड़ता है, ये इतना बड़ा घर मेरा और इतना सब कुछ देखिये मैं देऊँगा, उस फाइव स्टार होटल में आपको फर्स्ट क्लास में मेरिज करूँगा तो वहाँ पर इतना दिखावा। जबकि होना क्या है, जीवन जीना है और जो जीवन दिखावे से शुरू हो रहा है उस जीवन में उपलब्धि क्या होगी, भूल जाते हैं हम बहुत सारी चीजें आज दिखावे के लिये, प्रदर्शन के लिये, आ गई जिनका की जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। चाहे पहनना-ओढ़ना हो, चाहे खाना-पीना हो, गहना हो, सारी चीजों में हम क्या कर रहे हैं ? हमारा अभिप्राय कहीं ना कहीं खोटा हो जाता है। अभिप्राय में हमारे मायाचारी आ जाती है कि ऐसा करूँ जिससे कि लोग इस तरह समझें। ऐसा करने से क्या होगा ? तिर्यन्च आयु का बन्ध होगा। इस तरफ हमारा ध्यान जाना चाहिये। आज जरूर हमने किसी पुण्य से मनुष्य जीवन पाया है लेकिन इस मनुष्य जीवन में अगर हमने इस तरह की चीज अपने जीवन में शामिल कर ली है तो कल के दिन ये वाला जो मनुष्य पर्याय है वो पूरी होने पर मेरी तैयारी कहाँ की होगी। मुझे बहुत आश्चर्य होता है, मुझे लगता था ये सुअर कैसे बनता होगा ? कोई जीव तो है उसे शूकर की पर्याय कैसे मिलती होगी ? मांसाहारी जीव भी हो तो उसके छोटे से बच्चे को गोद में लेने का मन करेगा। शेर के बच्चे को भी गोद में लेने का मन करेगा। बहुत प्यारा लगेगा जबकि शूकर के छोटे बच्चे को भी छूना पसन्द नहीं करेंगे। बताओ आप जबकि छोटे बच्चे तो किसी के

भी हों, बहुत प्यारे लगते हैं। साँप के बच्चे को भी छोटा बच्चा पकड़ना चाहेगा इतना सुन्दर लग रहा है। लेकिन शूकर के बच्चे को नहीं पकड़ेगा। ये पर्याय कैसे पाई होगी। उसमें लिखा हुआ है कि जो व्यक्ति अत्यन्त अहंकारी होता है और इतना ही नहीं, जो मुनिजनों के साथ कुटिलता का व्यवहार करता है, उनके साथ छल-कपट करता है, वो शूकर की पर्याय ..... जिसे कोई फिर छूना पसंद नहीं करता है। एक किताब निकली है 'भावत्रयी' जिसमें कौनसी पर्याय हम किस भाव से पाते हैं ये लिखा है, उसमें मैंने यह पढ़ा। बहुत दिन से मन में यह प्रश्न था। अभी पिछले बार की ही ये बात है ये किताब नई फिर से प्रिन्ट हुई और उसमें पढ़ा। ऐसे-ऐसे भाव हमारे हो जाते हैं। हम देखते हैं संसार की विविधता तो हमारे मन में प्रश्न तो उठते होंगे कि ये ऐसा कैसे बना ? ये ऐसा कैसे हो गया होगा ? इसने क्या किया होगा ? ऐसा अगर हम विचार करें तो कम से कम इतना तो हो सकता है कि वैसे परिणाम होने लगें तो अपने को संभाल लें भैया, अपने को ही करना है। नहीं तो ये स्थिति बनेगी अपनी। इस अपेक्षा से ये लिखा जा रहा है आचार्य भगवन्तों के द्वारा कि अपने परिणाम हम सँभालें कि कैसे परिणाम कर लेने से हमें कैसी खोटी पर्याय प्राप्त हो जाती है और इतना ही नहीं हम लोग फिर अब जब मायाचारी करते हैं और वो छिपती नहीं है वो तो प्रकट हो जाती है तो हम तर्क देते हैं। अपनी मायाचारी प्रकट होने लगने पर ये भी अपन के स्वभाव में है इसको बदलना पड़ेगा।

क्या हुआ एक बार एक व्यक्ति के घर में धोबी होगा। उसके यहाँ गधा था कपड़े वगैरह ले जाने के लिये। तो दूसरा कोई धोबी आया और उसने कहा कि क्यों भैया आज हमारा तो थोड़ा गधा अस्वस्थ सा है आप अपना वाला दे दो। अब उसको तो देना नहीं था, कहीं गया हुआ है ऐसा कह दिया। अब लेकिन गधा तो भीतर बँधा है, उसी समय आवाज आ गई उसकी, जो बाहर लौटने वाला था लगता तो है भीतर है वो मालिक बोलता है कि तुम्हें कैसे मालूम कि भीतर है तो वो बोला कि गधा ही तो आवाज दे रहा है। तो बोला कि निकलो बाहर निकलो मैं ऐसे आदमी पर विश्वास नहीं करता जिसे मनुष्य की आवाज पर तो विश्वास ना हो। मैं कह रहा हूँ मेरी बात पर तो विश्वास नहीं है और गधे की बात पर विश्वास कर रहे हो। आरगूमेन्ट देखो आप, उसका तर्क देखो आप। वो कह रहा है निकलो आप, मैं ऐसे आदमी को गधा दे ही नहीं सकता। जिनको मेरी बात पर भरोसा नहीं है और गधे की बात पर भरोसा है। ये तो एक उदाहरण है ऐसा हम अपने जीवन में कितना कुछ करते हैं कभी याद करें कि अपने काम बनाने के लिये छोटी-छोटी सी चीजों में हम किस तरह से छल कर लेते हैं। किस तरह से दूसरे के साथ कपट कर लेते हैं। दूसरे के साथ तो छोड़ो अन्ततः वह होता अपने ही साथ है। आत्म प्रवंचना सबसे

निकृष्ट मानी गई है। सोचते हैं दूसरे को ठग रहे हैं पर ठगते स्वयं को हैं। अच्छा, जिनके बाल सफेद हो जाते हैं तो वो अपने बालों में खिजाब लगाकर उसको काला बनाते हैं। तो क्या वो दूसरे को ठग रहे हैं, अरे अपने को ठग रहे हैं। एक व्यक्ति को बहुत सारे काले बालों में एक सफेद बाल दिखा। उसने उखाड़कर उसे अलग कर दिया। लोगों ने बोला क्यों ? तो बोले - अरे इतने सारे काले बालों में वो सुन्दर नहीं लगता था इसलिये ही तो अलग कर दिया जबकि भीतर में स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, अब बुढ़ापा आने वाला है। अब मेरे जीवन का अन्त निकट आने वाला है। इस बात को स्वीकार नहीं कर पाने की वजह से हम अपने साथ छल कर रहे हैं और उसको या तो काला बनाने की प्रक्रिया करते हैं या उसको हटाने की प्रक्रिया करते हैं। ये छोटा सा उदाहरण है कैसे हम अपने जीवन में अपने आपको ठगते हैं। आपके यहाँ पर वो कवि उन्होंने लिखी है एक कविता -

धोखा देने वाला धोखा दे रहा है इस अदा से कि वो जो

दे रहा है धोखा नहीं है, ऐसा नहीं है कि खाने वाला बुद्धु है।

धोखा खाने वाला धोखा खा रहा है इस अदा से कि वो जो

खा रहा है वो धोखा नहीं है।

धोखा धोखा होने के बाद भी फल रहा है,

दोनों मजे में हैं दोनों का काम चल रहा है।

दोनों का काम चल रहा है। धोखा देने वाले का भी, धोखा खाने वाले का भी। जो धर्म की जगह पर अधर्म का उपदेश करें तो वह भी अभिप्राय का खोटापन है जिससे कि तिर्यन्च आयु का बंध होता है। अत्यन्त छलकपट में रुचि लेना, स्वयं तो छलकपट करना ही लेकिन अगर कोई नहीं जानता है तो उसे भी छलकपट करने के लिए प्रेरित करना। अरे तुम तो ऐसा करो, तुम्हारा काम बन जाएगा। ऐसा भी अपन करते हैं। स्वयं तो कर ही रहे हैं लेकिन दूसरे को भी वैसा छल कपट करने की सलाह देते हैं। यह भी हमारे लिये तिर्यन्च गति में ले जाएगा। जाति, कुल और शील में दूषण लगाना। दूसरे के लिये इस तरह अपवादित कर देना। उससे भी तिर्यन्च आयु का बंध होता है। क्योंकि आपने दूसरे को अपवादित करके उसका भी तिरस्कार करना चाहा था, इसलिये आपको भी बाद में तिरस्कार मिलेगा। उस पर्याय में जीवन भर तिरस्कार मिलेगा और फिर कह रहे हैं कि विसंवाद करने में रुचि लेना। झगड़ा सुलझता हो इसमें रुचि नहीं, झगड़ा कैसे होता हो, इस बात में रुचि लेना। कैसे और बढ़ जावे ऐसे विसंवाद से अपन को बचना चाहिये।

झगड़े की भी जड़ क्या होती है ? दूसरे के तिरस्कार का भाव और तो कुछ नहीं होता। फिर कहते हैं मिथ्या साधनों से आजीविका चलाना। स्पष्ट है आज वर्तमान में अपनी आजीविका के लिये कैसे-कैसे धोखाधड़ी के काम करना पड़ रहे हैं, एक तरफ तो बहुत परिग्रह जोड़ने की लालसा और उससे अगर बच भी गये तो दूसरी तरफ इस तरह छल-कपट के परिणाम के साथ तो तिर्यन्च आयु बँधेगी और जीवन भर फिर तिरस्कार ही होता रहेगा और फिर कह रहे हैं कि सद्गुणों का लोप करना। ये बहुत देखने में आता है। दूसरे के सद्गुण देखने की इच्छा नहीं होती। दुर्गण की दृष्टि जाती है और जब क्या होता है किसी के भीतर सद्गुण हैं और वो ना देखे जायें तो उनका लोप ही हो गया। बताइये किसी के अन्दर, वो तो ये कह रहे हैं कि सौ भी दुर्गुण हैं लेकिन एक सद्गुण है तो हमें तो सद्गुणों को देखना चाहिये और अगर हम दुर्गुण को देख रहे हैं तो धीरे-धीरे वो सद्गुण भी उसके भीतर से लुप्त हो जायेगा। तब इस प्रवृत्ति से बचना चाहिये कि अपन दूसरे के भी दुर्गुणों को देखें।

और आखरी बात बहुत अधिक आर्त परिणाम के साथ मरण करना। बहुत आर्त परिणाम, बहुत दुःख के परिणाम के साथ को जो प्राप्त होते हैं तब उनके लिये भी यही दुःखद स्थिति प्राप्त हो जाती है। हमें यह सावधानी रखनी चाहिये। कोई हमारे आस-पास अगर मरण के समय बहुत आर्त ध्यान करता है हमें समझना चाहिये और स्वयं भी अपने जीवन में हमें सावधानी रखनी चाहिये कि ज्यादा आर्त परिणाम करूँगा, तिर्यन्च आयु बँधेगी, क्योंकि आयु का बंध कभी भी हो सकता है। हमारे परिणामों से रोज एक ही परिणाम से सातों कर्मों में स्थिति अनुभाग पड़ेगा किसी में कम किसी में ज्यादा। ये उसका केलकुलेशन है। मैंने उसके बारे में ज्यादा डिटेल आपसे नहीं कहा। उसका सामान्य रूप से एक उदाहरण है कि अगर एक ग्रास भी हम खाते हैं तो वह सात धातुओं में कन्वर्ट होगा, ठीक इसी तरह से एक परिणाम करते हैं तो सबमें हिस्सा जाता है उसका। जो जिस भाव से किया जा रहा है उसमें थोड़ा डोमिनेट रहेगा बाकि सबमें थोड़ा-थोड़ा जाएगा। लेकिन आयु कर्म की प्रक्रिया बिल्कुल अलग है। ये जितनी भी अपन चर्चा कर रहे हैं आयु कर्म की कर रहे हैं।

इसमें तो आठ मौके आते हैं पूरे जीवन में, जिसमें कि कभी भी हमें आयु बंध सकती है। दो-तिहाई जीवन बीतने पर पहला मौका, शेष बचेगी उसका दो-तिहाई बीतने पर दूसरा मौका, शेष बची फिर दो-तिहाई बीतने पर तीसरा मौका। 81 साल की आयु है तो चौवन साल में पहला मौका आयु बंध का आयेगा, शेष 27 में जब 18 निकल जाएँगे, दूसरा मौका, बची 9 में से फिर 6 निकल जाएँगे तब तीसरा मौका, बची 3 साल में से

फिर दो साल निकल गये चौथा मौका। 1 वर्ष बची उसमें से फिर 8 माह निकल गये फिर पाँचवाँ मौका। 4 महीने बची, मोटा हिसाब 3 महीने निकाल दो, छठा मौका। 1 महीना बचा उसमें से भी बीस दिन निकल गये सातवाँ मौका। 10 दिन बचे उसमें से भी 6 निकल गये आठवाँ मौका। फिर भी नहीं बँधी तो एक आवली एक समय मरण से पहले आयु बँधेगी। बस इतने ही अवसर हैं आयु बँध के। और इनमें हमें नहीं मालूम कि कब आयेगा वो अवसर और उस समय हमारे परिणाम कैसे होंगे ? बस जैसे होंगे वैसी ही आयु मिल जायेगी। जीवन भर अच्छा किया है और आयु बंध के समय चूक गये। मुनि महाराज ने जीवन भर तपस्या करी थी और आयु बँध का वो ही समय था जिस समय उनके भीतर छल-कपट आया। तिर्यन्च होना पड़ा बहुत बाद में उनको अपने पुण्य का भी फल मिला।

जैसे हम देखते हैं कि कुत्ता तो हो जाता है लेकिन कार में घूम रहा है ए.सी. में। जीवन भर के पुण्य अभी हैं तो लेकिन आयु बंध के समय चूक गये थे सो वह पर्याय मिली। कई मनुष्य हैं जो आयु बंध के समय अच्छे परिणाम करके मनुष्य बन गये हैं लेकिन जीवन भर दाने-दाने को तरसते हैं पशुवत् जीवन जीना पड़ता है। ये बात हमें अपने जीवन में अनुभव में रोज देखने में आती है इसीलिये बहुत सावधानी की आवश्यकता है इन आयु बंध के समय, एक दिन में आयु के बंध की चर्चा कर रहा हूँ। चाहता तो मैं चारों आयु बंध की एक दिन में ही कर सकता था कि ठीक है इन परिणामों से आयु बँधती है, लेकिन बहुत सेन्सीटिव मामला है आयु के बंध का, तो इसके मायने हैं कि हमें हमेशा सावधानी रखनी चाहिये। अभी थोड़ा बहुत कर लो क्या फर्क पड़ता है। बाद को सँभाल लेंगे। नहीं, उस समय अगर हम चूक गये तो हमेशा के लिये चूक गये, ऐसा सोचकर के सावधानी रखने की आवश्यकता है और मायाचारी से बचने का भाव, अपने अभिप्राय को खोटा नहीं होने देने का भाव और सावधानी हमेशा बनाये रखें। एक छोटा सा उदाहरण है कि एक सेल्समैन की नियुक्ति की गई थी। वो विदेश की कोई महिला थीं यहाँ इण्डिया में, बहुत सच्ची घटना है। तो वो लेडिज़ सेल्समैन थीं और उनका काम सिर्फ यह था कि जो कस्टोमर आये उसको, सिर्फ उसकी पसन्द में मदद करना। उसको कपड़े पसंद करवाने में, उसकी हैल्प करना। च्वाइस के मुताबिक सिर्फ इतना काम था। एक आई फेमिली तो उसमें उनको एक साड़ी खरीदना था, उनको जो साड़ी पसन्द आ रही थी माँ को, सेल्समैन उनसे कह रही थीं कि ये आपके शरीर पर इतनी बढ़िया नहीं लग रही, आप दूसरी ये ले लीजियेगा और वाकई में वो जो दूसरी, जिसकी सलाह दे रही थी वो बहुत अच्छी थी। लेकिन अब क्या करें कस्टमर का मन वही है, वो उनको मने और लोगों को देखने में

उतनी अच्छी नहीं लग रही थी वो ही लेके गईं। और जब वो लेके चली गई तो जो और कस्टमर थे उन्होंने कहा कि आप वो दिखाइयेगा जो आप उनके लिये सजेस्ट कर रही थीं, वो साड़ी हमें दिखाइयेगा। पूछा कि कितनी कीमत है बोले क्या बताऊँ, ये तो कुल 300 रुपए की है वो जो ले गई हैं वो तो 500 रुपए की थी। मैं उनको ये सजेस्ट कर रही थी कि ये आपके ज्यादा अच्छी लगेगी। तो उस कस्टमर को बड़ा आश्चर्य हुआ। असल में, जो व्यक्ति जितना निश्चल होगा वो उतना प्रामाणिक होगा। निश्छलता से और निष्कपट होने से प्रमाणिकता आती है। विश्वास बनता है। हम सोचते हैं कि छल-कपट करने से लाभ होगा। नहीं ..... प्रामाणिकता नहीं बनती। कोई भी व्यक्ति हमें प्रमाणिक नहीं मानेगा अगर हम उसके साथ छल कर रहे होंगे तो। जब ग्राहक ने कहा कि आप तो इतनी बड़ी सेल्समैन हैं। आप उन्हें जब वो 500 वाली पसन्द कर रहे थे तो आप उन्हें 300 वाली क्यों पसन्द करने को कह रहे थे कि ये ज्यादा अच्छी लगेगी। तो मालूम उन्होंने क्या कहा कि मैं यहाँ पर अपने ग्राहक के साथ छल करने के लिये नियुक्त नहीं की गई हूँ बल्कि उसकी पसन्द को समर्थन करने के लिये नियुक्त की गई हूँ। मुझे उससे छल करके क्या करना है ? मैं अपनी दुकान में 500 की कीमत की राशि बेचने के लिये उसको ये कहूँ कि नहीं ये अच्छी लग रही नही 300 की अच्छी लग रही है तो मैं उनसे यही कहूँगी कि ये ही अच्छी लग रही है। ये एक उदाहरण है। ऐसा क्या अपने जीवन में अपन नहीं कर सकते हैं। लेकिन अपन तो जल्दी से अपना ईमान खो देते हैं। छोटी-छोटी सी चीजों को लेकर के, वो भी सांसारिक चीजों को लेकर के। और जल्दी से अपने परिणाम खोटे कर लेते हैं। अभिप्राय अपना अच्छा रहे, दिखावे का ना रहे। दूसरे को ठगने का धोखा देने का ना रहे। जीवन भर अगर हम इस चीज को बनाये रखें तो फिर निश्चिन्त हो जायें कि हमको फिर अब तिर्यन्च में नहीं जाना पड़ेगा। हमने ऐसे परिणाम ही नहीं किये जिससे कि हमें उस स्थिति को प्राप्त करना पड़े। इसी भावना के साथ कि हम हमेशा अपने परिणाम सँभालते रहें। उन चीजों से बचें जो कि हमारे लिये अहितकारी हैं। ऐसे भावों के साथ बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी मुनि महाराज की जय।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 14

हम अगर इस संसार को बहुत गौर से, सावधानी से देखें तो यहाँ हम जो भी पाते हैं वे हमारे ही कर्मों का प्रतिफल है। हम जैसा करते हैं वैसा हम पाते हैं। जिस दिशा में हम चलते हैं वहाँ हम पहुँचते हैं। हम पाना कुछ और चाहें और करें कुछ और तो शायद हमारे सोचने से पाने का कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई व्यक्ति ये सोचे कि वो नदी के किनारे पहुँच जाये और उसके कदम बाजार की तरफ बढ़ रहे हों, तो कोई भी कह देगा कि आप सोच भले ही रहे हैं कि आप नदी पर पहुँचेंगे, लेकिन आपके कदम अगर बाजार की तरफ जा रहे हैं तो आप पहुँचेंगे तो बाजार। हम लोग अपने जीवन को अच्छा बनाना चाह रहे हैं, ये हमारा सोच है। लेकिन अकेले सोचने से हमारा जीवन अच्छा बन जाए, ऐसा संभव नहीं है।

हम अगर अपने जीवन में बीज कड़वा बोयें और फिर अगर सोचें की फल मीठे मिलेंगे तो क्या संभव है ? यदि हमें अपने जीवन को अच्छा बनाना है तो हमें ये भी देखना पड़ेगा कि जीवन को अच्छा बनाने वाली कौनसी चीजें हैं उनको मैं अपने जीवन में शामिल कर रहा हूँ या नहीं। या सिर्फ सोच रहा हूँ। हम लोगों के साथ एक मुश्किल और है कि हम दूसरे के प्रति विश्वास नहीं रखते लेकिन दूसरे से अपेक्षा रखते हैं कि वो हम पर विश्वास करे। हम दूसरों से घृणा रखते हैं लेकिन हमारी अपेक्षा होती है कि सब हमसे प्यार करें। ये दो चीजें हमारे जीवन को अच्छा बनने में बाधक बनती हैं। हम सोचते हैं कि अच्छा बनें लेकिन जीवन उस दिशा में ले जाते हैं जहाँ कि उसके बुरे बनने की संभावना है और दूसरी चीज दूसरे से हम अपेक्षा जैसी रखते हैं वैसा हम उसके प्रति अपना व्यवहार नहीं बनाते। हमने पिछले दिनों इन सब बातों को बहुत सावधानी से समझना शुरू किया है, ताकि हम थोड़ा बहुत परिवर्तन ला सकें।

आज हम मनुष्य हैं तो क्यों मनुष्य हैं ? आज अगर कोई पशु है तो क्या वह पशु होने के लिये मजबूर है या उसकी वो कमजोरी है। आज कोई नरक की तरह अपने जीवन को

जी रहा है, अभावग्रस्त, दरिद्र, दीनहीन और दुःखी होकर के अपने जीवन को बिल्कुल नरक बनाकर जी रहा है तो उसकी जिम्मेदारी किसकी है ? हाँ, यदि कोई बहुत सुख-सुविधाओं के बीच स्वर्ग की तरह अपने जीवन को जी रहा है तो उसके लिये उसने ऐसा क्या किया होगा, इस पर हमें विचार करना है।

ये चारों ही चीजें देखने में आती हैं। हम अपना नरक अपने हाथ से निर्मित करते हैं। हम पशु जगत में उनकी पशुता से परिचित हैं। हम मनुष्यों को भी सुख-दुःख दोनों महसूस करते देखते हैं और हमारे अन्दर एक ऐसा भाव आता है कि कोई ऐसी स्थिति भी होगी जहाँ कि अत्यन्त सुख होगा। जीव इन चारों रूपों में अपने-अपने भावों के अनुसार भ्रमण करता रहता है। मैं जैसा हूँ, वैसा क्यों हूँ ? इस पर तो जरूर हमको सोचना चाहिये। और इसी के लिये हम लोगों ने पिछले दिनों दो बातें समझी हैं। यदि मैं दूसरे का तिरस्कार करता हूँ तो मैं तैयार रहूँ इस बात के लिये कि मेरा भी तिरस्कार होगा और यदि मैं अपने जीवन में दूसरों के सुखों को देखकर के दुःखी होता हूँ या दूसरे के दुःखों को देखकर हर्षित होता हूँ तो मानियेगा कि मैं अपने जीवन को अपने हाथ से नरक बनाने की तैयारी कर रहा हूँ। अकेले सोचने से नहीं होता। तैयारी से ही जीवन बनता है। जैसी तैयारी होगी वैसा जीवन बनेगा। जैसा हम सोचते हैं सिर्फ वैसा ही जीवन नहीं बनता। सोचने के साथ-साथ जैसी हमारी तैयारी होती है, यदि हमारी तैयारी अपने जीवन को नरक के जैसे बनाने की है तो अन्ततः हम पायेंगे कि हमारा जीवन जैसे नरक में व्यतीत होता है वैसा ही व्यतीत हो रहा है और हम चाहें तो हमारे जीवन को स्वर्ग बना लें।

ये ठीक है कि स्वर्ग और नरक एक निश्चित जगह पर हैं लेकिन हमारा जीवन यहीं से जब नरक बनना शुरू होता है तो अन्ततः हमें नरक तक ले जाता है। ये मनुष्य एक ऐसी जगह है जहाँ से कि हम अपने जीवन को तय करते हैं कि हमें कहाँ ले जाना है। कौनसी हमारी तैयारी है। मैं फिर से मनुष्य होने की तैयारी कर रहा हूँ या कि मनुष्य से नीचे उतरकर के पशु होने की तैयारी कर रहा हूँ या अपने जीवन को यहाँ से नरक बनाना शुरू कर रहा हूँ या अपने जीवन को बहुत सुखी, समृद्ध और अच्छा बनाने के लिये मैं तैयारी कर रहा हूँ। ये चारों चीजें हमारे हाथ में हैं। इसमें कहीं कोई हमारी मजबूरी नहीं है कि हम वैसा ही अपना जीवन बनायेंगे जैसा कि हमारे कर्मों का उदय आयेगा। नहीं, हमारे अपने पुरुषार्थ से हम इन चारों दिशाओं में किसमें हमें जाना है, यह तय कर सकते हैं। सोचते जरूर हैं कि हम स्वर्ग जावें लेकिन जीवन भर तैयारी करते हैं नरक जाने की। ठीक ऐसे ही जैसे कि सोचते हैं कि नदी के किनारे टहलने जाने की, लेकिन कदम तो निरन्तर बाजार की तरफ

जा रहे हैं तो पहुँचेंगे कहाँ ? इस तरह यदि हम थोड़ा सा अगर विचार करें अपने जीवन के बारे में कि यहाँ जो भी हम ध्वनि करते हैं वो इस संसार में प्रतिध्वनि के रूप में हम तक लौटकर के आती है। जैसा हम करते हैं वैसा ही हमें अन्ततः जाना पड़ता है। आचार्यों ने हमें इसीलिये सावधान कर दिया कि यदि हम दूसरे के तिरस्कार के परिणाम रखेंगे तो हमारा तिरस्कार होगा। हम दूसरे के जीवन में दुःख देकर के खुशी होंगे तो अन्ततः हमारे जीवन में भी हमें दुःख पाना होगा। एक चीज और है, हम ये सोचते हैं कि हम जो चीज दूसरे के लिये कर रहे हैं, उससे हमारा कोई घाटा नहीं होगा। ऐसा लगता है कि हम दूसरे को तकलीफ पहुँचा रहे हैं लेकिन हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वो गाली हमारे ही मन को पहले गंदा करती है, उसके बाद बाहर आती है। जबान को गन्दा करते हुए आती है। बहुत सीधा सा, हम सबको मालूम है लेकिन उन क्षणों में हम भूल जाते हैं और हमें लगता है कि नहीं वो तो हम दूसरे के लिये कर रहे हैं, तो दूसरे की हानि होगी, मेरी नहीं होगी। पर ऐसा नहीं है। दूसरा हमारा शत्रु और मित्र बाद में होता है। अपने शत्रु और मित्र अपने परिणामों से हम स्वयं पहले होते हैं।

एक व्यक्ति रास्ते से चला जा रहा है और अगर उसे कहीं कोई पत्थर लग जाये, ठोकर लग जाये तो इस बात की संभावना ज्यादा है कि वो उस पत्थर को गाली दे या उस पत्थर को डालने वाले को गाली दे। या फिर तमाम व्यवस्थाओं को गाली दे। ऐसे बहुत थोड़े मौके हैं कि वो किसी को धन्यवाद दे कि पता नहीं और कौनसी बड़ी चोट लगने वाली थी, इतने ही में काम हो गया। ऐसा मन में आने वाले लोग पोइन्ट वन परसेन्ट होंगे। बाकी पहले नम्बर यही आयेगा कि पत्थर को गाली दें। फिर ध्यान आयेगा कि पत्थर को गाली लगेगी नहीं तो पत्थर डालने वाले को तो लगेगी, चलो उसी को दें, और नहीं फिर तो, पूरे सिस्टम को दें। पर गाली किसी को भी दी गई हो, पत्थर को दी गई हो या कि पत्थर डालने वाले को दी गई हो, लेकिन उससे उसको ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। देने वाले को फर्क पड़ेगा। जिसने मन कड़वा किया है, जिसने मन अपना खट्ठा किया है उसको फर्क पड़ने वाला है। ये छोटी सी चीज यदि हमारे समझ में आ जाये, तो फिर हम अपने परिणामों को आसानी से सँभाल पायेंगे।

हमने पता नहीं कितने बढ़िया भाव किये होंगे, अब तो उन भावों के बारे में विचार ही करना ऐसा लगता है कि क्या हमने कुछ ऐसा करा होगा। सचमुच मैं आपसे ईमानदारी से कह रहा हूँ कि जब-जब भी मनुष्य जीवन पाने के लिये मैंने पहले कौनसा पुरुषार्थ करा होगा, मैंने कैसे परिणाम करे होंगे, इस बात पर जब विचार करता हूँ तो लगता है इस बार

मामला कुछ गड़बड़ है। मनुष्य बनने के भी चांसेस कम हैं, अब अगली बार। क्योंकि मनुष्य बनने के लिये जिस तरह के परिणाम करने होते हैं वो परिणाम तो आज बहुत रेअर हैं और इसी वजह से मनुष्य होना बहुत दुर्लभ कहा गया है। हम कितने अच्छे परिणाम करते होंगे जब हम मनुष्य होते होंगे और फिर उसके बाद के परिणाम आज हमारे किस तरह के हो गये हैं तो ऐसा लगता है कि हमारी तैयारी अब इतनी भी नहीं है जितनी पहले हमने मनुष्य होने के लिये की थी। अब तो हमारी तैयारी हमें और कहीं नीचे ले जाने के लिये ही है। मनुष्य कैसे बनता है कोई। "अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य"व स्वभाव मार्दवं च"। दो सूत्रों में। मैं मनुष्य बना हूँ तो पहले क्या करा होगा। अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह। बहुत संतोषी रहा होऊँगा मैं पहले तब मैंने ये मनुष्य पर्याय पाई है। मैंने पाँच पाप किये होंगे अत्यन्त अल्प। न हिंसा की होगी, न झूठ बोला होगा, न चोरी की होगी, न मैंने किसी के प्रति अपनी आँख खराब की होगी। न मैंने किसी का शोषण करके अपनी सुख-सुविधा के लिए सम्पदा संचित की होगी। मैंने ऐसा कुछ किया होगा जिससे आज मुझे ये मनुष्य पर्याय मिली है और "स्वभाव मार्दवं च।" और मेरे स्वभाव में पहले से ही स्वाभाविक मृदुता रही होगी, कोमलता और सरलता रही होगी तब जाकर के मैं आज इस मनुष्य जीवन को प्राप्त कर पाया हूँ।

लेकिन आज हम गौर से देखें तो हमारे जीवन में कितना अधिक हमारे द्वारा किया जा रहा है पाप। इतना ही नहीं हमारे स्वभाव में मृदुता के स्थान पर कितनी दूसरे के प्रति कठोरता का व्यवहार होता चला जा रहा है। हमारी स्वाभाविक मृदुता धीरे-धीरे नष्ट होती चली जा रही है। जबकि हमने पहले इन सब चीजों को अपने जीवन में शामिल किया होगा। जिससे आज हम इस जीवन को पा सके हैं।

और भी बहुत सारे कारण आचार्य भगवन्तों ने लिखे हैं। दो सूत्रों में तो बहुत संक्षेप में लिख दिया है और भी बहुत से कारण हैं।

आप इतने स्नेही, इतने ममतावान और इतने योग्य हैं, आप भूल रहे हैं। आपने तो पहले इतने बढ़िया-बढ़िया काम किये हैं तो यदि आज हम अपनी किसी अज्ञानतावश या किसी संस्कारवश और या कि इनवायरन्मेन्ट की वजह से और उन सब बातों को भूल जाते हैं और कोई याद दिला देता है तो फिर से हमारे मन में एक साहस आ जाता है। शायद ये जो प्रक्रिया, जिस पर हम विचार कर रहे हैं, हमारे साहस बढ़ाने की ही प्रक्रिया है कि संतोष क्या चीज है ? और असंतोष क्या चीज है ? जिस संतोष के द्वारा हमने ये जीवन पाया है वो कैसा होता होगा। संतोष के मायने है कि जो प्राप्त है, उसमें आनन्दित

होना। इसका नाम ही संतोष है, पर इतना ही नहीं है और भी आगे बढ़ें, अपने जीवन से अधिक मूल्य वस्तुओं को नहीं देना। दूसरी चीज और तीसरी चीज जो प्राप्त नहीं हुआ है उसको लेकर के मन में कोई सोच नहीं होना। इतना सब होगा तब जाकर के मालूम पड़ेगा कि हाँ हमारे जीवन में संतोष है कि नहीं। नहीं तो सामान्य रूप से जब अपने पास सारी चीजें होती हैं तो अपन दूसरे से कहते पाये जाते हैं कि हम तो ठीक हैं, हमारा तो जीवन अच्छा चल रहा है, हमें तो ज्यादा हाय-हाय भी नहीं है, अब सब है इसलिये। नहीं, हमें और जरूरत नहीं है। हमें बहुत सेटिसफेक्शन है। हमें बहुत संतोष है हम बहुत संतुष्ट हैं अपने जीवन से। ऐसा कब कह रहे हैं जब सारी चीजें आपको उपलब्ध हो गई हैं तब। उसमें से एक-आध 'निल' कर दो और फिर भी कहो कि मैं तो संतुष्ट हूँ, तब समझ में आयेगा। जब आपके हाथ पर सारी चीजें मिल रही हैं हाथ बढ़ाते ही, तब आप कह रहे हैं कि हम तो बहुत सन्तुष्ट हैं। एक-आध दिन हाथ बढ़ाने पर ना मिले और तब भी चेहरे पर मुस्कुराहट ज्यों कि त्यों बनी रहे, तब समझ लेना कि अब आ गया है हमारे भीतर हर स्थिति में आनन्दित रहना। हर परिस्थिति में प्रसन्नचित्त बने रहना। तब कहलायेगी संतोष की साधना। समता की साधना इससे भी बहुत ऊँची है। जो प्राप्त है उसमें आनन्दित होना, जो प्राप्त नहीं है उसके लिये एफर्ट तो करना लेकिन वरीड नहीं होना। चिन्ता करने से थोड़े ही मुझे मिलेगा।

आचार्य महाराज कहते हैं किसी भी चीज की प्राप्ति संक्लेश से नहीं होती, विशुद्धि बढ़ाने से होती है और विशुद्धि बढ़ती कैसे है, जो प्राप्त है उसमें प्रसन्नता महसूस करना। उसमें मैं क्या बेहतर कर सकता हूँ ये भाव हमेशा बनाये रखना। तब जाकर के हमारे जीवन में ये अल्प परिग्रह और अल्प आरम्भ यानी संतोषपूर्वक जीवन-यापन होता है। कोई क्यों बहुत अधिक आरम्भ करता है, कोई क्यों बहुत अधिक परिग्रह की आसक्ति रखता है ? क्यों रखता है कभी सोचा है आपने, क्यों उसकी अपेक्षायें ज्यादा बढ़ जाती हैं ? अपेक्षाएँ बढ़ने का सिर्फ एक ही कारण है कि जो प्राप्त है वो दिखाई नहीं पड़ता। ..... ये साइक्लोजी है कि जो चीज प्राप्त हो जाती है लाइफ में, फिर उसकी इम्पोरटेंस खत्म हो जाती है। हम कर देते हैं उसकी इम्पोरटेंस खत्म। एक जगह लिखा है कि जिनके निकट हम रहते हैं उनसे प्रभावित नहीं होते और जिनसे प्रभावित होते हैं उनके निकट रह नहीं पाते। हाँ ये एक हमारी अपनी मानसिकता है कि जो-जो चीज हमें प्राप्त हो जाती है, ईजिली प्राप्त हो या कि बहुत एफोर्ट करने के बाद प्राप्त हो। बहुत एफोर्ट के बाद प्राप्त होगी तब भी कुछ दिन के बाद वो हमें उतना सुख नहीं दे पायेगी जितना कि वो जब प्राप्त नहीं थी तब दे रही थी। सोच-सोचकर और हम बहुत आनन्दित होते थे कि वो चीज जिस दिन

मुझे मिलेगी अरे वाह। और जब मिल गई तो हाँ ठीक है। अब वो दूसरी दिखने लगी जो अभी नहीं मिली है। ..... ये मन की प्रवृत्ति है। असन्तुष्ट मन की प्रवृत्ति है। मिलने पर सुख नहीं मालूम पड़ता और मिलने पर और अधिक दुःख होना। मिल जाने के बावजूद भी देख लो मजा, मिल गई लेकिन कम मिली। जब तक नहीं मिली तब तक तो ठीक था। मिल गई है तो कम मिली है इस बात का दुःख। मोर एण्ड मोर फिर और चाहिये। ये असंतोष की तासीर है। इसको समझना पड़ेगा। अपने भीतर ये एनालेसिस करना पड़ेगा कि मुझे जब कोई चीज नहीं मिलती है, तब मैं कितना आकुल विकल होता हूँ या कि कम होता हूँ। नहीं मिली, ठीक है। मिल जाये ऐसी भावना भायें, उसके लिये प्रयत्न करें यहाँ तक तो ठीक है, लेकिन नहीं मिली है कोई चीज, उस चीज के लिये निरन्तर चिन्तित हैं, आकुल-विकल हैं, जो मिली है उसका कोई आनन्द नहीं, उसका कोई सुख नहीं, तो ये अच्छी स्थिति नहीं है और दूसरी चीज कि अब मिल गई है, तो इतनी सी क्यों मिली, हम तो हमेशा इस चीज को देखते रहते हैं अच्छे-अच्छे धर्मात्मा लोगों में, हाँ थोड़ी मिली तो और क्यों नहीं ?

सामान्य अधर्मी की तो छोड़ो बात। आप पूजा-पाठ करने वाले को धर्मात्मा मानते हैं कि नहीं, मुनिजनों को, आहार देने वाले को धर्मात्मा मानते हैं कि नहीं, चौका लगाने वाले को धर्मात्मा मानते हैं कि नहीं ? तो फिर किसी के यहाँ अगर पहले दिन ही आहार हो जाये तो, उसके यहाँ पहले दिन हो गया ? उसके तो आनन्द है। लेकिन जिसके यहाँ नहीं हुए हैं उसकी तकलीफ देखो आप। और मजा ये है कि उसके यहाँ फिर हो भी जाये चार दिन के बाद तब एक नई तकलीफ, चार दिन बाद हमारे यहाँ गये, उनके तो दो बार हो चुके तब हमारे यहाँ गये। "हो गये" इसका कोई आनन्द नहीं, लेकिन वो जो उनके यहाँ पर दो बार हुए हैं, तब हुए हैं और दस दिन के बाद हुए हैं। बताइये, ये प्रवृत्ति हमारी सबके भीतर है। हमारा कोई लोस नहीं हुआ है, लेकिन दूसरे का बेनीफिट हो गया है ये तकलीफ। मजदूर लगाये गये हैं काम पर, सेठ के यहाँ बहुत बड़ा काम है और सुबह से मजदूर आ रहे हैं और वो काम कर रहे हैं। छत डाली जाती है ना, उस पर बहुत मजदूर चाहिये। अचानक थोड़ा मालूम पड़ा कि थोड़ा फास्ट करना पड़ेगा। वरना शाम पड़ने वाली है या कि बारिश आने वाली है तो जल्दी से हो जाये तो 100 मजदूर और बुलाये गये। 12 बजे बुलाये गये और बाकी मजदूर सुबह आये थे। लेकिन शाम को जब पेमेन्ट होने लगा और सबको बराबर दिया जाने लगा तो जो सुबह आये थे उनको बहुत तकलीफ। जबकि उनको पूरा दिया गया है। सुबह से शाम तक काम करने का जो उनको पूरा दिया जाना था वो उनको पूरा मिला है। किस बात की तकलीफ। ये 12 बजे से आये

थे फिर भी इनको उतना ही मिल रहा है और मैं सुबह से आया हूँ तो भी इतना ही। मैंने बिल्कुल पूरा आहार बनाया सवेरे से और ये बीच में आ गये इनको चार और हमें एक। अरे भैया, वो जो एक दिया है उसका कोई सुख नहीं पर ये जो इसने चार दिये इसकी पीड़ा खाये जाती है। जबकि लोस कुछ भी नहीं हुआ।.... ये है असंतोष की तासीर। ये है असंतोष की भाषा। अपने भीतर झाँक करके देखना छोटी-छोटी चीजों में उदाहरण से। अपने भीतर। मैं कोई कमेन्ट नहीं कर रहा हूँ। आप समझ गये होंगे। अपन तो विचार कर रहे हैं, बैठ करके बड़े मजे से। जबकि अपन बैठे हैं कि देखो कैसी-कैसी बातें हैं हमारे भीतर। अगर हम एनालाइज करें अपने भीतर, कितनी जल्दी आ जाती हैं ये चीज। क्यों नहीं आ पातीं ऐसी बात ? क्यों नहीं मिलता इस चीज का आनन्द कि मुझे जो प्राप्त है उसको देखूँ ? और दूसरे को जो प्राप्त है उसको देख करके मैं ईर्ष्या ना करूँ। ये सारी चीजें मेरे फिर से मनुष्य होने की तैयारी की हैं। ये ध्यान रखना और यदि मैं ऐसा नहीं कर रहा हूँ तो इसका मतलब है कि मैं अब अगली बार मनुष्य नहीं बन पाऊँगा। अगर मेरे मन में इस तरह के विचार उठते हैं तो कहीं ना कहीं कोई कमी जरूर है। मुझे इन विचारों से बचने का प्रयत्न करना चाहिये।

क्या हुआ, नेपोलियन के टाइम की बात है। नेपोलियन की आर्मी में बहुत लोग थे। और नेपोलियन को पढ़ने का बहुत शौक था। लाइब्रेरी में था उस समय तो कोई अपनी किताब निकालना चाह रहा था ऊपर से, तो चूंकि उसकी हाइट कम थी और नहीं बन रहा था तो आर्मी में एक व्यक्ति और था जो सैनिक था उसने कहा कि आई एम ओनली वन हायर इन योवर आर्मी। मैं निकाल देता हूँ मैं आपकी आर्मी में सबसे ऊँचा आदमी हूँ। तब मालूम है नेपोलियन ने कहा नोट हायर बट टालर। हायर तो मैं हूँ। तुम ऊँचे हो ये बात मत कहो। तुम लम्बे हो ये कहो ऊँचा तो मैं हूँ। अब बताइये ये मानसिकता किस चीज की सूचना देती है। ऐसी ही मानसिकता हम सबकी है। हम किसी को अपने से ऊँचा देखना पसन्द नहीं करते। हम किसी को अपने से ज्यादा गुणवान देखना पसन्द नहीं करते। ये हमारी मानसिकता हमें कहाँ ले जाएगी? किस बात की तैयारी है ? देखें अपन, हम किसी को प्रशंसा के दो शब्द न स्वयं कह सकते हैं न सुन सकते हैं। ये कहाँ की तैयारी है ? ये हमें गौर से देखना पड़ेगा।

दो तरह की विनय होती है। एक होती है आत्मिक विनय और एक होती है वैधानिक विनय। जो कि आज बहुत है। मेरा स्वार्थ सध रहा है इसलिये विनय कर रहा हूँ। पर वो जो एक आत्मिक विनय है वह ''स्वभाव-मार्दवं च''। अत्यन्त स्वाभाविक मृदुल। हम कई

जगह मृदु बन जाते है, जहाँ हमारा काम सधता है। वहाँ हम हाथ-पैर जोड़ते हैं, साष्टांग हो जाते हैं। बटरिंग जिसको हम कहते हैं आज की भाषा में। सब समझते हैं वो भी एक विनय का तरीका है। लेकिन यहाँ कह रहे हैं कि "स्वभाव मार्दवं चः"। जिसके स्वाभाविक मृदुता है, जिसके आत्मिक कोमलता है, जिसको सहज रूप से ये चीज प्राप्त हुई है, जिसने कोई बाहर से एक आवरण की तरह ओढ़ा नहीं है, मृदुता को। तब आकर के हम मनुष्य बने होंगे। असल में, ये स्वभाव की मृदुता मनुष्यता के साथ-साथ थोड़ा सा आगे बढ़ने में मदद करती है। देवता बनने के लिये भी उस पर अपन अलग कल विचार करेंगे। "स्वभाव-मार्दवं च" में जो च शब्द लगता है, उसके लिये आचार्य भगवन्त कहते हैं कि स्वभाव की मृदुता मनुष्य बनने में भी कारण है और स्वभाव की मृदुता देवता बनने में भी कारण है। दोनों ही चीजें हैं।

अब और जो कारण हैं उन पर थोड़ा सा अपन विचार कर लें। बहुत भद्र परिणाम, दूसरे का जिसने कभी विरोध न किया हो। वो भद्र ! परिभाषा है आचार्य भगवतों की। हाँ जो कभी किसी का विरोध न करता हो। विरोध की भाषा नहीं बोलता हो। पापी का भी विरोध नहीं करता हो। पाप का विरोध करता है पापी का नहीं करता। वो भद्र है। भद्र मिथ्यादृष्टि जो कि विदेह जाकर के अपना कल्याण कर लेंगे, यहाँ से जायेंगे 123, उसमें भद्र की परिभाषा बनाई कि जो सच्चाई का विरोध नहीं करता है। हमेशा दूसरे का हित चाहने वाला परिणामी ही भद्र परिणामी है, तब जाकर के मनुष्य जीवन मिला होगा अपन को। ऐसे परिणाम अपन ने किये होंगे। बहुत विनीत स्वभाव, कषाय अत्यन्त अल्प, चार बातें शांति से सुनने की क्षमता। चालीस कहने की क्षमता नहीं है। हाँ चार सुनने की क्षमता तो है लेकिन चालीस तो क्या अपन को तो दो कहने की भी नहीं, क्यों भैया अपन को क्या करना। वर्णी जी के जीवन का उदाहरण है। उनसे चाहे जो जैसी कह देवे या कि कोई अपनी सुना जावे कि वर्णी जी उनने हमसे ऐसी कर ली और उन्होंने हमारे प्रति ऐसा व्यवहार कियो, 'ऐ भैया' कर लेने दो अपन ने तो नहीं करो, कोई बात नहीं। ये है कषाय की अल्पता। हमें भीतर देखना पड़ेगा कि जब कहीं कोई बात आती है तो हम उसे प्रोलाँग करते हैं, बढ़ाते हैं या उसे वहीं का वहीं सबसाइड करके समाप्त कर देते हैं। जब भी कोई झगड़े की बात आती है, जब भी कोई बैर विरोध की बात आती है उसे हम बढ़ाते चले जाते हैं या कि तुरन्त उसमें पानी डाल देते हैं। जैसे आग जलती है और हम पानी डाल देते हैं आगे नहीं बढ़ने देते। ये भीतर अपने झाँक कर देखना पड़ेगा तब मालूम पड़ेगा कि कषायें मंद हैं, अल्प हैं या ज्यादा ?

फिर कह रहे हैं स्वभाव सरल। न ऊधो को लेने, न माधो को देने। ठीक है भैया जैसा है वैसा ठीक है। फिर कह रहे हैं स्वागत तत्परता। अपन लोगों ने पिछले दिनों मनुष्य आयु के लिये थोड़ी सी तैयारी करी थी, धर्म ध्यान किया था। मैंने पहले ही कह दिया था कि जो लोग शामिल हों वो संक्लेश न करें जैसे ही संक्लेश होने लगे किसी भी काम में वहाँ से हट जाना क्योंकि हम अगर इस कार्य को कर रहे हैं तो सिर्फ आत्म-कल्याण की दृष्टि से कर रहे हैं। स्टेशन पर किसी को लेने पहुँचे हैं तो बहुत धर्मध्यान कर रहे हैं। लोग कहने लगे इसमें भी धर्मध्यान। देख लो धर्म ध्यान। स्वागत तत्परता। मनुष्य आयु के बंध का कारण है स्वागत तत्परता। पधारे आपके लिये और कोई सेवा मेरे योग्य। हो गया। फिर कह रहे हैं शुभ समाचार कहने में रुचि। अच्छे समाचार अभी तो अपन लोगों की रुचि है, ''काहे तुमने सुना उनको ऐसा हो गयो'' ''कैसो'' ? खराब हो गयो तभी तो इतने धीरे से कह रहे हैं। अच्छा हो गया इसके बारे में नहीं। शुभ-समाचार देने की रुचि नहीं है अशुभ समाचार तो आप पेम्फलेट बिना छपवाये एक से भर कह दो आप। पूरे जयपुर में फैल जाएँगे। लेकिन अगर कोई बहुत अच्छा काम होना है, हमें तो पता ही नहीं लगा। और इससे मालूम पड़ता है कि रुचि किसमें है। अशुभ समाचार देने में रुचि है या कि शुभ समाचार देने में रुचि है। अकलंक स्वामी तत्वार्थ राजवार्तिक में लिख रहे हैं, बहुत व्यवहारिक सी बात कि जो हमेशा शुभ समाचारों को देने में तत्पर है, अशुभ समाचार किसी को नहीं सुनाता हो। बताइये वो मनुष्य हुआ होगा। अपन ने पहले ऐसा करा होगा।

लोकयात्रानुग्रह, जो तीर्थ यात्राओं को स्वयं ले जाते हैं और तीर्थ यात्रियों की सेवा करते हैं जैसे कि कोई अपने यहाँ से तीर्थ यात्रा निकले और अपन को पता चल जावे तो तीर्थ यात्रियों की सेवा कर रहे हैं तो कह रहे हैं कि मनुष्य बनने की तैयारी है। लोकयात्रानुग्रहः उसकी धर्म की यात्रा में हमेशा सहयोगी बनना। फिर कह रहे हैं ईर्ष्या-रहित परिणाम वो तो अपन विचार कर चुके हैं। अतिथि सत्कार में रुचि। अतिथि दो प्रकार के हैं एक लौकिक अतिथि जो अपने घरों में आते हैं और एक पारलौकिक अतिथि जो कि संयमपूर्वक और अपने जीवन को व्यतीत करते हुये और मोक्ष-मार्ग की यात्रा में यहाँ से वहाँ चले जाते हैं बिना बताए। जिनके आने-जाने के लिये तिथि निश्चित नहीं होती, ऐसे संयम को पालन करने वाले साधुजन, आचार्य, उपाध्याय अतिथि हैं, इनकी सेवा करना और जो लौकिक अतिथि हमारे घरों में आते-जाते हैं वे अतिथि उनकी सेवा करना। दोनों तरह से। ये अतिथि सेवा में जिनकी रुचि होती है कई लोग होते हैं जिनकी अतिथि सेवा में बहुत रुचि होती है और दानशीलता, ये सारी चीजें हमें मनुष्य बनने के लिए तैयारी के लिए

जरूरी हैं। अपन ने पहले ऐसी तैयारी करी होगी। अभी तो अपन को संसार की चीजें पाने की तैयारी है। अगर पाना ही है तो मनुष्य पर्याय पाने की तैयारी करें ना। क्या-क्या पाया अपन ने ये तो देखें। कैसे पाया होगा ? दुरस्त हैं दोनों आँखें, दुरस्त हैं दोनों हाथ-पैर, बढ़िया है शरीर, मन भी विकल नहीं है। मन भी स्वस्थ है अब इतनी सब चीजें कैसे पायीं होंगी ? ये सब, इनको देखें। अभी तो अपन ये देखते हैं कि ये खाने-पीने की चीज अच्छी नहीं मिली। पहनने-ओढ़ने की चीज अच्छी नहीं मिली। ये ऐसा नहीं मिला। अरे ये चीजें जो अपन थोड़ा सा प्रयत्न करें, मिल जाती हैं लेकिन जो पाया है वो कितने प्रयत्न करने से पाया होगा, आगे हमें ऐसा ही पाने का प्रयत्न करना चाहिये। ये छोटी-मोटी चीजें पाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। ये इतना बड़ा स्थान जो मिला है जिसमें हम रह रहे हैं, ये छोटा-मोटा मकान तो कोई भी कन्सट्रक्ट कर सकता है। इसको कन्सट्रक्ट करने के लिए कैसे परिणाम किये होंगे, कैसे कर्म किये होंगे। कर्म जिससे कि ये बना जिसमें कि हम रह रहे हैं। अपने रहने के लिये तो ये बनाया है। खिड़की बनाते हैं और खिड़की में कौनसे वाले परदे (करटेन) डालते हैं इसकी तैयारी करते हैं और ये वाली खिड़की जिससे देखते हैं इसकी कितनी तैयारी करना पड़ी होगी इसके बनाने की। इससे ठीक-ठीक दिखाई पड़े, उसकी जैसे खिड़की बनाने की और दरवाजे से निकलने की कितनी बढ़िया डिजाइन करते हैं। ऐसा ही इसके लिये कितना एफोर्ट किया होगा, ये विचार करना पड़ेगा।

एक बाबाजी के पास पहुँचा था एक युवक, उसने सुना था कि बाबाजी के पास में एक ऐसा पत्थर है जिससे सब सोना हो जाता है। सुनी आपने कहानी। अरे ऐसी कहानी सुनना चाहिये आपको। पढ़ना भी चाहिये ऐसी कहानी बढ़िया सी। सुनी होगी आपने लेकिन हम दूसरे ढंग से सुना देंगे। अगर हमने सुनाई भी होगी तो। तो वो बाबाजी के पास पहुँचा और उसने कहा मुझे मिल सकता है क्या पारस पत्थर। कहा 'नहीं' उसने। वो तो सेवा करने लगा। सेवा से प्रसन्न होकर ये अपने आप दे देंगे। और वाकई में 12 साल तक सेवा करी उसने। एक दिन उसने कहा कि बाबा अब जाऊँगा मैं। तो बाबा ने कहा बोल क्या माँगता है ? वो पारस पत्थर दे दो बाबा। बाबा तो पहले ही जानते थे कि पारस पत्थर माँगेगा और उसी के लिये सेवा कर रहा है। यह "स्वभाव-मार्दवं च"। स्वभाव की मृदुता है। मेरा सत्कार सेवा कर रहा है उसके पीछे इसका इन्टेन्शन है तो उतना ही मिल के रह जाएगा। अगर कोई वैधानिक विनय होगी, अगर किसी स्वार्थवश हमने विनय की होगी तो बस स्वार्थ की पूर्ति हो जाएगी और अगर सहज विनय होगी, स्वाभाविक विनय होगी तो वो प्राप्त हो जाएगा जो उस विनय से वास्तव में प्राप्त होना चाहिये। बाबाजी ने

कहा ..... वो खप्पर है ना, उसके नीचे वहाँ रखा हुआ है। बड़ा आश्चर्य हुआ उसको कि इतनी कीमती चीज जिसके लिये मैं 12 वर्ष से तपस्या कर रहा हूँ। हम तो सोच रहे थे कि कहीं छिपा के रखा होगा। निकालेंगे हमारे सामने। कहीं नहीं, उधर रखी है खप्पर में। अरे इतने दिन से हमें मालूम होती तो कभी के उठा के चलते बनते। ऐसे विचार आ गये देखना। उठाकर के प्रणाम करके थोड़ी दूर गया। लेकिन साधु के समीप रहा हुआ व्यक्ति था। हाँ, भले ही झूठ मूठ रहा था लेकिन उसके मन में थोड़े परिणामों की निर्मलता आ गई थी। सो उस परिणामों की निर्मलता से विचार आया कि इन्होंने इतनी सहजता से इतनी कीमती चीज दे दी। इसका मतलब है कि कोई और कीमती चीज इनके पास है। लौट आया वापिस, नहीं चाहिये। क्यों नहीं चाहिये ? अब मुझे वो चाहिये जिसकी वजह से आप इतनी कीमती चीज को छोड़ पा रहे हैं। बस ये है संतोष जिसमें हम संसार की चीजें छोड़ने को तैयार हो जाते हैं अपने आत्म-कल्याण के लिये। ऐसा व्यक्ति ही अपना आत्म-कल्याण कर सकता है जो इतना संतोषी होगा और कोई विशेष बात नहीं है। हम चाहें तो अपने जीवन में इन सब बातों से शिक्षा लेकर के और अपने जीवन को बहुत अच्छा बना सकते हैं। इसी भावना के साथ कि हम रोज-रोज थोड़ी-थोड़ी सी बातें करके और बैठ रहे हैं, सीख रहे हैं, इसमें से जितना भी जिसके जीवन में रह जाये। मुझे तो बार-बार यही लगा करता है और कई बार मैं कह भी देता हूँ आपसे कि बहुत कुछ अपने को इस जीवन में करना है। आज करें तो अपने को करना है, कल करें तो करना है। इस जीवन में करें तो, अगले जीवन में करें तो करना अपने को ही है। क्यों ना फिर हम आज ही से शुरू करें। थोड़ा-थोड़ा शुरू करें। जितना हमें लगता है कि हम कर सकते हैं उतना करें। कल कर लेंगे ऐसा नहीं सोचें। आज कितना कर पायेंगे ऐसा सोचे। जो मिला है उसे मैंने कैसे पाया होगा। ये सोचकर के आगे मुझे अगर ऐसा ही पाना है तो मुझे क्या करना चाहिये। ये करना हम शुरू करें और अपने जीवन में वस्तुओं से ज्यादा महत्व हम अपने आपको दें। चेतना को दें और जो प्राप्त नहीं है उसको लेकर के चिन्तित ना हों क्योंकि ये संसार की चीजें एक दिन मिलती हैं, एक दिन बिछुड़ जाती हैं। मुझे जो पाना है वास्तव में, मैं उसके लिये क्यों न प्रयत्न करूँ। इनके नहीं मिलने पर मैं चिन्तित नहीं होऊँ। इस तरह अगर इन दो-तीन बातों को हम ध्यान में रखकर के और अपने जीवन को कोई अच्छी स्टाइल दें तो हमारा जीवन अच्छा बन सकता है। इसी भावना के साथ बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी मुनि महाराज की जय।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 15

हम सभी लोग एक ऐसी प्रक्रिया पर विचार कर रहे हैं जिससे कि हमारा पूरा व्यक्तित्व निर्मित हुआ है और आगे भी हमें अपने व्यक्तित्व को किस तरह निर्मित करना है ये भी हमारे हाथ में है। इस सबकी जानकारी के लिये हम लोगों ने पिछले दिनों एक प्रक्रिया शुरू की है, उसमें जो एक बात आई थी कि हम जैसा चाहें वैसा अपना जीवन बना सकते हैं तो इसका आशय क्या है? हम जैसा चाहें तो हम तो बहुत अच्छा चाहते हैं फिर बनता क्यों नहीं है ? तो जैसा चाहें वैसा जीवन बना सकते हैं, इसका आशय समझना पड़ेगा। जैसी हमारी दृष्टि होगी वैसा हमारा जीवन बनेगा। अब दृष्टि हमें अपनी स्वयं जैसी हमारी चाहत है वैसी बनानी पड़ेगी। हम अपने जीवन को जैसा चाहते हैं हमें फिर वैसी ही दृष्टि से सारे संसार को देखना पड़ेगा। क्योंकि बहुत गौर से हम इस बात पर विचार करें और देखें, अनुभव करें तो जैसा हमारा दृष्टिकोण होता है, वैसा ही हमारा जीवन बन जाता है। भले ही हमारा कैसा ही जीवन रहे, अभावग्रस्त जीवन भी हो लेकिन हमारी दृष्टि निर्मल है तो फिर हमें किसी चीज का अभाव भी तकलीफ नहीं दे पायेगा। और बहुत सारी चीजों का सद्भाव भी हो लेकिन हमारे अन्दर दृष्टि ठीक ना हो और हम हमेशा यही सोचते रहें कि कम है और होना चाहिये। तो बताइये क्या हम उन सारी चीजों से अपने जीवन को सुखी बना पाएँगे उन चीजों के सद्भाव में भी ? इतना महत्वपूर्ण है हमारे अपने दृष्टि का ठीक होना। और जब भी हम ये कहते हैं कि हम जैसा चाहें वैसा अपना जीवन बना सकते हैं तो उसके मायने यही है कि हम जीवन को किस दृष्टि से देखते हैं।

हम रागपूर्ण दृष्टि से देखते हैं या कि द्वेष देखते हैं या कि समतापूर्वक अपने जीवन को देखते हैं, ये हमारे ऊपर निर्भर है। चाहे जैसा जीवन हमें वर्तमान में मिला हो अपने पूर्व के संचित कर्मों के फलस्वरूप मिला हो। लेकिन यदि उस जीवन में हम अपनी दृष्टि को ठीक रखें तो आगे के जीवन को भी हम बहुत ऊँचाई दे सकते हैं। हमने समझा है कि यदि हम

सबके प्रति दुर्भावना रखते हैं और दूसरे के सुख में स्वयं दुःखी होते हैं तो मानियेगा ये हमारी दृष्टि हमें नरक की तरफ ले जाएगी। यदि हम अपने को ही सब कुछ समझते हैं और सबका, गुणवान का भी तिरस्कार करते हैं तो अन्ततः हम अपनी मनुष्यता और देवत्व से नीचे गिरकर के, पशुता के लिये तैयारी कर रहे हैं। यदि हम संतोषपूर्वक जो प्राप्त है उसकी तरफ देखते हैं और अप्राप्त के लिये हम चिन्तित नहीं हैं और ना ही जो प्राप्त नहीं है हमें उसके लिये कोई दुःख है, हम जितना है उतने में सन्तुष्ट हैं, तो हम तैयारी कर रहे हैं फिर से मनुष्य होने की और यदि इससे भी ज्यादा ऊँचे उठ जायें, यदि हमारी दृष्टि इतनी निर्मल हो जाये कि हम राग-द्वेष इन दोनों से पार होने के लिये प्रयत्न करें तो जरूर हम अपने जीवन को देवत्व की तरफ ले जा सकते हैं। इसके मायने है जब ये कहा जाये कि हम जैसा चाहें वैसा जीवन बना सकते हैं तो इसके मायने हैं कि हम अपनी दृष्टि को जिस तरह की दिशा दे दें वैसा ही मेरा जीवन बनना शुरू हो जाता है।

एक सेठजी के यहाँ पर एक व्यक्ति काम करता था, नौकरी करता था। जब खाली टाइम होता था गपशप का, तो सेठजी और भी सबको बिठाकर के और चुटकुले वगैरहा सुनाते थे। क्या बोलते, जोक्स वगैरह ताकि थोड़ा इन्टरटेन हो, लेकिन अब कितने दिन तक सुनायेंगे वो, तो फिर वो ही चुटकुले रिपीट होने लगे। लेकिन अब चूंकि सेठजी सुना रहे हैं इसलिये हँसी नहीं आने पर भी हँसना पड़ता था, बनावटी हँसना पड़ता था। और एक व्यक्ति तो उसमें ऐसा था कि उसको जैसे ही सेठजी ने चुटकुला शुरू किया और हँसना शुरू कर देता था ताकि सेठजी प्रसन्न रहें। अब एक दिन ऐसा हुआ कि सेठजी ने चुटकुले सुनाए। सब तो हँसे लेकिन वो ही जो सबसे ज्यादा हँसता था, वो नहीं हँसा। तो सेठजी ने कहा कि क्यों तुमने आज चुटकुले नहीं सुने हैं, तो उसने कहा कि रोज सुनता हूँ आज भी सुने हैं कोई नई बात नहीं है। अरे तो तुम्हें हँसी नहीं आई। तो उसने कहा कि अब हँसने का क्या काम ? कल से मैं तो आपकी नौकरी छोड़ रहा हूँ। समझ में आया, कल से आपकी नौकरी छोड़ रहा हूँ, अब हँसने का क्या काम। ऐसा ही हम अगर अपने जीवन में अपना दृष्टिकोण बना लें कि अब तो इस संसार से पार होने की प्रक्रिया शुरू कर रहा हूँ, क्या शत्रु और क्या मित्र, क्या राग और क्या द्वेष, क्या किससे लेना और क्या किसका देना। शांतिपूर्वक अपना जीवन जीना है किस-किसकी नौकरी-चाकरी करें। किस-किसके मुताबिक हँसे, किस-किस के मुताबिक रोएँ, किस-किसको सन्तुष्ट करें। संसार में इतना ही तो करना पड़ता है अपने लिये और क्या करते रहते हैं दिन भर। अगर ऐसी हमारी दृष्टि बन जावे कि सिर्फ मुझे अपने आत्म-कल्याण के लिये जो करना है वो करना

है। सारी दुनिया को सन्तुष्ट करना है तो आज तक कोई भी नहीं कर पाया। भगवान भी नहीं हो पाये ऐसे कि जो सबको सन्तुष्ट कर सकें अपने जीवन से। नहीं है ''अतावे जमाना नहीं है खिताब के काबिल, तेरी रजाये है कि तू मुस्कुराये जा''। ये नेहरू जी को साहू शांतिप्रसादजी ने सुनाया था। उन दिनों जब वो जरा परेशान थे। तब नेहरूजी ने कहा कि मैं बहुत मुश्किल में हूँ जहाँ-जहाँ सँभालता हूँ वहाँ मुश्किल खड़ी हो जाती है। किस-किसको सँभालू, किस-किस को समझाऊँ। उनको शैरो-शायरी का शौक था तो ये सुनाया था और ये इतना बड़ा मेसेज है कि संसार में ऐसे ही रहना चाहिये। अगर इस संसार से पार होना चाहते हैं तब। राग-द्वेष दोनों का नाम ही संसार है और संसार कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। कोई अलग-अलग चीज नहीं है हमसे हमारे भीतर ही है वो। जितना राग-द्वेष है उतना संसार हमने अपने हाथ से निर्मित कर लिया है और जितना हम उसको कम करते चले जाएँगे उतना हमारा संसार कम होता चला जाएगा। ''सराग संयम-संयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि देवस्य।''

आचार्य भगवन्तों के चरणों में बैठें, उमास्वामी महाराज के और उनसे पूछें कि मैं मनुष्य हूँ और क्या कभी देवताओं जैसी ऊँचाई छू सकता हूँ तो वो कहते हैं कि हाँ, अगर हम अपने जीवन को संयमित और नियन्त्रित कर लें लेकिन ध्यान रहे दृष्टि की निर्मलता के साथ आत्म-नियन्त्रण की प्रक्रिया होनी चाहिये। हम लोग अपने जीवन को कई वजह से अनुशासित और नियन्त्रित कर लेते हैं। चार लोगों में यश और ख्याति पाने के लिये जीवन में नियन्त्रण हम कर लेते हैं जिससे कि वाहवाही हो कि कित्ते बढ़िया व्यक्ति हैं। कितने उपवास करे इन्होंने, कितनी साधना है इनकी, कितनी तपस्या है इनकी, ऐसी ख्याति पूजा के लिये भी हम कई बार अपने जीवन को नियन्त्रित कर लेते हैं। उसकी चर्चा नहीं है दृष्टि की निर्मलता के साथ अगर आत्म-नियन्त्रण है। मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है इसलिये बहुत सारी चीजें मैंने छोड़ रखी हैं, ये संयम नहीं कहलाएगा। हाँ जब मैं स्वस्थ हो जाऊँगा, तब भी इन चीजों को ग्रहण नहीं करूँगा तो हो गया फिर संयम। विदेश में अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत सारी चीजें नहीं खाते लोग। अपने यहाँ पर भी यदि डॉक्टर अपन से कह दे कि ये चीज मत खाना, नहीं तो तबीयत और बिगड़ जाएगी और मरना पड़ेगा, फिर तो आप बिल्कुल छोड़ देंगे, लेकिन उसके पीछे, उस नियन्त्रण के पीछे कहीं कोई दृष्टि की निर्मलता नहीं है। आत्म कल्याण की दृष्टि ही वास्तव में दृष्टि की निर्मलता है। ऐसी दृष्टि से अगर हम संयम का पालन करते हैं, सराग संयम इसलिये कह दिया कि जो संयमी है, वे मुनि, साधु-संत कहलाते हैं, लेकिन जब वे धर्मोपदेश देते हैं,

आहार-विहार इत्यादि करते हैं तो यह क्रिया थोड़ी सी राग से युक्त तो है भले ही प्रशस्त राग है, कल्याणकारी है स्वयं के लिये भी दूसरे के लिये भी, इसलिये इसे सराग संयम कहते हैं। ऐसा आत्म-नियन्त्रण जिससे कि अभी परोपकार भी हो रहा है। ये अगर अपने जीवन में दृष्टि की निर्मलता के साथ यदि हम अपने ऊपर लगाम लगा लेवें, अपने ऊपर स्वयं अंकुश रख लेवें, अपने इन्द्रिय और मन के विषयों को सीमित कर देवें, तो संभव है कि हम अपने आगामी जीवन में देवत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

आचार्य भगवन्तों ने लिखा कि पुण्य का अर्जन करके देवत्व प्राप्त करना ज्यादा कठिन नहीं है, लेकिन महाव्रतों का पालन करके और ध्यानपूर्वक कर्मों की निर्जरा से देवत्व प्राप्त करना महादुर्लभ है। हम ये ही तो चाहते हैं कि हमारे जीवन में देवत्व आये। हम देवता बनें स्वर्ग के। ये बिल्कुल अलग बात है कि कब बनेंगे हम। जब तक हमारे भीतर यहाँ मौजूदा जिन्दगी में देवत्व नहीं आयेगा, जैसे अपन कह देते हैं कि भैया बड़े देवता आदमी हैं। मतलब ज्यादा राग-द्वेष में नहीं पड़ते किसी के, ज्यादा प्रपंच में नहीं पड़ते, सीधी सी बात है। अपना आत्म-नियन्त्रित जीवन जीते हैं। यही तो देवत्व है वो यहाँ जब आयेगा तब जाकर के देवताओं वाली पर्याय मिलेगी। यहीं से शुरूआत करनी पड़ेगी। कदाचित् किसी की सामर्थ्य ना हो अपने को पूरी तरह से आत्म-नियन्त्रित करने की, जैसे कि मुनिजन आत्म-नियन्त्रण का पालन करते हैं वैसी ना हो तो सद्गृहस्थ है, श्रावक के व्रतों का पालन करता है। जीवन को थोड़ा-थोड़ा अच्छा बनाना शुरू किया है तो अब जरूर से एक दिन बहुत अच्छा जीवन बन जाएगा। श्रावक भी दृष्टि की निर्मलता के साथ अगर वो अपने व्रतों का पालन करता है, ख्याति, पूजा, लाभ की आकांक्षा नहीं है, कोई शारीरिक सम्बल पाने के लिये, या शारीरिक बल बढ़ाने के लिये, स्वास्थ्य के संरक्षण के लिये, या भयभीत होकर के अनुशासन नहीं है। आत्मानुशासन है यदि श्रावक के जीवन में भी, तो वो भी देवत्व की ऊँचाई पाने के लिये कारण बनेगा और अब। अगर ये दोनों दृष्टि की निर्मलता के साथ हैं तो बहुत ऊँचे देवों में जाकर उत्पन्न होंगे और अगर ये दोनों चीजें दृष्टि की निर्मलता के साथ नहीं हैं तब फिर देवता तो बनेंगे, मगर देवताओं में भी बहुत केडर हैं। एक तो किंग टाइप के देवता हैं और एक पिऑन टाइप के देवता भी हैं, ये ध्यान रखना। आप देवता का मतलब ये मत समझना, उनमें भी बहुत केडर हैं। इन्द्र है वहाँ और एक जगह किलविष जाति के भी देव हैं जो कि बिल्कुल सभा के बाहर जहाँ जूते-चप्पल उतारे जाते हैं बिल्कुल वहाँ बैठने को मिलता है उनको पूरी जिन्दगी भर और एक बैठा रहता है लॉर्ड बनकर के, इन्द्र बनकर के। आपने अगर अपने जीवन को आत्म-नियन्त्रित तो किया है लेकिन ख्याति पूजा लाभ आदि की आकांक्षा से किया है, दृष्टि की

निर्मलता नहीं रही है तो देवत्व तो पायेंगे आप लेकिन निकृष्ट देवों में उत्पन्न होंगे। ऐसे ही श्रावक के जीवन में, ऐसे ही साधु के जीवन में इसलिये दृष्टि की निर्मलता अत्यन्त आवश्यक है। यदि दृष्टि निर्मल नहीं है अर्थात् ''आत्म अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन-छीन'', यदि आत्मा और अनात्मा के बीच का हमें भेद विज्ञान नहीं है तब फिर हम जो-जो भी बाह्य आचरण करते हैं चाहे मुनियों के समान आचरण करें, चाहे श्रावक का आचरण करें लेकिन वो हमें देव पर्याय की प्राप्ति तो कराएगा, लेकिन सौधर्म इन्द्रादि जो स्वर्ग के देव हैं उनकी प्राप्ति नहीं। उतनी ऊँचाई नहीं पहुँच पायेगी उतना देवत्व नहीं आ पायेगा। ये सावधानी रखने की आवश्यकता है। ''सम्यक्त्वं च।'', इसलिये अगला वाला सूत्र जोड़ा है कि कोई अगर व्रत नियम संयम ना भी ले, लेकिन अकेले अगर दृष्टि की निर्मलता है तो यह डेफिनेट है कि वो ऊँचे देवों में ही उत्पन्न होगा। एक मात्र देवायु का ही बंध करेगा और यदि दृष्टि की निर्मलता नहीं है, देव तो बनेगा पर उतनी ऊँचाई नहीं छू पायेगा। ऐसा लिखा हुआ है कि मिथ्यात्व के साथ भी देवायु का बंध हो सकता है, आत्म-नियन्त्रण की वजह से। आगे कह रहे हैं कि ''अकामनिर्जरा बालपतांसि देवस्य।''

देव तो ये भी बनते हैं जो कि मजबूरी में परवश होकर भोग-उपभोग की सामग्री का त्याग कर देते हैं। कारागार में, जेल में बन्द कर दिया गया वहाँ पर सारी सुख-सुविधाएँ छीन लीं। जमीन पर सोना पड़ रहा है। ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ रहा है। सब मजबूरी में करना पड़ रहा है, परवश होकर के। उसमें जो कर्मों की निर्जरा होगी उससे भी देवायु का बंध होगा, वह ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। हाँ, और बाल तप, मिथ्यात्व के साथ नाना प्रकार के वेश बनाकर के और फिर जो तपस्या की जाती है वो बाल तप कहलाती है। ऐसे मिथ्या दृष्टि के द्वारा की जाने वाली तपस्या भी उसे देव पर्याय की प्राप्ति में निमित्त बन सकती है। लेकिन अगर देव पर्याय पानी है तो दृष्टि की निर्मलता के साथ पाना। सम्यग्दर्शन के साथ पाना। क्यों ? कहीं-कहीं पर देव पर्याय की प्रशंसा करी और कहीं पर देव पर्याय की प्रशंसा नहीं करी, क्यों ? अगर मिथ्यात्व के साथ देव पर्याय पाओगे तो वहाँ जाकर के भोग-विलास में इतने रच-पच जाओगे कि जितनी कमाई करी वो सब वहाँ गँवा करके और अन्ततः निकृष्ट पर्याय पाओगे और अगर सम्यग्दर्शन के साथ देवों में गये तो फिर क्या है उस भोग-विलास की सामग्री मिलने पर भी उससे निस्पृह होकर के धर्मध्यान के ज्यादा अवसर हैं। उन सबको प्राप्त करके तीर्थंकर के समवशरण में साक्षात् भगवान के चरणों में बैठकर के और अपने आत्म-कल्याण के लिये लगते हैं और मरण के समय कभी सम्यग्दृष्टि दुःखी नहीं होता। देव पर्याय के भोग-विलास छूटने पर वो कहता है कि

बहुत अच्छा रहा। अब जाता हूँ। वहाँ पर मनुष्य में उत्पन्न होकर के मैं तो अपनी मुक्ति की साधना करूँगा। तब वो देव पर्याय उसके लिये लाभकारी हो जाती है। इसलिये दृष्टि की निर्मलता के लिये एक सूत्र अलग से रखा कि ''सम्यकत्वं च''। सम्यग्दर्शन के द्वारा तो देव पर्याय ही हमारे लिये आगे जीवन को ऊँचा उठाने में कारण बनती है। भैया ये तो जीवन एक बीज की तरह हमारे हाथ में आया है। अगर हम गौर से देखें ये तो एक बीज है, इस बीज को कहाँ कैसे बोना है, किन भावनाओं की जमीन में बोना है, ये पर्याय एक सीड (बीज) की तरह है। आप जैसी जमीन में बोयेंगे, आप तिर्यन्च बनना चाहें, मनुष्य से मनुष्य बनना चाहें, देव बनना चाहें, नरक जाना चाहें, चौराहे पर खड़े हैं, चारों रास्ते खुले हुए हैं, और किसी के लिये नहीं खुले हैं, नरक से कोई नरक में नहीं जा सकता, देव में नहीं जा सकता, सिर्फ मनुष्य और तिर्यन्च में आ सकता है। देव से पुनः कोई देव में नहीं जा सकता, नरक में नहीं जा सकता मनुष्य और तिर्यन्च हो सकता है। तिर्यन्च से कोई भी चारों जगह जाये तो जा सकता है और मनुष्य से चारों जगह जा सकता है। तिर्यन्च में भी बहुत रिस्ट्रिक्शन्स हैं, कहाँ-कहाँ कितनी दूर तक जा सकते हैं। मनुष्य में जहाँ चाहें, वहाँ जा सकते हैं।

और एक बहुत बड़ी चुनौती भी है। हम अपनी उस सुविधा का लाभ उठाना चाहें तो लाभ उठा सकते हैं और उसको चूकना चाहें तो चूक भी सकते हैं। इसलिये जैसे कि एक बीज (एक सीड) जैसी भूमि पाता है वैसा आगे बढ़ जाता है।

मुझे वो उदाहरण याद आ गया। सुना ही देता हूँ, फिर थोड़ी सी चर्चा करूँ इन सूत्रों पर। एक पिता ने अपने बच्चों को और कुछ बीज सौंपकर के और तीर्थयात्रा की तैयारी करी थी। तीन बच्चे थे और तीनों को बीज सौंप दिये। मैं लौटकर के आऊँगा और वापिस ले लूँगा। वे उत्तराधिकारी किसको बनायें, इस बात के लिये चिन्तित थे और परीक्षा करना चाहते थे कि तीनों बेटों में सबसे ज्यादा योग्य कौन है ? तीनों को बीज सौंपकर के चले गये। वापिस लौटे तो पहले वाले से पूछा कि क्या किया उन बीजों का, पहले वाले ने कहा कि आपके लौटने के इन्तजार में तो वो बीज खराब हो जाते इसलिये मैंने बेच दिये। आप कहियेगा मैं फिर से बाजार से खरीदकर के आपको दे देता हूँ। लेकिन पिता ने कहा कि वे बीज तो नहीं हैं जो मैंने तुम्हें सौंपे थे। उसने कहा हाँ ये तो मिस्टेक हो गई और दूसरे ने यही सोचा था कि पिताजी अगर वो ही बीज माँगें तो क्या करेंगे तो उसने तिजोरी में बन्द करके रख दिये थे। लेकिन वर्षों के बाद जब निकाले तो वे तो सब घुन गये थे, खराब हो चुके थे। बीज तो थे लेकिन वो सब खराब हो चुके थे। दूसरे ने इस तरह से बीजों

को सँभाला और तीसरे वाले ने कहा कि पिताजी सब बीज रखे हुए हैं। अभी देखेंगे और ले गया वो पीछे जो थोड़ी सी जमीन पड़ी थी घर में। उसमें वो बीज डाल दिये थे जिनमें से कि पौधे उग आये थे और एक-एक पौधे में कई-कई बीज। उसने कहा कि पिताजी ये बीज ज्यों के त्यों वे तो नहीं हैं उन्हीं की संतान हैं ये। कौन है सबसे ज्यादा योग्य, सब समझ रहे हैं। लेकिन अपने जीवन में झाँककर देखना पड़ेगा। ये तो कहानी है। अपने जीवन में झांक के देखना पड़ेगा कि जो जीवन ले के आये थे उसको कहीं कोड़ियों के दाम बेच तो नहीं दिया अपन ने। और कहीं भोग-विलास में लगाकर के उसे सड़ने के लिये मजबूर तो नहीं कर दिया। ठीक तिजोरी में रखे हुये, सड़ गये जो बीज हैं, क्या सचमुच, हमने उसे अपने भावनाओं की निर्मलता की जमीन में, दृष्टि की निर्मलता की जमीन में बोकर के। दृष्टि की निर्मलता कैसी, जिससे कि मेरे जीवन से सबको लाभ मिले। ये बीज सबके लिये सुगन्ध फैलायें इसके लिये उसने थोड़ी सी जमीन में उनको बो दिया था। जिनसे कि फूल निकलें और सबको सुगन्ध मिले और अपना भी कुछ बिगड़ा नहीं, ज्यों के त्यों बने रहे। क्या जीवन को इस दृष्टि से नहीं जिया जा सकता ? इस दृष्टि से अगर कोई अपने जीवन को जीता है तो वो तो यहाँ भी देवत्व के साथ जी रहा है, आगे भी वो अपने जीवन को उस ऊँचाई तक ले जा पाएगा जहाँ कि ये स्वर्ग के देव क्या देवाधिदेव पहुँचे हैं, उस ऊँचाई तक भी अपने जीवन को ले जा सकता है।

हमारा चुनाव हमें स्वयं करना पड़ेगा कि हमें क्या चुनना है अपने जीवन में। ये चारों चीजें अपन ने समझीं। बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह चुनना हो तो, हम नरक चुन रहे हैं मान के चलें। अगर छल-कपट की जिन्दगी चुननी हो तो मानियेगा कि तैयारी है पशु बनने की। और अगर संतों का जीवन चुनना है, मानियेगा कि मनुष्य होने का चांस फिर से एक और मिलेगा और अगर थोड़े से ऊपर उठकर के अपने जीवन को ऐसा जीयें जिससे कि अपना भी आत्म-कल्याण हो और सब जीवों का मेरे माध्यम से आत्म-कल्याण हो, ऐसी दृष्टि से भी जीवन को जिया जा सकता है तब फिर हम देवताओं के जैसी ऊँचाई को भी हासिल कर सकते हैं और भी इन दो सूत्रों के अलावा जब अकलंक स्वामी के चरणों में बैठते हैं तो वे बहुत छोटी-मोटी बातें बता रहे हैं कि अगर देवता बनना है, स्वर्ग के देव बनाना है, कैसे परिणाम होते होंगे ? हम क्या वैसे परिणाम कर सकते हैं। इसके बारे में कह रहे हैं कल्याण मित्र संसर्ग। इससे भी देवायु का बंध होता है। हमेशा ऐसा मित्र चुनना जो कि आत्म-कल्याण की बात करता हो। ऐसा कल्याण मित्र सौभाग्य से मिलता है। अपने आत्म-कल्याण के लिये कोई चिन्तित हो यह तो बहुत सामान्य सी चीज है, लेकिन कोई किसी के आत्म-कल्याण के लिये चिन्तित हो ऐसा

मित्र मिलना तो बहुत कठिन है। वो कह रहे हैं कि कल्याण मित्र संसर्ग जैसे कि वारिषेण मिल गये थे पुष्पडाल को। 12 वर्ष तक छाया की तरह उनके साथ रहे और उनके मन में उठने वाले विचारों को पहचानते रहे और एक दिन जब बिल्कुल ही स्थिति ऐसी हो गयी कि पुष्पडाल अब गिरे, तब गिरे, तब जाकर के ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर दिया जिससे कि हमेशा के लिये वे सँभल गये।

ऐसा कल्याण मित्र मिलना जीवन में भैया ऐसे मित्र तो मिलते हैं कि आओ जरा पार्क में घूम कर आयें। आओ जरा थियेटर में चल करके आयें। आओ जरा और किसी जगह इन्टरटेन करें। लेकिन ऐसे मित्र मिलना बहुत कठिन है कि आओ आज बैठकर के जरा तत्त्व चर्चा कर लें। आओ बैठकर के थोड़ा भगवान का ध्यान कर लें, आज पूजन कर लें, अपन दोनों एक साथ बैठकर के। आओ आज तो थोड़ा सा सुनकर आयें जरा कल्याण की दो बातें। ऐसे मित्र मिलना आज के समय में बहुत मुश्किल है। ऐसे मित्र दूसरे के बनना, कोई ना मिले अपने लिये, कोई बात नहीं है, लेकिन अपन ऐसे मित्र बनेंगे दूसरे के तो फिर अपने लिये देवत्व की प्राप्ति हो सकती है। दूसरा मिले या ना मिले ये तो हमारा पुण्य लेकिन हम ऐसे मित्र बनें दूसरे के जब भी बन पायें तो उससे हमारा ही कल्याण होगा। उसका तो हो जाएगा। एक चीज कह रहे हैं कि कल्याण मित्र संसर्ग और फिर दूसरा कह रहे हैं कि आयतन सेवा। सच्चे देव गुरु शास्त्र की सेवा करना और इतना ही नहीं जो सच्चे देव गुरु शास्त्र के फोलोअर हैं उनकी भी सेवा करना।

बताइये अगर हम पूजा करके लौटे हैं तो भगवान की सेवा करी या जिनालय की सेवा करी हमने, लेकिन जो जिनालय के दर्शन करके लौटा है उसके साथ अगर हमने अच्छे से व्यवहार नहीं किया है तो इसके मायने क्या है, क्या यह आयतन की सेवा कहलायेगी। आयतन छः होते हैं कि नहीं होते। जिनेन्द्र भगवान, गुरु और शास्त्र और उनके फोलोअर्स। वो भी आयतन है बताइये, हम सब एक-दूसरे के आयतन हैं अगर देखा जाए तो क्योंकि सब सच्चे देव, गुरु, शास्त्र के भक्त हैं तो हम एक-दूसरे के लिये कल्याण में निमित्त हैं। आयतन तो वो ही है जो कि हमारे कल्याण में निमित्त बने। तो क्या हमारे अपने साधर्मी के बीच ऐसा सेवा का भाव नहीं होना चाहिये। जरूर से होना चाहिये? ये आयतन की सेवा कहलाएगी। इससे भी हमारे अन्दर देवत्व की प्राप्ति होती है और फिर कह रहे हैं, धर्म श्रवण। धर्म श्रवण करना भी देवत्व की प्राप्ति में कारण बनता है, बन सकता है क्या? लगता तो नहीं है, क्योंकि बहुत लोग सुनते हैं धर्म श्रवण तो, सब क्या देवता बनेंगे? जिसकी दृष्टि धर्म श्रवण से निर्मल बन जाएगी वो जरूर निमित्त बनेगा।

एक कारण बनेगा। धर्म श्रवण, है आपको याद उस चोर का नाम तो मुझे याद नहीं है लेकिन वो चोर था, हाँ विद्युत चोर होगा जिसको कि उसके पिताजी ने कहा था कि सुनो उस रास्ते से मत जाना वहाँ पर भगवान महावीर का समवसरण है। वहाँ से जाओगे तो गड़बड़ हो जाएगी। तुम्हारी चोरी सब छूट जाएगी। उपदेश अगर सुनने में आ गया कानों में। और एक बार ऐसा मौका आया कि उधर से निकलना पड़ा तो दोनों कानों में उसने उँगली लगा ली थी, सुनना ना पड़े लेकिन उतने बीच में उसको काँटा लग गया और काँटा लग गया तो उसको निकालने के लिये हाथ छोड़े, उतने में दो शब्द कान में पड़ गये कि देवों के पलकें नहीं झपकतीं और छाया नहीं पड़ती। चल रही होगी वहाँ चर्चा समवसरण में देवों की, देवों की छाया नहीं पड़ती और पलकें नहीं झपकतीं।

धर्म संयोग से श्रेणिक के मंत्री अभय कुमार के द्वारा वह पकड़ा गया। पकड़ने के बाद में अभय कुमार ने सोचा कि इससे कैसे करवायें पता कि इसने अपराध किया है चोर है, तो ऐसा बना दिया बिल्कुल कि जैसे वो स्वर्ग में पहुँच गया हो। और देवी देवता सब खड़े हुए हैं सेवा में जब उसको तो कोई दवाई पिलाकर के बेहोश कर दिया था और जब वह उठा तो देखा और कहा गया उससे कि अब तुम देव हो और स्वर्ग में आ गये हो। तुमने क्या-क्या अपने जीवन में अपराध किये उन सबको कह दो क्योंकि अब तो तुम स्वर्ग में आ गये हो। उसको भी एक बार लगा कि आ गये लगता है स्वर्ग में, लेकिन देखा कि इन लोगों की तो पलकें झपक रही हैं और इनकी छाया पड़ रही है, भगवान महावीर स्वामी झूठ नहीं बोल सकते। उन्होंने तो कहा था कि देवों की तो पलकें नहीं झपकती, उनकी तो छाया नहीं पड़ती। मतलब ये सब मेरे साथ फ्राड किया जा रहा है। ये सब बेईमानी है, उसने कुछ नहीं बताया और जब कुछ भी साबित नहीं हो सका कि चोर है, तो अभय कुमार ने कहा कि जाओ साबित तो हो नहीं सका, पर कुछ ना कुछ बात जरूर है, तुम बच नहीं सकते थे मेरी चतुराई से, कैसे बच गये तब फिर उसने अभय कुमार के चरणों में झुक कर कहा ऐसा पूछते हो तो मैं यही कहूँगा कि मुझे किसी और ने नहीं बचाया, जिनेन्द्र भगवान की वाणी ने बचा लिया। जब मुझे जिनेन्द्र भगवान के दो शब्दों ने इस विपत्ति से बचा लिया तब अगर मैं उनके पूरे धर्म को श्रवण करूँ तब तो मैं संसार की हर विपत्ति से ही बच जाऊँगा। धर्म श्रवण भी हमारे जीवन को बहुत बड़ी ऊँचाई दे सकता है।

ये उदाहरण है अपने प्रथमानुयोग में। आज भी हम इसको अपने जीवन में लागू कर सकते हैं। लेकिन दृष्टि निर्मल होना चाहिये। धर्म श्रवण मेरे कल्याण में कारण बने ऐसी

दृष्टि से, कितनी कम भी बुद्धि क्यों ना हो दो बातें तो सबके समझ में आती हैं भैया अपने कल्याण की। किसके समझ में नहीं आती और कब समझ में आ जाये यह कहा नहीं जा सकता। जब समझ में आ जाये तभी जो है अपने कल्याण के लिये तत्पर हो जायें। कोई व्यक्ति ऐसी भावना भाये तो भी देव पर्याय मिलेगी। धर्म श्रवण की भावना भले ही कुछ समझ में नहीं आता हो, चलो बैठेंगे। एक व्यक्ति को सुनाई नहीं पड़ता था, दिखाई नहीं पड़ता था ऐसा उदाहरण आता है और सभा में सबसे आगे बैठता था। लोगों ने उससे पूछा कि तुम सुन तो पाते ही नहीं हो, ना देख पाते हो। बोला कि नहीं, ये दो आँखें बाहर की भले ही न देखती हों, ये बाहर के कान भले ही न सुनते हों लेकिन मेरी अन्तर आत्मा सुनती है। मेरी अन्तर आत्मा देखती है। हाँ, मैं आगे बैठता हूँ। मैं अपनी अन्तर आत्मा से देखता हूँ, मैं सुनता हूँ अपने अन्तर आत्मा से वो आवाज, मेरे कल्याण की आवाज और भैया जो अपने अन्तर आत्मा की आवाज न सुने और बहुत सारी आवाज सुनता रहे, धर्म श्रवण भी करता रहे तो ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा।

ये कान कितना सा सुन पाते हैं, भीतर से सुनने की अगर आकांक्षा हो तो वो धर्म श्रवण हमारे जीवन को देवत्व की ऊँचाई दे सकता है। वो कह रहे हैं तपस्या में तत्परता। भले ही शरीर कमजोर हो, नहीं बनता अपन से, पर मैं करूँ ऐसी भावना हो, मैं कुछ कर पाता, मैं अपने जीवन के लिये थोड़ी तपस्या कर पाता। कर कुछ भी नहीं पा रहे हैं। हिम्मत ही नहीं हैं, एक आसन तक नहीं हो पा रहा है, दो बार खाना पड़ रहा है, लेकिन मन में क्या विचार है, ऐसा हमारा जीवन हो जाता कि एक ही बार खाते। आज हम भी उपवास कर लेते। ऐसी भावना भाने में क्या लग रहा है बताओ ? और शक्ति है तो करेंगे और शक्ति नहीं है तो भावना तो भाई जा सकती है। और कह रहे हैं तप में तत्परता रखता है वो भी देवायु का बंध करता है और जिसको ज्ञान की ललक है भले ही अँगूठा छाप है, लेकिन ज्ञान की ललक है बहुश्रुतवान के चरणों में जाकर के बैठ जाता है कि कुछ सुनाओ, अरे तुम्हारे को समझ में तो आता ही नहीं है, तुम्हारे को क्या सुनायें ? नहीं हम तो सुनेंगे, आप सुनाओ तो, भले ही कुछ समझ में नहीं आता। ऐसी जिसके अन्दर भावना है वो देवता नहीं बनेगा तो क्या बनेगा, बताओ। जो संसार के प्रपंच से बचकर के, राग-द्वेष से बचने के लिये, चार बातें जानने की आकांक्षा रखता, भले ही उसकी बुद्धि में नहीं आती है तो उसकी भावना की निर्मलता उसको ऊँचाई पर ले जाएगी और कह रहे हैं कि जो सद्पात्र के लिये दान देने की हमेशा भावना भाता है, अकेले भावना की बात कर रहे हैं।

भैया, देवत्व और कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है जहाँ ''टू ऐरर इज हुमेन, टू कन्फेस इज डिवाइन'' जहाँ हम गलतियाँ करते हैं वहाँ हम मनुष्य हैं और जहाँ हम अपनी गलतियों को स्वीकार करके उन्हें सम्भालने के लिये प्रयत्न करते है वहाँ हमारे भीतर देवत्व आना शुरू हो जाता है। जहाँ हम गलती करने वाले के प्रति भी मन में सद्भाव रखते हैं। वहाँ से देवत्व की शुरूआत होती है। गलती करने वाले को गलत मानने वाली तो दुनिया है भैया लेकिन गलती करने वाला अपने को गलत मानें हम क्यों उसे गलत माने, हम तो उसके प्रति सद्भाव ही रखेंगे। इतनी ऊँची अगर अपनी दृष्टि की निर्मलता हो जावे तब तो फिर कोई बात ही नहीं है।

एक छोटी सी घटना है। बहेलिये ने जाल बिछाया और एक कबूतरी उसमें फँस गयी। अब फँस गई वो तो कबूतर ऊपर बैठा पेड़ के ऊपर, वो भी दुःखी और वो कबूतरी फँस गई वो भी दुःखी। क्या करें ? उसी पेड़ के नीचे बहेलिये ने अपना डेरा डाल दिया। कबूतरी ने जाल में बन्द होने के बाद भी आवाज दी कबूतर को कि दुर्व्यवहार नहीं करना। मुझे भले ही पकड़ लिया है, लेकिन आया अपने पेड़ की शरण में है, इसलिये मदद करना। बताओ आप, तिर्यन्च है वो। पता नहीं ऐसा हुआ कि नहीं अपन मत करो विश्वास ऐसा लगता है मन में, अरे कहाँ होता है ऐसा सब कुछ। लेकिन करना पड़ेगा विश्वास ऐसा भी संभव है। कबूतरी कह रही थी और कबूतर ने सुना तो उसका संक्लेश कम हो गया। जितने तिनके लाया था वो घोंसला बनाने के लिये वो सब धीरे-धीरे नीचे गिरा दिये और इतना ही नहीं जब उसको लगा कि अभी तो कम है मामला तो और तिनके लाया बटोर के, सब नीचे गिरा दिये। ऐसा ढेर सा लग गया। फिर वहीं से जलती लकड़ी उठाकर के लाया, उसमें डाल दी आग जला दी, सारी रात ठण्ड में ये पेड़ के नीचे कैसे काटेगा थोड़ी गर्माहट हो जाएगी और फिर जब नहीं रहा गया तो फिर अपना घोंसला भी उसमें गिरा दिया ताकि और थोड़ी अग्नि जल जाये। अब क्या करूँ, इसके लिये क्या करूँ, और दुःख भी है कि कबूतरी की तो जान चली ही जाएगी, अब जब इसकी चली ही गई तो इसी अग्नि में मेरी भी चली जाए, ऐसा सोचकर उस अग्नि के निकट आने वाला था और बहेलिया सब देख रहा है। उसका मन बदल गया, उसने फौरन कबूतर को एक तरफ हटाकर के और जाल खोलकर के कबूतरी को भी उड़ा दिया।

एक का देवत्व दूसरे के लिये भी भीतर देवत्व उत्पन्न कर सकता है। देवत्व और कोई बहुत बड़ी चीज नहीं है। हमारे भीतर की सद्भावनायें देवत्व है और हम किसी अपराधी से, अपराधी व्यक्ति के प्रति भी अगर हम अपनी सद्भावना व्यक्त करेंगे तो

मानियेगा कि हम तो देवताओं जैसे ऊँचे हो ही जाएँगे। उसको भी कोई रास्ता मिलेगा। उस बहेलिये के बारे में लिखा है कि उसने जीवन भर फिर जाल से हिंसा करना छोड़ दिया। छोटी सी एक घटना उसके जीवन को इतना परिवर्तन कर गई। भैया, हमारे जीवन में भी ऐसा परिवर्तन आये और अपन भी अपने जीवन में ऐसी तैयारी करें जिससे कि हमारा जीवन बहुत अच्छा बने। इसी भावना के साथ बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी मुनि महाराज की जय।

OOO

कर्म कैसे करें?

भाग - 16

हमने अपने जीवन में जो भी पाया और जो भी खोया है वो अपने ही कर्मों से खोया है और कर्मों से ही पाया है। हम यहाँ जो जैसे और जितने हैं उस सबकी जिम्मेदारी हमारी अपनी और हमारे अर्न किये गये कर्मों की है। सिर्फ कर्मों की जिम्मेदारी हो ऐसा नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि यदि सिर्फ कर्मों की जिम्मेदारी हो तो ऐसा लगेगा कि दूसरे के कर्मों से भी हमें अपने जीवन में सुख-दुख मिलेगा; दूसरे के किये गये कर्म हमारे जीवन में प्रभाव तो डाल सकते हैं, पर हमारे जीवन के निर्माण में तो हमारे किये कर्म ही कारण बनते हैं। हमें अच्छा शरीर मिला है या कि नहीं मिला है, हमें अच्छी वाणी मिली है या कि नहीं मिली है, हमें अच्छा मन मिला है या कि मन की विकलता है। हमारे शरीर का रूपरंग अच्छा है या बुरा है। हमें जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ सम्मान मिलता है या अपमान मिलता है, हमारा यश फैलता है या कि अपयश फैलता है ? हम इन सब बातों के लिये स्वयं निर्धारित करते हैं। हम जैसे कर्म वर्तमान में करते हैं उससे ये सारी चीजें निर्धारित होती हैं।

कुछ ऐसे भी कर्म हैं जो कि हमें जिस स्थान पर पहुँचना है और उस स्थान पर जाते समय, ट्रांसमाइग्रेशन करते समय कौन-कौनसी चीजें हमारे साथ अटेच होकर जाने वाली हैं ये भी हम निर्धारित करते हैं ठीक ऐसे ही जैसे कि सर्विस में ट्रांसफर होता है तो ट्रांसफर किसी अच्छी जगह भी हो सकता है और सम्भावना है अच्छा पड़ौस मिले, हो सकता है कि अच्छे संस्कारवान लोग मिलें और ऐसा भी सम्भव है कि स्थान अच्छा ना मिलें, पड़ौसी अच्छे ना मिलें और संगति वहाँ पर खोटी मिले, ये सारी सम्भावनाएँ हैं। इनको कौन रेग्युलेट करेगा ? इनको हमारा अपना पूर्व का किया हुआ पुरुषार्थ जिसे हम पुण्य और पाप कहते हैं और वर्तमान के किये गये हमारे कर्म जैसा हमारा परफॉरमेन्स होगा, जैसी हमारी सर्विस का एक्सपीरियंस होगा, जैसा हमारा अपना नेचर हमने बना लिया होगा ठीक वैसा ही हम दूसरी जगह पायेंगे तो हमें वैसी ही सिचुएशन, वैसा ही परिवेश, वैसा ही एनवायरनमेंट सब कुछ वैसा ही मिलेगा। ठीक ऐसा ही जीवन में कर्मों के साथ

है, कर्म हम जैसे करेंगे वैसी गति मिलेगी, वैसा स्थान मिलेगा, वैसा शरीर मिलेगा, वैसा शरीर का रूप-रंग होगा और इतना ही नहीं, सौभाग्यशाली शरीर मिलना है। कि दुर्भाग्य से युक्त शरीर मिलना है शरीर के सारे अवयव बहुत सुन्दर व सुडौल होने के बावजूद भी दुर्भाग्य इतना है कि कोई पसन्द ना करे और शरीर के अवयव सुन्दर नहीं हैं। लेकिन सौभाग्य इतना है कि जिसकी दृष्टि पड़ जाये वो अपने को सौभाग्यशाली मानने लगे। जिसके साथ दो बातें करने का मन हो और अपने को सौभाग्यशाली माने, ऐसा भी हम ही कर्म करते हैं, और उसका हम फल चखते हैं। यहाँ अगर किसी को अच्छा शरीर मिला है तो उसने पूर्व जीवन में क्या किया होगा और आज अगर वर्तमान में अच्छा शरीर नहीं मिला है तो हमने पहले ऐसा क्या दुष्कर्म किया होगा जिसके परिणामस्वरूप हमें ये स्थिति प्राप्त हुई। अगर हमें वाणी अच्छी मिली है तो हमने ऐसा क्या भला किया होगा जिससे सुस्वर मिला। सुस्वर नाम कर्म कैसे मिला होगा और अगर वाणी कर्कश है और कठोर है तो मानियेगा कि हमने ऐसा कौनसा दुस्वर नाम कर्म अपने साथ बाँध लिया होगा।

ये सारी चीजें हमारे कर्म निर्धारित करते हैं इसके लिये एक बहुत बड़ी प्रकृतियों वाला कर्म है सारे कर्मों में, जिसकी फैमिली सबसे बड़ी है वो नाम कर्म, 93 इसके भेद-प्रभेद हैं जिससे कि पूरी बॉडी कन्सट्रक्ट होती है और वाणी मिलती है, मन की सामर्थ्य मिलती है। द्रव्य, मन, भाव मिलते हैं। मन तो हमारे अपने क्षयोपशम से, ज्ञान के क्षयोपशम से, नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से, वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से मिलता है लेकिन जिसका आलम्बन लेकर के हम विचार करेंगे, वो मन भी हमारे भीतर इसी तरह कन्सट्रक्ट होता है। हम स्वयं अपना शरीर निर्मित करते हैं और एक चीज और ध्यान रखना, रॉ-मैटेरियल कैसा भी हो अगर हम बहुत अच्छे आर्टिस्ट हैं, तो हम बहुत अच्छी चीज कन्सट्रक्ट कर लेंगे, उसमें से, हाँ। वो आर्ट कैसे आयेगी, हमारे अपने कर्मों से आयेगी। जैसे कि हम किसी अच्छे कारीगर को बुलाते हैं और सामान बता देते हैं कि इत्ता-इत्ता सामान है और उसमें इस तरह से बिल्डिंग-कन्सट्रक्ट करनी है। बहुत अच्छा अगर कलाकार हो, बहुत अच्छा आर्टिस्ट हो, बिल्डिंग कन्सट्रक्टर हो तो बहुत अच्छी बिल्डिंग बनाकर के रख देगा। उसमें रंग-रोगन भी बहुत अच्छे से कर देगा, भले ही आपने उसको मेटेरियल अच्छा नहीं दिया हो और जिसको उसका आर्ट नहीं मालूम उसको बहुत अच्छा मेटेरियल भी देवें तो वेस्ट कर देगा। वो सब ठीक ऐसे ही हमारे अपने जीवन में भी है, हमारे अपने कर्म जैसे होंगे वैसी सारी सिचुएशन्स हमारे चारों तरफ क्रिएट होगी और फिर इतना ही नहीं जैसी सिचुएशन क्रिएट हुई है उसमें हमारा अपना क्या

बिहेवियर है इस पर भी डिपेंड करेगा। हमें जैसा जो कुछ भी मिलता है उसमें हम सुख और दुःख अनुभव कैसे करते हैं। ये हमारे अपने एटीट्यूड पर निर्भर करता है, ये हम पहले कई-कई बार इस चीज को समझ चुके हैं। चीजों से हमें सुख नहीं मिलता। ये चीजें और उनसे हमारे क्या सम्बन्ध है उससे हमारा सुख और दुःख रिलेटेड है। हमें अच्छा शरीर मिला है जरूरी नहीं है कि सुख मिले ही। ये हमारे ऊपर निर्भर करता है इसलिये ये चीज भी इसके साथ जोड़कर के हम देखने की कोशिश करेंगे कि हमें सब कुछ अपने पूर्व-संचित कर्मों से मिल जाने के बाद भी उसमें हर्ष करना है या विषाद करना है और आगे के लिये क्या तैयारी करना है। ये सब हमारे अपने वर्तमान के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। हम पहले कई-कई बार इस चीज को समझ चुके हैं।

ये ठीक है कि आज हमें जिस तरह का शरीर मिला है उसकी जिम्मेदारी हमारे पुराने कर्मों की है लेकिन उस शरीर का, उस वाणी का और उस मन का हमें करना क्या है ये आज वर्तमान में हमारे ऊपर निर्भर है। अब जरा विचार करें कि जैसा शरीर मिला है उसके लिये कौनसे कर्म जिम्मेदार होंगे, कौनसे भाव हमारे जिम्मेदार होंगे तभी हम आगे के लिये अपनी जरा जो तैयारी कर रखी है उसमें परिवर्तन कर सकेंगे क्योंकि अगर मालूम पड़ जाये कि इस तरह की तैयारी करने से और हम जो सोच रहे थे वो चीज नहीं मिलेगी, मालूम पड़ जाये कि हमने तो तैयारी दूसरे प्रश्न की कर रखी थी उत्तर की और लगता है कि शायद कोई और चीज सामने आने वाली है तो हम जल्दी से अपनी तैयारी बदल सकते हैं।

हमारे अपने परिणामों को हम टटोल सकते हैं कि वे किस दिशा में जा रहे हैं और आगे जाकर के हमें कैसी स्थिति और कैसा एनवायरनमेंट मिलेगा; सब चिंतित होते हैं इस चीज के लिये कि कहीं दूसरी जगह जाना पड़ेगा तो कैसी-कैसी स्थिति मिलेगी, कौन-कौन मिलेंगे, कैसा शरीर मिलेगा, शरीर मतलब कैसा मकान मिलेगा रहने का। यही तो ये शरीर भी तो मकान ही है, कैसा वाला मिलेगा और कौनसी जगह मिलेगी। गति क्या है, उस जगह का नाम ही तो है जहाँ हम पहुँच जाते हैं और कौनसी जाति मिलेगी, एक इन्द्रिय होंगे, कि दो इन्द्रिय होंगे कि तीन इन्द्रिय की, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय कौनसी तैयारी है जिससे कि हम उस प्रकार के शरीर को पायेंगे। एक इन्द्रिय का शरीर मिलेगा, कि दो इन्द्रिय का मिलेगा, कि पंचेन्द्रिय का और पंचेन्द्रिय में भी नारकी जीव का शरीर मिलने वाला है, कि देवों का शरीर मिलने वाला है, कि किसी मनुष्य का शरीर मिलने वाला है, या कि हाथी-घोड़े का शरीर प्राप्त करेंगे, कौनसा करेंगे साथ कुछ एक

ब्लू प्रिंट की तरह हमारे साथ अटेच हो जाता है, एक प्रिंट बन जाता है हमारे अन्दर उन सब चीजों का कैसे ? आश्चर्य होता है जब नाम कर्म की प्रकृत्तियाँ पढ़ते हैं कि अगर इसमें जितने बाल हैं तो उतने ही क्यों हैं और उनकी स्टाइल क्या है ये सब हमने निश्चित किया है। शेप, साइज सारा कुछ, आँख यही लगानी है तो यहीं लगेगी, साइज कितनी है, प्रपोर्शनेट है या अनप्रपोर्शनेट है। बॉडी में जो-जो चीजें फार्म हुई हैं वो प्रपोर्शनेट हैं कि नहीं हैं, शरीर का कैसा संहनन है, कैसे हमारे ज्वाइंट्स हैं, उनमें कितनी ताकत है, ये सब भी हम अपने कर्मों से निश्चित करते हैं, इन सबके लिये अलग-अलग कर्म हैं और उन सबके अलग-अलग परिणाम हैं।

मजा ये है इतना बारीकी हिसाब कोई अगर बता सकता है तो सिर्फ सर्वज्ञ बता सकते हैं ये कर्म प्रकृतियाँ और इनके होने वाले परिणामों को जब हम जानते हैं तो ऐसा लगता है कि ये तो हमारी बुद्धि के बहुत पार है। ये कोई बहुत अत्यन्त ज्ञानवान ही जान सकता है। दो लोग एक जैसे नहीं हो सकते कभी भी, टिवून्स भी क्यों ना हों। उनके बॉडी-कन्सट्रक्शन में कहीं ना कहीं चेन्ज जरूर से होंगे, क्योंकि दो सेपरेट जीव हैं, अलग-अलग जीव हैं तो अलग-अलग ही उनके अपने शरीर की बनावट और बुनावट दोनों चीजें होंगी, हाँ! जैसे कपड़े की बनावट और बुनावट दोनों ताना-बाना किस तरह का है ये बुनावट कहलाती है इसी तरह शरीर में भी किस तरह से हमने ताना-बाना बनाया है और कैसा उसका शेप है और साइज क्या है, ये सब हम निर्धारित अपने भावों से करते हैं। दो सूत्रों में आचार्य भगवन्तों ने शॉर्ट में लिखे में, सारी चीज कह दी अब और शरीर के मामले में, गति के मामले में, जाति के मामले में, सौभाग्य और दुर्भाग्य, यश और अपयश के मामले में, अगर सारी चीजें आपको खोटी मिली हैं तो मानियेगा आपने पहले मिली हुई मन, वाणी और शरीर का दुरुपयोग किया होगा, ये तय है। बस इतने शॉर्ट में कह दिया अपन डिटेल कर लेंगे उसका समझने के लिये और इतनी ही बात है "योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।"

अगर हमारा शरीर अशुभ मिला है और भी सारी चीजें अशुभ मिली हैं तो मानियेगा कि हमने योग यानी मन, वचन, काय इनकी सरलता नहीं रखी होगी। इन मन, वचन काय का सदुपयोग नहीं किया होगा, उनका दुरुपयोग किया होगा, या कि इनके द्वारा कुटिलता की होगी, मन में कुछ, वाणी में कुछ, शरीर से एक्शन कुछ। और कोई भी चीज हमने दूसरे के प्रति शुभ नहीं करी होगी। मन में खोटा सोचा होगा, वाणी खोटी बोली होगी और शरीर से भी हमने दूसरे का उपकार करने की जगह अपकार किया होगा, जिससे कि आज

हमें मन, वाणी और शरीर की सामर्थ्य सब अशुभ मिली हुई है। हम किसी का कुछ भला कर ही नहीं पाते। हमसे न वाणी से दूसरे का भला होता है, ना शरीर से ही दूसरे का भला किया; ना हमारे मन में कभी दूसरे का भला करने का विचार आता। सब खोटा ही खोटा आता रहा; इसके मायने है कि पहले हमने इस तरह का कर्म किया होगा और निरन्तर किया होगा और "तद्विपरीतं शुभस्य" उससे विपरीत अगर कोई है तो सारी चीजें शुभ मिली होंगी। आज हम देखें गौर से अगर हमें अच्छा सुन्दर शरीर मिला है, इसका मतलब है कि हमने दूसरे के लिये जरूर अपने शरीर से मदद की होगी, हाथ सुन्दर मिले हैं इसके मायने है कि मैंने दूसरे का उपकार किया होगा, आँखें सुन्दर मिली हैं, मैंने दूसरे की बुराई ना देखकर के भलाई देखी होगी, इन आँखों से इसलिये आज मेरी आँखें सुन्दर हैं। मेरी आँखों में चमक है, और अगर ये सारी चीजें मैंने खोटी की होंगी, आँखों से सिर्फ दूसरे की बुराई देखी होगी और कानों से दूसरे की बुराई सुनी होगी तो मानियेगा कान वैसे ही मिलेंगे-"स्वदोषः .....।" बड़े-बड़े कान मिलते हैं हाथी को ऐसे सूपा जैसे, और आँखें इतनी-इतनी सी मिलती हैं क्यों? अपने दोष देखने में तो इतनी सी आँख और दूसरे के दोष सुनने में इतने बड़े-बड़े कान। पहले हम जिस तरह के परिणाम और जिस तरह का उपयोग मन, वाणी और शरीर का करते हैं वैसा ही मन, वाणी और शरीर हम यहाँ पुनः पाने के लिये मजबूर हो जाते हैं। बचपन में जो शरीर मिलता है वह सबको क्यों अच्छा लगता है, कभी सोचा। बड़े होने पर वही शरीर अच्छा नहीं मालूम पड़ने लगता।

शरीर तो ऐसा है कि जीर्ण-शीर्ण होता है उसका स्वभाव है ही। एक बात तो ये है और दूसरी बात और है बचपन में क्योंकि भोलापन है, क्योंकि सरलता है, मन वाणी और शरीर की तब शरीर कुरूप भी क्यों ना हो, भला मालूम पड़ता है और कई बार शरीर बहुत सुन्दर हो और अगर कुटिलता हो, सरलता ना हो तब भी शरीर सुन्दर नहीं मालूम पड़ता। हालाँकि ये कर्म पुदगूल विपाकी है। नाम कर्म की अधिकांश प्रकृतियाँ शुभ और अशुभ दोनों रूप हैं लेकिन इससे जीव का भी सम्बन्ध है इसलिये मैंने दोनों बातें आपसे कह दीं कि शरीर अत्यन्त सुन्दर होने के बावजूद भी यदि दूसरे नाम कर्म का उदय है तो वो शरीर किसी को पसन्द नहीं आयेगा और शरीर अशुभ नाम कर्म के उदय से और कुरूप मिला हुआ है लेकिन सुभग नाम कर्म का उदय है तो सबके लिये भला जान पड़ेगा। इसलिये ये दोनों चीजें ध्यान में रखकर के हमारा अपना वर्तमान का राग-द्वेष भी उसमें है अच्छे और बुरे होने में।

गुलाब का फूल सबको अच्छा मालूम पड़ता है। देखियेगा उसका नामकर्म देखियेगा। ठीक उसके अकेले नामकर्म नहीं है उसके सुभग नामकर्म भी है साथ में। उसके अवयव तो

अच्छे हैं ही उसका कलर अच्छा है, उसके साथ-साथ उसकी सुगन्ध अच्छी है, सब कुछ अच्छा है काँटों के बीच खिला होने के बावजूद भी सुभग नाम कर्म है। हर आदमी पाने के लिये उत्सुक हो जाता है। वनस्पतियाँ कितने प्रकार की हैं। उनके भी नाम कर्म हैं कितने-कितने प्रकार के लोग हैं उनके अपने-अपने नाम कर्म हैं, कैसे ये सब बनते होंगे। बचपन में क्यों ये सब अच्छे लगते हैं, छोटे होने पर क्यों अच्छे लगते हैं, और बचपन में रास्ते से चले जाने पर क्यों हमें कोई गाय का बछड़ा मिल जाता है तो उसकी पीठ थपथपाने का मन होता है। कोई अच्छी चीज दिख जाती है तो खड़े होकर देखने का मन होता है। क्यों होता है ये सब ? क्योंकि उस समय चित्त अत्यन्त निर्मल होता है। और ये जो चित्त की निर्मलता है वो इन सब चीजों के प्रति हमारे मन को आकृष्ट करती है और इतना ही नहीं बड़े होने पर भी कुछ लोग जब समय पर भोजन करने आते हैं ये सोच करके कि मेरी वजह से दूसरे को तकलीफ ना पहुँचे तब, तब देखियेगा उनके अपने जीवन की सुन्दरता, उनके व्यक्तित्व की सुन्दरता इससे मालूम पड़ती है।

हमने मन, वाणी और शरीर से अपना स्वार्थ नहीं साधा होगा, परमार्थ साधा होगा इसलिये ये शुभ मिले हैं। हमारा अपना स्वार्थ साधेंगे तो आगे जाकर के ये सब अशुभ ही मिलने वाले हैं और इतना ही नहीं हमने इस सारी सामग्री को इतना महत्व नहीं दिया होगा। शरीर, मन और वाणी मिली है और भी जो सामग्री मिली है उसके संचय का उतना ध्यान नहीं रखा होगा बल्कि अपने सद्‌गुणों के संचय का ज्यादा ध्यान रखा होगा इसलिये अच्छा शरीर मिला है और उसके विपरीत अगर होगा तो बुरा शरीर मिला होगा। हमारे किये पहले जो मन, वाणी और शरीर मिला था उसका हमने सदुपयोग किया होगा। सदुपयोग करना मतलब दूसरे के काम आना, दूसरे का ख्याल रखना। समय से भोजन के लिये पहुँच जाता हूँ, मुझे दूसरे का ध्यान है मेरी वजह से उसको प्रोब्लम नहीं होनी चाहिये। ये है मन और वाणी का सदुपयोग। मुझे वाणी मिली है मैं बोलूँ ऐसा जिससे मुझे बाद में क्षोभ उत्पन्न ना हो, मैं काम करूँ ऐसा जिससे बाद में मुझे पश्चाताप ना हो और मैं विचार करूँ ऐसा जिससे बाद में मेरे मन में ग्लानि न हो। चलिये हो गया, तीनों का सदुपयोग। हम आसानी से इस तरह से सदुपयोग कर सकते हैं। बस जरा सा विचार करना पड़ेगा कि वाणी मैंने बोली है तो बाद में फिर मुझे अपने ही बोले पर कहीं मन में क्षोभ न हो कि ऐसा क्यों बोला ? सामने वाले को तो क्षोभ हुआ सो हुआ पर मुझे बाद में अपने बोले हुए का क्षोभ ना हो तो समझना कि ठीक सदुपयोग किया है वाणी का शरीर। की क्रियाएँ करने के बाद, पश्ताचाप ना हो तो मानियेगा कि शरीर का सदुपयोग किया है।

और मन में किसी के बारे में विचार करने के बाद ग्लानि ना हो मैंने ऐसा क्यों विचार किया?

हम मन, वाणी और शरीर का सदुपयोग इन बातों का ध्यान में रखकर के आसानी से करना चाहें तो कर सकते हैं और अगर हम आज वर्तमान में अच्छा शरीर नहीं मिला है तब भी आगे के लिये अच्छे शरीर की तैयारी कर सकते हैं। वर्तमान में अच्छी गति नहीं मिली है तब हम आगे की अच्छी गति की तैयारी कर सकते हैं और आज अगर अच्छी मिली है तो आगे के लिये बुरी की तैयारी भी कर सकते हैं। ऐसा नहीं है आज मनुष्य गति मिल गई है, सबसे सौभाग्यशाली है, चार गतियों में हमने कोई पहले ऐसा मन, वाणी और शरीर की वक्रता नहीं की होगी, सरलता ही होगी जिससे कि हमें आज मनुष्य गति मिली है। मनुष्य आयु मिलना अलग बात है देखो और मनुष्य गति मिलना अलग बात है। ये चारों गतियाँ निरन्तर 24 घण्टे बँधती रहती हैं, ध्यान रखना और आयु तो किसी एक निश्चित समय के आने पर बँधती है और गति तो हम हमेशा बाँधते रहते हैं। हमारे अपने मन, वाणी और शरीर का जैसा शुभ और अशुभ परिणमन होगा वैसी गति, वैसी एकन्द्रिय, दो इन्द्रिय इत्यादि जाति और फिर उसके हिसाब से बहुत सारे गति, जाति, शरीर, अंग-उपांग, निर्माण बंधन, संघात, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरूलघु उपघात। बारहसिंहा का अपना शरीर अपने ही घात में कारण बनता है।

चमरी गाय की अपनी सुन्दर सी पूँछ एक बार झाड़ी में अटक जाये तो कई दिन खड़ी रहेगी जब तक कि सुलझ न जाये, मर जायेगी वहीं पर, प्राण दे देगी क्योंकि अपनी पूँछ से बड़ा प्यार होता है उसको। एक बाल अटक गया है पूँछ का झाड़ी में वहीं खड़ी रहेगी, टूट जायेगा, उसको बहुत दुःख होता है। टूटना नहीं चाहिये। अपने ही घात करने वाला शरीर हमें मिल जाता है कई बार और ऐसा शरीर जैसे कि सिंह का दूसरे के घात करने के जैसे नख, ये सब कैसे होता होगा ? हमारे अपने मन, वाणी और शरीर की क्रियाओं से होता है, वे शुभ होती हैं तो सारी चीजें शुभ मिल जाती हैं; वे अशुभ होती हैं तो सारी चीजें हमारे जिम्मे अशुभ आती हैं। ये तो ठीक है लेकिन अशुभ मिल जाने के बाद भी हम उनको कैसे शुभ बनायें। अभी तो वर्तमान में सारी चीजें अच्छी मिल जाने पर हम तैयारी बुरे की कर रहे हैं अगर गौर से देखा जाये तो, अपने मन, वाणी और शरीर को बिगाड़ करके और आगे के लिये इन सबकी जो सामर्थ्य है उसको बुरा बनाने की कोशिश में हैं, अगर इस चीज का हम विचार करें। जो शक्ति मिली हुई है उसका सदुपयोग नहीं करेंगे तो संहनन हीन मिलेगा अभी भी हीन संहनन मिला हुआ है। बज्र वृषभनाराच संहनन यहाँ

किसी को नहीं मिला। क्यों नहीं मिला ? हम सबने इस शरीर का सदुपयोग नहीं किया होगा। शरीर का सदुपयोग है कि इस शरीर से तपस्या करना या कि दूसरे की सेवा करना और उसमें विशेष रूप से गुरुजनों की सेवा करना।

जब भी आचार्य महाराज इस बात को सुनाते हैं कि हनुमान जी को वज्र का शरीर कैसे मिला, भीम को वज्र का शरीर कैसे मिला ? पूर्व जीवन में उन्होंने अपने शरीर के द्वारा मुनिजनों की भारी सेवा करी। आचार्य शांतिसागर महाराज को ऐसा बलिष्ठ शरीर मिला था कि दो-दो मुनि महाराज को दोनों कंधे पर बिठा के वेद-गंगा और दूध-गंगा के संगम को पार करते थे। इस जीवन में भी और पहले जीवन में भी उन्होंने ऐसा ही किया होगा और जब कोई बैल अस्वस्थ हो जाता था तो उससे काम नहीं लेते थे और उसे बाँध देते थे। अब बैल की जगह बैलगाड़ी में स्वयं काम किया करते थे। इस शरीर का हमने अगर सदुपयोग किया है तो आगे फिर ये शरीर मजबूत मिलेगा। इस वाणी का अगर दूसरे के कल्याण की बात कहने में उपयोग किया होगा तो हमें फिर से ये वाणी सुस्वर मिलेगा अन्यथा फिर दुस्वर मिलेगी जैसे कि गधे की वाणी और कौए का स्वर कोई सुनना नहीं चाहता है लेकिन कोयल की वाणी सबको पसंद है। क्या किया होगा कोयल ने, वैसी वाणी पाने के लिये? सबसे मधुर बोला होगा इसलिये वाणी मधुर है। बहुत ज्यादा डिसक्शन करने की चीजें नहीं हैं, बहुत अनुभव करने की चीजें हैं मैं तो सोचता हूँ।

अपने जीवन में थोड़ा सा गौर से एक दृष्टिपात करें सामने तो सब समझ में आता है कि वाकई में ये सब चीजें ऐसे ही बनी होंगी और आचार्यों ने वही चीज हमें इशारा किया है, लिखा है कि और कई कारण हैं उन पर अपन विचार कर लेते हैं। जब हम अपनी इस वाणी से दूसरे की चुगली करने का काम करते हैं तो पिशुनता जिसको कहते हैं, चुगलखोरी इसकी बात उसको ट्रांसफर करना, वो भी अपनी तरफ से कुछ मिक्सअप करते हैं। वाणी तो मिली है अब उसका उपयोग कैसे करना ये हमारे ऊपर निर्भर करता है।

एक घटना है बैल और शेर में बढ़िया दोस्ती थी। ये बच्चों की कहानी है। बच्चों के लिये लिखी है। दोनों में अच्छी दोस्ती थी पर किसी को सुहाती नहीं थी। किसी की भी दोस्ती किसी को सुहाती है आज, बताओ इससे मालूम पड़ता है कि हमारा अपना मन कितना-कितना विकृत है। किसी का अच्छा कुछ हो रहा हो तो हमारे मन में जैसे आग लग गई हो, ऐसा क्यों हो जाता है ? कैसा मन पाया हमने, खोटा मन तो पाया है किसी के बारे में भला कुछ थोड़ी देर सोचेगा, बुरा ही बुरा सोचता है, वाणी थोड़ी देर को किसी से प्यार से बोलेंगे जिनसे हमारा स्वार्थ है ये क्या चीज है ? अब वो नहीं सुहाई लोमड़ी

महारानी को तो बिल्कुल नहीं सुहाई। हाँ, उसने कहा कहाँ शेर और कहाँ बैल इन दोनों की क्या दोस्ती, अरे बराबरी वालों से दोस्ती करो तो जाकर के बैल से कहा कि सुनो मालूम है शेर राजा आज आपसे बहुत नाराज हैं। अरे नाराज क्यों होंगे, होंगे भी तो मैं मना लूँगा, हमारी तो दोस्ती है। बोली, नहीं-नहीं आज तो तुम्हारी बहुत बुराई कर रहे थे वो शेर, संभव ही नहीं है, कर ही नहीं सकता। हमारी इतनी अच्छी दोस्ती है। ठीक है मत करो हमारी बात का विश्वास पर आप जाकर के देख लेना सब समझ में आ जायेगा। जैसे ही दूर से देखोगे ना तो गुर्राते दिखाई पड़े शेर, तो समझ लेना कि हमारी बात सच्ची है और तो, नहीं तो झूठ है। लोमड़ी ने इस तरह से बैल को जाकर के सलाह दे दी। ऐसी खोटी सलाह देने में अपन बहुत होशियार हैं, दूसरे के बीच में बैर पैदा करने की आदत अन्ततः हमें अशुभ नाम कर्म में ले जायेगी और दूसरे का मेल-मिलाप करने की आदत हमारे जीवन को ऊँचा उठायेगी। आज तक हमने दूसरे को एक-दूसरे के प्रति विलग करने और एक-दूसरे से द्वेष उत्पन्न करने का तो काम किया है, लेकिन प्राणी मात्र से प्रीति उत्पन्न हो ये काम नहीं किया। ये परमार्थ का काम है। दूसरा स्वार्थ का काम है बहुत सावधानी की आवश्यकता है, जीवन में। अब शेर के पास पहुँच गई लोमड़ी महारानी। वो बैल अरे, क्या तो आपने उससे दोस्ती करी है कहीं आपकी बराबरी का है क्या वो। शेर ने कहा कि आज क्या बात है तुम ऐसी कैसी बातें कर रही हो ? वो तो मेरा इत्ता अच्छा मित्र है। अरे होगा तुम्हारा मित्र कितनी तो बुराई करता है तुम्हारी, और फिर भी उसको अपना मित्र बनाये रखा है। शेर अपने को क्या जंगल का राजा मानता है, मेरे से जरा दो-दो हाथ तो हो जाये पता लग जाये कि कौन बलशाली है ? अच्छा, ऐसा कह रहा था। हाँ ! और अगर आपको विश्वास नहीं हो तो आज मिलना जब दूर से ही आप उसको जरा गौर से देखना हाँ, पास से मत देखना जरा वो ऐसे सींग करे दिखे ना तो समझ लेना कि मेरी बात सच्ची है, नहीं तो झूठी मान लेना। बस दोनों जन को बता दिया एक से कह दिया जरा गौर से देखना और दूसरे से कह दिया कि वो घूर के देखेगा तो समझ जाना सो उसमें लिखा हुआ है कि बच्चो इसका मोरल क्या है ? ऐसे दूसरों की बातों में आकर के कभी लड़ना नहीं चाहिये। लड़ने से दोनों की हानि हुई, मित्रता तो खत्म हुई, जीवन भी खत्म हो गया।

ये तो समझ में आती है बच्चों की कहानी। अपने जीवन में नहीं आ रही समझ में। ऐसे दूसरे से लड़ने से, दूसरों की बुराई करने से अपनी ही हानि होती है, बच्चों को तो समझाते हैं लेकिन ये जो अपन बड़े बच्चे हैं इनके समझ में नहीं आती और अपने जिस दिन समझ में आ जाये कि ये वाणी और मन इसके लिये नहीं मिला है, ये दाँव-पेच करने के लिये,

कुटिलता है मन, वाणी और शरीर की। इस कुटिलता से तो मेरे को कल मन, वाणी और शरीर जो भी मिलेंगे सब अशुभ ही मिलने वाले हैं; मैं दूसरे का अशुभ नहीं कर रहा हूँ, मैं तो अपने हाथ से अपना अशुभ कर रहा हूँ। भैया इतनी सी बात क्यों नहीं समझ में आती। कह रहे हैं कि अस्थिर चित्त, हमेशा चित्त बदलता रहता है। कई लोग जिनको अपन कहते हैं बड़े मूडी हैं। भैया ये अस्थिर चित्त है 'क्षणे तुष्टम् क्षणे रूष्टम्' क्षण भर में रुष्ट है, क्षण भर में संतुष्ट है, ऐसा मन लेकर के अपन आये हैं। ऐसे अस्थिर चित्त वाले व्यक्ति अशुभ नाम कर्म का ही बंधन करते हैं और झूठे नाप-तौल ये भी अशुभ नाम-कर्म के बंध में कारण हैं। आचार्य विद्यानन्द जी महाराज की सभा में कोई टेढ़ा-मेढ़ा बैठा हो तो एक ही सूत्र बोलते हैं वो ''योगवक्रता विसंवादनं चशुभस्य नाम्नः''। बोलते हैं कि ठीक-ठीक बैठो, टेढ़े-मेढ़े बैठोगे तो योगों की वक्रता, मन, वचन, काय की वक्रता अगर होगी तो आगे जाकर के अशुभ मिलने वाला है सब नाम कर्म। कृत्रिम रत्न इत्यादि का निर्माण करना, मिलावट करना इससे अशुभ नाम कर्म, झूठी गवाही देना इससे अशुभ नाम कर्म, दूसरों के अंग-अपांग का छेदन भेदन कर देना इससे अशुभ नाम-कर्म, असभ्य कठोर वचन बोलना, इससे भी अशुभ नाम कर्म का बंध हो रहा है अपने लिये, अपना घाटा अपने हाथ से, बच्चे को कान पकड़ के डाँट देते हैं। हम तो सुधारने के लिये डाँट रहे थे, ठीक है वो सुधर जायेगा। आपका तो बिगड़ गया काम कठोर वचन बोल कर के और बच्चे को आप प्यार से भी समझा सकते थे, प्यार की भाषा से बड़ी कोई भाषा नहीं होती, लेकिन हमें लगता है कि जब हम अपने-अपने लोगों के साथ कठोरता से पेश आयेंगे, तभी तो हमारा दबदबा होगा, तभी तो वो हमारी बात, हमारा टेरर जब तक नहीं होगा, बच्चे मानते ही नहीं बात। बच्चे मानते ही नहीं प्यार से हम कितना समझाते हैं उनको। लेकिन वो मानें या ना मानें, वो अपना कल्याण करें या ना करें हम अपना अकल्याण अपने हाथ से कर लेते हैं।

आचार्य भगवन्त लिख रहे हैं कि असभ्य जो कि सभ्य लोगों के बीच कहे जाने योग्य वचन नहीं हैं, जो कठोर हैं, मर्मभेदी हैं, उन वचनों से अशुभ नाम कर्म का ही बंध होता है और मंदिर के गंध, माल्य, दीप, धूप इत्यादि हड़प लेना इससे भी अशुभ नाम कर्म का बंध होता है। देव-धन और देव-द्रव्य दो प्रकार की द्रव्य होती है वो जो गुल्लक में डालते हैं, रसीद कटवाते हैं, वो सब देवधन है और वो जो चावल चटक और बादाम चढ़ाते हैं मंदिर में, वो सब देवद्रव्य है। और दोनों का भक्षण करना, ये दोनों ही चीजें अशुभ नाम कर्म के लिये कारण बनेंगी। बहुत लोग करते हैं, बोली बोल देने के बाद अब रखे हैं पैसे अपने पास, सालों नहीं दे रहे। जितने दिन तक रखे हैं उतने दिन तक अशुभ नाम कर्म का

बंध रहा। ये अपने मन से नहीं कह रहा हूँ बुरा मानने की बात नहीं है, ऐसा है। अब है तो क्या करें ? दिया कि मैं ऐसा-ऐसा और अब मन कच्चा है पीछे हट रहा है, कमती में काम हो जावे। हाँ, ऐसा हो जाता है भाव। सबसे अच्छा लिखा है कि अगर पॉकेट में है तो ही बोलो, देओ और निश्चिंत होकर वापस लौटो। कौन आगे का हिसाब रखे कल के दिन, शाम को मन पता नहीं कैसा हो जाये, दे दो तुरन्त, नहीं तो वह देवधन जब से आपने बोल दिया तब से वह देवधन हो गया। आपने कह दिया कि इतना रुपया मेरा बोली में बोल दिया और अब घर तक चले गये हैं, जितनी देर होती जायेगी उतनी देर आप उस देवधन को जो बोला हुआ है 10,000 बोल दिये तो अब। वो देवधन आपके पास रखा है। अब उसको जितने दिन तक रखे रहोगे, उतने दिन तक परिणाम अगर नहीं देने के बन गये, दे दूँगा क्या फर्क पड़ता है कौन खाये जा रहा हूँ ? दूसरे अपने सुख-सुविधा के साधनों में तो लगाये हैं उस देवधन को और दे नहीं रहे हैं। चार दिन बाद देंगे, ये सारा अशुभ नाम कर्म के बंध, कभी रयणसार पढ़ियेगा, कुन्द-कुन्द स्वामी का उसमें, बहुत डिटेल लिखा हुआ है। एक ही फैमिली हमने अभी तक देखी है अपने जीवन में और भी होंगी लेकिन मेरा ऑब्जरवेशन जितना है उतना बता रहा हूँ। एक फैमिली मिली उनके यहाँ नियम है कि आपने जितने पैसे सभा में बोले हैं या तो वहाँ लेकर के जायें सो वहीं देकर के आयें या कि पहला काम घर लौटकर के जितने बोले हैं उतने रुपये, सोने से पहले निकाल दो घर में से। दूसरे दिन रखा नहीं होना चाहिये। उन्होंने जबलपुर में कलश की बोली ले ली डेढ़ लाख रुपये की और उतने तो लेकर कोई नहीं जाता पॉकेट में। वापिस आकर सबसे पहले गड्डी निकाली, उतने पैसे की एक तरफ रखी फिर उसके बाद दूसरा काम, और जाकर के कहा कि ये ले लो, सम्भालो।

उसने कहा हम नहीं जानते आपको जो करना हो वो करो, जैसे सम्भालना हो आप सम्भालो, हम नहीं रखेंगे अपने घर में, ये इत्ते रुपये आप रखो। क्या पता कल के दिन मेरा मन बदल जाये इन रुपयों को लेकर, मैं अपने पाँचों इन्द्रिय और मन के भोगों में उपयोग करने लगूँगा और बाद में मेरे पास देने को नहीं बचे और मैं फिर मुश्किल में पड़ जाऊँ इसलिये जो सामग्री हम अपने मन, वचन, काय से सोचकर के एक बार चढ़ा देते हैं, उसके प्रति अपने मन में कलुषता नहीं आनी चाहिये, कुटिलता नहीं आनी चाहिये। नहीं देने का भाव अगर थोड़ा भी मन में आ गया, देरी से देने का भाव आ गया, तो अशुभ नाम कर्म बँधेगा। ईंटों का भट्टा इत्यादि लगवाना और ऐसे कर्म करना जिनसे बहुत हिंसा होती है, अशुभ नाम कर्म का बंध होगा।

इतना ही नहीं, सबके ठहरने के स्थानों को नष्ट करवा देना, अच्छे लगे हुए उद्यान इत्यादि बाग-बगीचे और उनको नष्ट करवा देना, ये सब जो हैं हमारे अशुभनाम कर्म के बंध के कारण हैं। लेकिन वो तो मास्टर प्लानिंग हो रही है। बुलडोजर आयेगा सबके मकान जो हैं उनको तोड़-ताड़ करके एक तरफ रख देगा। अपन समर्थन करो तो अपना ही अहित। बहुत सम्भलकर जीने का है मामला। संसार कहाँ जा रहा है किस तरफ, जाने दें अपन, अपना लौटा छानें। अरे, ऐसे कैसे काम चलेगा ? तो क्या आप संसार बढ़ाना चाह रहे हैं क्या ? नहीं, हम तो संसार घटाना चाह रहे हैं तो अपना काम जरा होशियारी से, जिम्मेदारी से करना पड़ेगा। जिसके द्वारा सबके कल्याण के लिये शरीर की क्रियाएँ होती हैं, जिसका मन सबके कल्याण के लिये भरा हुआ है, जिसकी वाणी सबके कल्याण के लिये और निरन्तर अच्छे वचन बोलती है वही अपने मन, वाणी और शरीर का सदुपयोग कर रहे हैं। और आगे भी उन्हें ऐसी ही शुभ मन, वचन और काय की सामर्थ्य मिलेगी। और अगर अपन इससे विपरीत करेंगे तो समझ लो भैया। मेरा शरीर कमजोर क्यों हुआ ? माँ ने मेरा शरीर कमजोर नहीं बनाया ? मैंने अपने कर्मों से शरीर कमजोर बनाया है। मुझे अच्छी बुद्धि क्यों नहीं मिली ? तो मेरी माँ ने मुझे ऐसी छोटी बुद्धि वाला बनाया हो, ऐसा नहीं है। मेरी बुद्धि अगर कम है तो मैंने कभी किसी दूसरे की बुद्धि की प्रशंसा नहीं करी होगी। कभी किसी दूसरे के ज्ञान की प्रशंसा नहीं करी होगी बल्कि उसकी बुद्धि को नष्ट करने का उपाय करा होगा। उसके मन को चोट पहुँचाने का विचार किया होगा जिससे कि मेरे मन को आज क्षुद्रता ही मिली हुई है ऐसा विचार करना चाहिये।

एक छोटा सा उदाहरण है। कोई एक रामानुजम का बालक था। मन, वाणी और शरीर सबको मिलते हैं, कौन कैसा उपयोग करेगा यह उस पर निर्भर करता है। यह उसकी च्वाइस पर निर्भर करता है।

बचपन में एक यज्ञोपवीत संस्कार होता है। दक्षिण भारत में तो ये बहुत होता है। आचार्य महाराज का भी 11-12 साल में ही हुआ था। मूँजी बन्धन कहते हैं उसको। तो उसमें, उस संस्कार में मंत्र भी दिया जाता है, जीवन भर गुरुमंत्र इसका जाप करना। यदि विपत्ति आये तो उससे बचने के लिये है। चाहे शुभ दिन हो, चाहे अशुभ दिन हो सब में जाप करना तो वो मंत्र दिया उनके गुरुजी ने और समझा दिया कि सुनो इस मंत्र के जपने और सुनने मात्र से कल्याण हो जाता है। बड़ा अलौकिक मंत्र है, पर सुनो इसको सावधानी से पढ़ना और अपने पास ही चुपचाप रखना, किसी को बताना मत, ऐसा बोल दिया।

अब छोटा सा बालक, उसने रात भर विचार किया कि एक तरफ तो ये कहते हैं कि ये मंत्र अलौकिक है, जो भी सुन ले तो उसका कल्याण हो जाएगा और एक तरफ कह रहे हैं किसी को बताना नहीं, ये दोनों ही बातें समझ में नहीं आयीं। सो सवेरे से जाकर के छत के ऊपर और जोर-जोर से मंत्र का पाठ करने लगा। अब गुरुजी को मालूम पड़ा तो वो बड़े दुःखी हुए, बोले हमने तुमसे कहा था कि ये किसी को मत बताना, ये तो चुपचाप करने का है। पर गुरुजी आपने यह भी तो कहा था कि ये मंत्र बहुत अलौकिक है और जो भी इसे सुनेगा उसका कल्याण हो जाएगा। तो मैंने सोचा कि सभी सुन लें जिससे सबका कल्याण हो जाये। गुरुजी ने पीठ थपथपाई की, अब तो जरूर तुम्हारे पास ये मंत्र तुम्हारा ही नहीं, सबका कल्याण करेगा। जो उसको सुनेगा। भैया मंत्र और कोई बड़ी चीज नहीं है। मंत्र तो सबके पास है। उसमें सामर्थ्य कौन डालता है?

हमारी अपनी सद्भावनाएँ, उसमें सामर्थ्य डालती हैं। मन, वाणी और शरीर से जो भी करें, वो सद्भावना से करें तो फिर देखियेगा कि हमारे जीवन में जो मिलेगा वो सब शुभ ही मिलेगा और दुर्भावना से अगर मन, वाणी और शरीर का हम उपयोग करेंगे तब फिर मानियेगा कि हमें भी आगे शरीर वैसा ही मिलेगा। इसी भावना के साथ कि हम अपने प्राप्त हुए मन, वाणी और शरीर इनका आगे सदुपयोग कर लें और अगर हमें कमजोर मिले हैं तो हम विचार करें कि हमने कुछ अच्छा नहीं किया होगा। नहीं किया हो कोई बात नहीं, अब तो शुरू कर सकते हैं। ऐसा विचार करके अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिये पुरुषार्थ करें। इसी भावना के साथ बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागरजी मुनि महाराज की जय।

○○○

कर्म कैसे करें?

भाग - 17

हम सभी लोगों ने पिछले दिनों ये अनुभव किया है कि यदि हम बहुत गौर से देखें तो इस संसार में अच्छा और बुरा कुछ भी नहीं है। ये हमारी कल्पना है। हमारा राग-द्वेष है। जिन चीजों में हमारा राग होता है, वो चीजें हमें अच्छी जान पड़ती हैं, इष्ट मालूम पड़ती हैं और जिन चीजों में हमारा द्वेष होता है वे चीजें हमें अनिष्टकारी और बुरी जान पड़ती हैं। चीज तो चीज होती हैं न वो भली होती हैं न वो बुरी होती हैं। लेकिन क्या करें, हमारे संस्कार अनादि काल के ऐसे हैं कि हम चीज को चीज की तरह नहीं देखते, वस्तु और व्यक्ति को वस्तु और व्यक्ति की तरह नहीं देखते बल्कि हम अपने राग-द्वेष से प्रेरित होकर के वस्तु और व्यक्ति को भला और बुरा, अच्छा या बुरा इस तरह के भाव से ही देखते हैं। जिन्दगी ऐसी भी नहीं है कि जैसे शतरंज के खाँचे होते हैं एक सफेद है तो एक काला है। सब लोगों के जीवन में हमेशा सुख के बाद दुःख-दुःख के बाद सुख ऐसा कोई क्रम है, ऐसा भी नहीं है।

जिसे हम आज अपना मान रहे हैं वो कल हमारा शत्रु हो सकता है और जिसे हम आज अपना शत्रु मान रहे हैं वो कल हमारा मित्र हो सकता है। इतना परिवर्तनशील है ये संसार। और वो परिवर्तन हमारे अपने परिणामों का ही है। हमारे अपने राग-द्वेष का ही परिवर्तन है। जैसा हमारे मन में भाव होता है वैसा हम संसार में चीजों को और व्यक्तियों को देख लेते हैं। आचार्य भगवन्तों ने हमें बार-बार इस बात की सावधानी रखने की कही है कि ठीक है किसी को हम शत्रु मानते हैं आज, किसी को हम मित्र मानते हैं आज, ठीक है पर थोड़ा विचार करना कि कोई हमेशा शत्रु नहीं होता, कोई हमेशा मित्र नहीं होता। मैत्री भाव सबके ऊपर रखना यही सबसे श्रेष्ठ है। मैत्री जो है वो शत्रु और मित्र से ऊँची चीज है। जिससे हम प्राणी मात्र के प्रति अपने मन में करुणा का भाव रखते हैं। अभी तो हमारी करुणा भी जो है वो विभाजित हो जाती है अपने और पराये के भेद से। जो अपने हैं उनके प्रति हमारे मन में दया है, करुणा है और जिन्हें हम पराया समझते हैं उनके प्रति

हमारे मन में दया और करुणा नहीं उमड़ती है। होनी हमारी दया और करुणा ऐसी चाहिये कि प्राणी मात्र पर हो। असल में, ये जो हमारी अपनी राग-द्वेष की प्रक्रिया है, वो ही हमारे लिये इष्ट-अनिष्ट की कल्पना कराती है। भले-बुरे की कल्पना कराती है। शत्रु और मित्र की कल्पना कराती है और फिर मजा ये है कि इससे भी आगे ले जाती है। जो मेरा मित्र है उसमें मुझे कोई दोष नहीं दिखाई पड़ता और जो मेरा शत्रु है उसमें मुझे कोई गुण दिखाई नहीं पड़ता। माँ को अपना बेटा कितना भी बुरा क्यों न हो, उसमें कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता। कोई आकर के उसकी कितनी ही शिकायत करे, माँ यही कहेगी कि मेरा बेटा अच्छा है तुम बेकार परेशान मत होओ। उसका अपना मोह, उसका अपना राग, उसका अपना मोह और हमारा अपना जो राग है वो वस्तु और व्यक्ति को इसी तरह या तो गुणों से युक्त देखता है अथवा दोषों से युक्त देखता है। गुण और दोष किसमें कितने हैं? कोई भी ऐसा नहीं है जो सिर्फ गुणवान हो, कोई भी ऐसा नहीं है जो बिल्कुल दोषों से युक्त ही हो। आचार्य महाराज ने तो लिखा कि हरेक व्यक्ति के अन्दर और चाहे कुछ हो या ना हो, एक गुण अवश्य होता है। ठीक ऐसे ही जैसे गरीब आदमी की झोपड़ी हो, चाहे किसी का आलीशान मकान हो, आने-जाने का दरवाजा तो सबमें होता है। ठीक इसी तरह सबमें एक गुण होता है। हमारी देखने की दृष्टि हो तो हम उस गुण को इतना बड़ा करके देखें कि सिर्फ वही दिखे और दोष न दिखें। अगर हमारी दृष्टि कलुषित है तो वो गुण क्या और भी सैकड़ों गुण हों तो वो भी नहीं दिखाई देते। एक दोष हो तो इतना बड़ा करके देखते हैं कि जिसके भीतर सारे सौ गुण भी ढक जाते हैं। ''परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य।''

दो सूत्रों में हमारे जीवन का स्टेटस डिसाइड कर दिया आचार्य भगवन्तों ने। हमारे कर्म हमें क्या ऊँचाई दे सकते हैं और कितना नीचा गिरा सकते हैं ये डिसाइड कर दिया है। और कोई नहीं गिराता हमें, ना कोई हमें ऊँचा उठाता है, हमारे अपने गुण और दोष देखने की जो प्रवृत्ति है वो हमें ऊँचा उठाती है और नीचा गिराती है। भैया, जो व्यक्ति दूसरे को बुरा कहे उससे यह बात तो तय हो जाती है कि स्वयं ये भला आदमी नहीं है और बाकी चीज तय हो, चाहे ना हो। दूसरे को बुरा कहे इससे यह तो पक्का हो गया कि भला आदमी नहीं है दूसरों को बुरा कहने वाला कभी भला हो नहीं सकता और जो दूसरे को भला कहे इससे यह तय हो गया कि स्वयं तो भला है, दूसरा भला होवे या ना होवे वो अपनी जाने। आचार्य भगवन्त इसी बात को सूत्र में कह रहे हैं कि 'परात्मनिन्दाप्रशंसे।' दूसरे की निन्दा करना और अपनी प्रशंसा करना। ''सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने'' इतना ही नहीं दूसरे के

विद्यमान गुणों को ढकना और अपने अविद्यमान गुणों का ढिंढोरा पीटना। क्या दूसरे की निन्दा करना, अपनी प्रशंसा करना और दूसरे के विद्यमान गुणों को भी ढक लेना, प्रकट नहीं होने देना और अपने अविद्यमान जो अपने भीतर हैं ही नहीं गुण, उनका ढिंढोरा पीटना। ये सब बातें, ये सारे कर्म हमें कहाँ ले जाते हैं, नीच गोत्र की तरफ ले जाते हैं, और नीच गोत्र का बंध मिथ्यात्व के साथ होता है।

सबसे पहले दृष्टि की निर्मलता नष्ट होगी, उसके बाद में हमें साथ में नीच गोत्र का बंध होगा। ये जितने पशु हैं एक इन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जो पशु हैं ही और जो संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं उनमें भी नीच गोत्र का ही उदय चलता है, ध्यान रखना। मनुष्य में नीच गोत्र, उच्च गोत्र दोनों हो सकते हैं। क्या कहलाता है ये नीच गोत्र उच्च गोत्र। जिस कुल में जिस जाति में उत्पन्न होने पर धर्म की परम्परा जहाँ चलती हो, अभक्ष्य-भक्षण न होता हो, मद्य, मधु, मांस का सेवन न होता हो, जो लोक में निन्दनीय ना हो ऐसे कुल को उच्च कुल कहते हैं। शेष सब नीच कुल हैं। जहाँ धर्म की परम्परा नहीं है, जहाँ सदाचरण नहीं है जहाँ लोकनिन्द कार्य किये जाते हैं, ऐसे परिवार में उत्पन्न होना ये अपने नीच गोत्र का उदय है और ये नीच गोत्र बँधता कैसे है ? ये लिख दिया एक सूत्र में, चार बातें लिख दीं। ''परात्मनिन्दाप्रशंसे''। दूसरे की निन्दा करते रहना और अपनी प्रशंसा करते रहना, अपना बड़प्पन हमेशा बताते रहना। दूसरे की निन्दा, मतलब दूसरे के दोषों को प्रकट करना। होने पर और नहीं होने पर दोनों कह रहे हैं। दूसरे के दोष होने पर भी और नहीं होने पर प्रकट करना यह भी नीच गोत्र का बंध है और जो दोष नहीं है वो भी प्रकट करना सो तो है ही। जो दोष उसके भीतर हैं उनको भी प्रकट नहीं करना तब जाकर काम बनेगा, उच्च गोत्र का।

हमने वर्तमान में अगर उच्च गोत्र पाया है, ऊँचाई हासिल की है, अच्छा स्टेटस है, समाज में जो मान्य कुल प्राप्त हुआ है हमें, लोक निन्दनीय कुल प्राप्त नहीं हुआ है हमें, उसके लिये हमने क्या पुरुषार्थ किया होगा पूर्व जीवन में इस पर विचार करना और जिन्होंने यह चीज प्राप्त नहीं की है उन्होंने क्या किया होगा दूसरे के विद्यमान और अविद्यमान किसी भी तरह के दोषों को प्रकट नहीं करना। बताइये ऐसा हो पाता है अपन से। अपन तो दूसरे के दोषों को ही देखने की प्रवृत्ति अपने भीतर निर्मित कर चुके हैं। ऐसी आदत पड़ गई है कि किसी पर भी दृष्टि जाती है तो सबसे पहले उसमें जो खोट है, उसमें जो कमियाँ हैं वो दिखाई पड़ती हैं, उसमें क्या भलाई है, क्या अच्छाई है, दिखाई नहीं

पड़ता। बताओ तो ऐसी दृष्टि लेकर के हम अपने जीवन को कहाँ ले जाने की तैयारी कर रहे हैं ? ये स्वयं विचार करना पड़ेगा और फिर इस आदत को बदलना पड़ेगा। हम लोग तो इस आदत को बदलने की जगह पर तर्क और देते हैं।

एक व्यक्ति चला जा रहा था रास्ते से। सामने जो है दूसरा और थोड़े आगे जा रहा था। एक केले का छिलका पड़ा था। उस पर वो पैर पड़ा उसका फिसल गया। गिर गया। गिर गया तो हँसना शुरू कर दिया जो पीछे था उसने, सामान्य सी बात है। कोई अगर फिसल कर गिर जाए तो दूसरे को मौका मिलता है हँसने का, लेकिन वो ये भूल गया कि एक छिलका और पड़ा है वहीं पर सो इनका भी उस पर पैर पड़ा और ये भी गिरे। अब गिरे तो सब लोग हँस पड़े। तो मालूम है उन्होंने क्या तर्क दिया, कि अच्छा किया भगवान् जो मैंने पहले दूसरे के गिरने पे हँस लिया। अब तो मैं हँस ही नहीं सकता, अब तो लोग हँसेंगे मेरे ऊपर। अच्छा हुआ मैंने पहले हँस लिया। बताइये आप। दूसरे पे हँसने को भी हम अच्छा मानते हैं कि हमने अच्छा किया जो पहले हँस लिये फिर तो हमें गिरना ही है और फिर तो लोग हँसेगें, हम थोड़े ही हँस पाएँगे। ये लोजिक दिया।

दूसरा हमारी बुराई करे इससे पहले हम उसकी कर लें। सीधी-सीधी बात। इसकी बुराई करके मजा ले लें और फिर बाद में अपनी बुराई करवाने के लिये तैयार रहें। ये इस तरह से हमने संसार में आदत डाल ली है। सोचें, हम यदि दूसरे को बेईमान कहे और दूसरा हमें बेईमान कहे तो बताइये आप, ईमानदार तो फिर कोई भी नहीं रह जाएगा। लेकिन इतनी छोटी सी बात अपन के समझ में नहीं आती है और इतना ही नहीं एक बार जब दोष देखने की आदत पड़ जाती है तो संस्कार फिर इतना गहरा हो जाता है कि अपने दोष फिर दिखाई नहीं पड़ते। ये ध्यान रखना। एक सबसे बड़ी हानि है दूसरे के दोष देखने में, सबसे बड़ी हानि कि कभी भी अपने दोष देखने का अवसर ही नहीं मिलता। दूसरे के दोष देखने की आदत इतनी पड़ गई कि वक्त ही नहीं मिलता अपने दोष देखने का। और इतना ही नहीं अपने को दोषी होने के बाद भी अच्छा मानने का मजा भी हम ले लेते हैं। देखा वो ऐसे हैं, वो कैसे हैं, हम कैसे हैं, हम तो ठीक हैं, ठीक नहीं होने के बाद भी अपने ठीक होने का भ्रम पैदा हो जाता है। दूसरा दोषी नहीं है, फिर भी हम उसको दोषी ठहराना शुरू कर देते हैं। इससे हमारे भीतर अपने दोष देखने की प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है और अपने दोषी होने के बाद भी हम अपने को ठीक मान लेते हैं और चौथी चीज कि हम कभी अपने दोष अपने में से निकाल नहीं पाते हैं। दूसरे के गुणों को भी हम अपने भीतर ग्रहण नहीं कर पाते। रिसेप्टीविटी हमारी खत्म हो जाती है। इतना लॉस होता है। दूसरे के दोष देखने की

आदत अपने भीतर निर्मित करने से और है ये प्रकृति 99 प्रतिशत हम सबके जीवन में। एक प्रतिशत होगा थोड़ा हमारा जीवन ऐसा जिसमें कि हम दूसरे के दोष न देखते होंगे, बाकी 99 प्रतिशत हमारे सबके जीवन में दूसरे के दोष देखने की प्रवृत्ति है। जहाँ कुछ अच्छा भी है वहाँ भी हम दोष देखना शुरू कर देते हैं और जहाँ दोष युक्त हैं वहाँ तो हैं ही। और आत्म-प्रशंसा, अपने अन्दर कोई गुण नहीं भी है तब भी अपने को गुणवान मान लेने का भ्रम या कि दूसरे से अपने को गुणवान कहलाने का एक प्रयत्न। निरन्तर चलता रहता है, और फिर इतना ही नहीं, वही गलती फिर हम करें जो दूसरा कर रहा है तो वो अपन को नहीं दिखाई पड़ती।

यहाँ की एक घटना है अचानक एक दिन मुझे एक कटिंग मिल गई, मैंने उसमें पढ़ ली। जयपुर में कोई नन्दनभट्ट हुए हैं, यहाँ पर बहुत पहले। उनके जीवन की है। किसी राजा के दरबार में कवि रहे हैं और इतने प्यारे व्यक्ति थे, राजा अगर किसी से नाराज हो जावे तो राजा को समझा-बुझा करके और उस व्यक्ति के प्रति जिसके प्रति नाराजगी है क्षमा दिलवा देते थे। किसी ने गलती की हो, उससे राजा नाराज हो तो भी, राजा के अंतरंग मित्र थे ये बहुत अभिन्न, तो राजा को समझा-बुझाकर कि अरे छोड़ो, क्या करना राजा साहब, आप तो इतने महान हो। वो गलती करता है तो करने देवो, आप तो माफ करो, माफ करवा देते। बड़ा उनका राजा के प्रति सद्भाव था, राजा भी उनको बहुत मानते थे।

एक बार क्या हुआ कि राजा के जन्मदिन पर सभी जितने सामन्त थे वे राजा के लिये मंदिर में प्रार्थना करते थे, उनके दीर्घायु के लिये। तो एक सामन्त ने ईर्ष्यावश, ये ईर्ष्या नाम की चीज जो ना कराये सो कम है, हाँ यह सबके भीतर है। उसमें लिखा है आत्मानुशासन में। ईर्ष्या एक साधु की आखरी कमजोरी है। श्रावक तो छोड़ो, गृहस्थ तो छोड़ो, आत्मानुशासन में गुणभद्र आचार्य लिख रहे हैं एक साधु की भी अंतिम कमजोरी अगर है, सज्जन पुरुष की भी, मुनिजनों की भी कह रहे हैं साधुओं की अंतिम कमजोरी है तो ईर्ष्या। बर्नाड शाह से जब पूछा गया था कि सैकण्ड वर्ल्ड वार का क्या कारण था ? तो उसने कहा कि दो कारण थे ज्वेलसी एण्ड ज्वेलसी। तो उन्होंने कहा कि तीसरे वाला अगर होगा तो? उन्होंने कहा तीन कारण, ज्वेलसी, दी ज्वेलसी एण्ड ज्वेलसी। तीन कारण। एक ही कारण है संसार बढ़ाने का, ईर्ष्या। गुणों को सहन नहीं कर पाना, तो दोष देखना शुरू हो जाता है, गुणों को सहन नहीं कर पाये तो और एक सामन्त दूसरे के गुणों को सहन नहीं कर पाया और उसने जाकर के राजा से शिकायत करी, जैसे अपन करते हैं।

वो तो कहानी है जीवन में भी अपन देखते हैं तो क्या शिकायत करी, ये जो सामन्त है वो आपकी दीर्घायु की कामना नहीं करता, मंदिर में बैठकर के भगवान के सामने इसकी एकाग्रता ही नहीं रहती। यहाँ-वहाँ देखता रहता है। अच्छे मन से वो आपके लिये प्रार्थना ही नहीं करता। ऐसी शिकायत कर दी। बस राजा तो राजा होते हैं। आ गई उनके सनक। ठीक है राज दरबार में और राजमहल में आना इसका बन्द। बाहर कर दो इसको। ऐसा आदेश जारी करने की मंत्रियों को आज्ञा दे दी। नन्दनभट्ट को मालूम पड़ा तो फौरन राजा के पास आये। क्या बात हो गई ? अरे वो-वो जो सामन्त है, मेरे लिये ठीक-ठीक प्रार्थना ही नहीं करता दीर्घायु की। यहाँ-वहाँ उसका ध्यान रहता है। ''किसने कहा ये'' किसी दूसरे सामन्त ने आकर कहा। तब तो आपको इस पर फिर से विचार करना चाहिये। इसमें फिर से विचार करने की क्या बात है ? बोले, ''फिर भी आप विचार कर लीजिएगा एक बार उस व्यक्ति को दण्डित करने से पहले।'' अगर वो वाला सामन्त दीर्घायु की कामना करते समय एकाग्र नहीं है, यहाँ-वहाँ देख रहा है तो जिसने शिकायत की है वो क्या कर रहा था? है ना, इसका मतलब उसको देखने में लगा हुआ था। दूसरे के दोष देखने वाला किस तरह दोषी था, ये समझने की चीज है। उदाहरण से। देख लो आप, वो तो अपना कोन्सन्ट्रेशन नहीं रख पा रहा है प्रार्थना के समय, लेकिन आप अपना कोन्सन्ट्रेशन अगर आपका है तो आपको ये दिखाई कैसे पड़ा कि उसका कोन्सन्ट्रेशन नहीं है। आपको अपनी एकाग्रता से प्रार्थना करनी थी। आपको दिख कैसे गया कि ये प्रार्थना के समय एकाग्र नहीं है। हम सबसे पहले स्वयं दोषी होते हैं जब दूसरे के दोष देखना शुरू करते हैं। वे ही दोष हमारे भीतर भी है, जो हम दूसरे के भीतर देखते हैं। बहुत सावधानी की आवश्यकता है कि हम दूसरों के दोष देखने से पहले और अपने गुणों की प्रशंसा करने से पहले विचार तो कर लेवें। और इतना ही नहीं, जब ये आदत निर्मित हो जाती है तो फिर दूसरी आदत उसके साथ में ही निर्मित होती है।

इसलिये आचार्य भगवन्तों ने वो भी लिख दिया कि दूसरे में विद्यमान गुण भी दिखना बन्द हो जाते हैं फिर उनको हम ढकना शुरू कर देते हैं। जब दूसरे के दोष देखना शुरू करते हैं तो उसके गुणों को हम ढकते चले जाते हैं और इतना ही नहीं अपने भीतर के जो अविद्यमान गुण हैं उनको भी हम कहना शुरू करते हैं, उनका भी ढिंढोरा पीटना शुरू करते हैं। क्योंकि हमारे मन में फिर ये भावना आ जाती है कि मेरी प्रशंसा होनी चाहिये। जहाँ आत्म-प्रशंसा का भाव है वहाँ गुणवत्ता नहीं होगी। वहाँ तो झूठी गुणों को भी प्रकट करने की भावना ही जागृत होगी। और ऐसा व्यक्ति कभी गुणवान नहीं हो पाता। ये सबसे बड़ी क्षति होती है। यदि हम इससे विपरीत करना शुरू कर देवें तो हमारे

जीवन में ऊँचाई आना शुरू होगी। हमारा स्टेटस ऊँचा होगा। हम जब ये सोचते हैं कि बहुत बड़ा मकान हमारे पास है, बहुत कारें हमारे पास में हैं, बहुत पैसा हमारे पास में है, अच्छा स्टेटस है, यह स्टेटस सिम्बल नहीं है। स्टेटस सिम्बल ये है कि कौन व्यक्ति अपनी निन्दा और दूसरे की प्रशंसा करता है। दूसरे की निन्दा करने वाले का स्टेटस बहुत क्षुद्र व्यक्ति का है, जो दूसरे की निन्दा करता है और बहुत महान है वह जो दूसरे के अवगुणी होने पर भी प्रशंसा ही करता है। बहुत महान् व्यक्ति ही हो सकता है जो अवगुणी में से भी कोई गुण देख ले। जैसे श्रीकृष्ण रास्ते से चले जाते थे और एक कुत्ता मरा हुआ पड़ा था दो-तीन दिन का। बदबू आ रही थी लेकिन वे खड़े होकर के चुपचाप देख रहे थे। बलराम ने कहा कि चलो अरे इतनी बदबू आ रही है। कहने लगे, "वो तो छोड़ो, दाँत तो देखो कितने बढ़िया हैं। अब बताओ आपमें व हमारे जीवन में भी ये चीजें आ सकती हैं। हम सोचते हैं कि बाह्य व्यक्तित्व ऊँचा होने से ही हमारा स्टेटस बढ़ जाएगा। नहीं, अंतरंग में इतनी ऊँचाई होनी चाहिये कि अवगुणी के भीतर भी कोई एक-आध गुण देख सकें हम और उसकी प्रशंसा कर सकें और अपने भीतर सैकड़ों गुण होने के बाद भी अपने एक-आध दोष देखकर अपनी निन्दा कर सकें।

ऐ भैया, हम कुछ विशेष नहीं हैं हमारे में तो बहुत से अवगुण हैं। ऐसा कहने का साहस बहुत कठिन है। अपने एकाध अवगुण को भी नहीं छिपाना और दूसरे के सारे अवगुणों को छिपाकर के एकाध भी गुण हो तो उसकी प्रशंसा करना, ये है ऊँचे होने की विद्या। अगर हम आज अपने को बहुत ऊँचा और बहुत अच्छे कुल का मानते हैं तो हमने पहले ऐसा ही कुछ करा होगा। इतने बढ़िया विचार हमारे रहे होंगे और आज भी अगर ऐसे अच्छे विचार हमारे हैं तो ठीक है निश्चिन्त रहें हमारा भविष्य बहुत ऊँचा है, अन्यथा यदि हमारे विचार घटिया हो गये हैं कि हम दूसरे की निन्दा में रुचि लेते हैं और अपनी प्रशंसा सुनने और दूसरे की निन्दा सुनने को तत्पर रहते हैं, हमेशा ये आँखें दूसरे के दोष देखने और अपने गुण देखने में लगी रहती हैं। तो समझना कि ये आँख और कान दोनों हमारा ज्यादा फायदा नहीं कर रहे हैं। मैंने पर्वत की चोटी से नीचे खड़े होकर के कहा कि जब तक मैं इस पर्वत की चोटी पर नहीं पहुँचा तब तक ही ये पर्वत ऊँचा है, तो पर्वत बोला कि अरे मैं तो किसी के सिर पर पैर रखकर ऊँचा नहीं हुआ तो फिर मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ और मेरा माथा पर्वत के चरणों में झुक गया। तो मेरे झुके हुए माथे को देखकर पर्वत ने कहा कि ये तो मेरे शिखर से भी ज्यादा ऊँचा हो गया। क्योंकि मुझे तो झुकना आता ही नहीं है। जी हाँ, झुकने से हम सोचते हैं कि नीचे गिर जाएँगे। जो

झुकता है वो ही ऊँचा उठता है। "नीचैर्वृत्ति" उच्च गोत्र के लिये कारण बनाया आचार्यों ने।

सूत्र में लिखा हैं नीचैर्वृत्ति अर्थात् जो हमेशा विनम्र वृत्ति रखता है, हमेशा झुकने की प्रवृत्ति रखता है, एडजस्ट करके चलता है। कम्प्रोमाइज करता है, निराग्र ही जिसका दृष्टिकोण है, वो व्यक्ति हमेशा जीवन में, वर्तमान में भी और भविष्य में भी ऊँचाई को ही छूता है। आप निन्दा करो या प्रशंसा करो तो दोनों स्थितियों में सामान्य। आप गुणों की प्रशंसा करो तो भी कोई अहंकार नहीं, अवगुणों की निन्दा करो तो भी कोई मलिनता नहीं। सहज रूप से जो निरहंकार होकर अपना जीवन जीता है ऐसा अपन ने करा होगा पहले ऐसा नहीं सोचना कि हमने नहीं किया होगा।

हम अगर इतने ऊँचे कुल में पैदा हुए हैं, जहाँ धर्म की परम्परा है, जहाँ व्यसन नहीं होते हैं। जहाँ मद्य, मांस, मधु नहीं खाया जाता, वहीं तो ऊँचा कुल हमें मिला है। जिनेन्द्र भगवान् की शरण मिली है। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु मिले, इससे ज्यादा ऊँचाई और क्या हो सकती है। और वह हमने पहले कुछ अच्छा किया होगा। ऐसी ही अच्छी झुकने की प्रवृत्ति रही होगी। दूसरे के गुणों की प्रशंसा करने की प्रवृत्ति रही होगी। अपने अवगुणों की निन्दा करने की प्रवृत्ति रही होगी। अहंकार कमती होगा हमारा जब तो यहाँ आये हैं, अब आगे की तैयारी कैसी करनी है, ये हमें विचार करना है। अच्छे बढ़िया अटेची जमाकर के, अच्छा बढ़िया सामान लेकर के अपन यहाँ आये हैं, अब आगे की यात्रा की अटेची कैसी जमानी है, कौन-कौन चीजें रखनी हैं सो अपन देख लें। तैयारी तो रखनी पड़ेगी क्योंकि किसी भी समय अपना यहाँ से जाने का समय आ जाएगा, सबका आता है। एक दिन किसी का आता है दूसरे दिन किसी और का, आना-जाना तो पड़ता है। भविष्य के लिये, इसलिये क्यों ना हम तैयारी कर लें उच्च गोत्र ही हमें प्राप्त हो, कम से कम ऐसा कुल तो हमें प्राप्त हो कि अनायास ही हमें धर्म करने का अवसर प्राप्त हो सके। ऐसा भी कोई है जहाँ कि धर्म का कोई संस्कार नहीं फिर भी, कोई जीवात्मा ऐसा आ जाता है कि अपने जीवन में धर्म कर लेता है तो आचार्य भगवन्तों ने लिखा कि अपने संस्कारों को अच्छा करके, अपने आचरण को अच्छा करके वो और वे भी ऊँचाई छू सकता है। मलेच्छ खण्ड से आने वाले चक्रवर्ती के सान्निध्य में और अपने जीवन को मुनि बनाकर मोक्ष तक की ऊँचाई को छू लें जितना अपने आपको बना सकते हैं। इसलिये हमें विचार करना चाहिये कि जिसको कुछ नहीं मिला वो ऊँचाई छू रहा है और हम पहले से ऊँचाई पर बैठे हुए हैं तब तो हमें थोड़ा सा पुरुषार्थ और करके और अपने जीवन के लिये वो वास्तविक

ऊँचाई है, प्राप्त कर सकें। और भी कुछ कारण लिखे हैं उन पर भी एक नजर डाल लें अपन, ताकि याद रह जाये। वैसे तो समझ में आ रहा है कि दूसरे की निन्दा नहीं करनी चाहिये। लेकिन और भी चीजें हैं उसके आस-पास। वो कह रहे हैं कि अपनी जाति का, अपने कुल का, अपने रूप का, इन सब का अपन को अभिमान नहीं करना चाहिये। अगर अभिमान करेंगे तो जरूर दूसरे का तिरस्कार करने का भाव आयेगा। हाँ दूसरे की निन्दा का भाव आ ही जाएगा जहाँ अपन को अभिमान आता है, वहाँ फिर अपन सब भूल जाते हैं और दूसरे की निन्दा और दूसरे का तिरस्कार कर बैठते हैं अपने अहंकारवश। इसलिये कभी भी अपने रूप, अपने बल, अपनी जाति, अपने कुल, इन सबका अहंकार नहीं करना। दूसरे का तिरस्कार नहीं करना, दूसरे की कभी हँसी नहीं उड़ाना। कम से कम, लिखा है कि दीन, दरिद्री और धर्मात्मा की हँसी नहीं उड़ाना। धर्मात्मा की हँसी नहीं उड़ाना, ये तो ठीक है लेकिन दीन, दरिद्र की भी हँसी नहीं उड़ाना, क्योंकि वो अपने कर्मों का फल भोग रहा है और हम उसकी हँसी उड़ायें तो हमें भी अपनी इस हँसी उड़ाने के कर्म का फल ठीक वैसा ही भोगना पड़ेगा जैसा उस दीन दरिद्री को आज किसी की हँसी उड़ाने से दरिद्रता और तिरस्कार मिला हुआ है।

कह रहे हैं कि दूसरे के यश का लोप नहीं करना। दूसरे का यश फैल रहा हो तो उसमें बाधा नहीं डालना। करते हैं अपन ऐसा। दूसरे का यश न फैल पावे इसलिये नाना प्रकार से उपाय रचते हैं। रोज तो देखते हैं अपन। कोई नई चीज थोड़ी ही है कहने और सुनने की बात नहीं है। अनुभव की बात है। रोज देखते हैं, इसी चीज को एक-दूसरे के यश को सहन नहीं कर पाने की वजह से अर्थात् गुण नहीं होते हुए भी हमारी कीर्ति फैले, हमारा यश फैले, ऐसी भावना रखना। और आखरी में कह रहे हैं जो गुरुजन हैं, तपस्वी हैं, उनकी अवज्ञा करना। महान व्यक्ति की अवज्ञा से नीचे ही जाना पड़ेगा। और क्या होगा? और अगर हम महान व्यक्ति की महानता का गुणगान करेंगे तो हम तो स्वयं ही महान हो जाएँगे। इतना छोटा सा गणित अपन के समझ में नहीं आता है। आपको याद है जब 22 वर्ष तक अन्जना से पवनंजय बोले नहीं थे, तिरस्कार कर दिया था, कभी पढ़ लेना। हनुमान जी की माँ थीं अन्जना। पवनंजय उनके पिता और उसके बाद एक दिन जब युद्ध में जा रहे थे पवनंजय, तब उनकी मंगल की कामना करने के लिये अन्जना दरवाजे पर खड़ी हो गईं थीं। बताइये आप, क्या रहा होगा ? यही कहलाते हैं महापुरुष, अपने तिरस्कार करने वाले के लिये भी मंगल की कामना करना, मंगलदीप लेकर के खड़ी, और उनको देखकर के और क्या कहा था। ''हट दुर्क्षणी, जिसको देखना भी ठीक

नहीं है, हट जाओ तुम यहाँ सामने से'' तब अन्जना बेहोश होकर गिर गई थी और फिर जागृत होकर के क्या कहा था कि कोई दोष नहीं है उनका, दोष तो मेरे ही कर्मों का है। कम से कम जाते समय मेरे से बोल तो गये। भले ही अपशब्द कहे होंगे, लेकिन कुछ कहा तो। मेरी तरफ ध्यान तो दिया। क्या ऐसा अपने मन में आता है।

मैं जब इस घटना को पढ़ता हूँ तो लगता है कि हम तो अपने को इतना बड़ा मानते हैं, हमारे अन्दर तो ऐसे भाव ही नहीं आते। हमारे प्रति तिरस्कार करने के बावजूद भी हमारे मन में सद्भाव बना रहे। कोई हमें तमाचा मारे और हम उसका हाथ पकड़कर के बताएँ, कि कहीं चोट तो नहीं लग गई। ऐसा हुआ अपने जीवन में कभी, किसी ने हमें कष्ट पहुँचाया और फिर भी हम उसके सुख और उसके हित की कामना करें। ये ऊँचाई है भैया, ऊँचे उठने के लिये, अपने जीवन को महान बनाने के लिये। दूसरे के दोष देखने की आवश्यकता नहीं है। अपने दोष देख के उनको निकाल करके अपने को गुणवान बनाने की प्रक्रिया करें। ऐसा कर्म करें जिससे कि हम स्वयं अपने भीतर गुणों को प्राप्त कर सकें। दूसरे के अवगुण देखने से कुछ हमारे गुण बढ़ नहीं जाएँगे। दूसरे के गुण देखने से तो कदाचित् हमारे गुण बढ़ सकते हैं और अपने गुणों को हम बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें। दूसरे के भीतर जो है उसकी जिम्मेदारी उसकी है। मेरे अपने जीवन को अच्छा और बुरा बनाने की जिम्मेदारी जब मेरी है तो क्यों नहीं मैं अपने जीवन को अच्छा बनाऊँ। ऐसा विचार करके निरन्तर अपने जीवन को अच्छा बनाने का प्रयास करते रहना चाहिये।

इसी भावना के साथ बोलिये आचार्य गुरुवर विद्यासागर जी महाराज की जय।

ooo

कर्म कैसे करें

भाग - 18

हम सभी लोग यहाँ निरन्तर सुबह से शाम और शायद पूरे जीवन कोई ना कोई कर्म करते रहते हैं। और उन कर्मों का फल भी हमारे जीवन में हमको भोगना पड़ता है। उन कर्मों का फल भोगते समय जैसी हमारी विचारधारा होती है, वैसा नये कर्म का संचय भी हमारे साथ हो जाता है। अगर गौर से हम देखें तो कर्म उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि उस कर्म के पीछे जो विचारधारा है या कि हमारी जो भाव दशा है वो महत्वपूर्ण है। सुबह से जो लोग घूमने जाते हैं, रास्ता वही होता है जिस रास्ते से दोपहर में अपने ऑफिस अपनी दुकान या फिर किसी और सांसारिक कार्य से जाते हैं। एक ही रास्ते पर चलने की, आने-जाने की प्रक्रिया वही है लेकिन सुबह जिस आनन्द के साथ हम उस रास्ते से निकलते हैं, दोपहर हम एक नई जिम्मेदारी का बोझ सिर पे लिये उसी रास्ते से निकलते हैं। इतना फर्क है। एक कर्म हम अत्यन्त सहज होकर करते हैं जैसे घूमने जाना, कोई टेंशन नहीं है मन में, बड़ी प्रसन्नता है। दोपहर काम से जा रहे हैं काम की जिम्मेदारी, काम का बोझ सिर पर है। तो हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि हम जो भी कर्म करें उसमें हमारी भाव दशा जरूर हम ध्यान में रखें। कर्म तो सभी कर रहे हैं सुबह से शाम तक एक गृहस्थ को भी करना पड़ता है, एक साधु को भी करना है। दोनों के कर्म कुछ हद तक एक जैसे दिखाई पड़ सकते हैं। आना-जाना, खाना-पीना, बोलना, उठना-बैठना, सोना यही कर्म हम दिन भर में करते हैं। श्रावक भी करता है और साधु भी करता है। एक में सहजता है और वीतरागता है। तो बंधन अल्प है और कर्मों का संचय भी अल्प है। बल्कि जो संचित कर्म हैं वो धीरे-धीरे डिसोसिएट भी हो रहे हैं, आत्मा से हट भी रहे हैं और दूसरी प्रक्रिया है जिसमें बहुत इनवाल्व होकर के, बहुत राग-द्वेष से युक्त होकर के, बहुत तनावग्रस्त होकर के, बहुत चिन्तित होकर के, मन को मलिन करके हम कर्म कर रहे हैं। आगे के लिये हमारा संचय भी इतना ही अधिक हो रहा है और इतना ही नहीं जो कर्म पहले बाँधे थे वो हटे तो बिल्कुल नहीं। बल्कि वे हमारे साथ और अधिक प्रगाढ़ रूप से, और

अधिक डोमिनेट होकर के हमारे साथ वाइन्ड हो गये। कितनी सीधी सी चीज है अगर हम समझना चाहें तो। हम इतना ध्यान अपने कर्मों पे ना दें जो शरीर से किये जाने वाले हैं, उससे ज्यादा हम ध्यान दें जो हम निरन्तर अपने मन में विचार करते हैं और उन विचारों से प्रेरित होकर हम वाणी बोलते हैं और उन विचारों से प्रेरित होकर हम शरीर से क्रिया करते हैं। वाणी और शरीर से होने वाली क्रियाएँ हमारे अपने मन से रेग्युलेट होती हैं तो हम क्यों ना अपने मन को ठीक-ठीक सँभालें। मन ही बंधन का कारण है, मन ही मुक्ति का कारण है। आचार्य भगवन्तों ने बहुत संक्षेप में बंध और मोक्ष की प्रक्रिया लिख दी। "रत्तो बन्ध कम्मम-जीवो विराग सम्पन्नोः ऐसो जिनोपदेसी, तम्मो कम्मो।" एक गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के चरणों में बैठें तो वे कहते हैं। हम स्वयं अपने राग-द्वेष से बंधक हैं। कोई हमें यहाँ बंधन में डाल रहा है ऐसा नहीं है। लगता तो यही है कि जैसे किसी ने हमें इस संसार में, इस संसार के बन्धनों में डाल दिया हो। मजबूर कर दिया है। अगर ऐसा कुछ होता तो हम तो जाकर के, उस व्यक्ति के पास में जाकर के दया की भीख माँग लेते कि भैया बहुत दिन हो गये। अब तो छोड़ो। लेकिन ऐसा नहीं है, हम छूटना चाहें तो क्षण भर में छूट सकते हैं। लेकिन क्या करें, हमारी आदत जगह-जगह बँधने की हो गई है। कोई हमें बाँधता नहीं है। हम अपने शरीर से बँधे हुए हैं। हम अपने विचारों से बंधे हुए है। अपनी भावनाओं से बँधे हुए है हम अपने परिवार, अपने प्रान्त, अपनी भाषा, अपनी जाति, अपने देश, पता नहीं किन-किन चीजों से हम बँधे हुए हैं। हम लोग हमेशा कहते हैं कि कमिट करो, किसी भी चीज के लिये तय करो। हम इसी तरह से अपना बंधन स्वयं अपने हाथ से बाँधते हैं। कमिट करना क्या चीज है? बंधक होना है। एक बँधन है लेकिन ये बँधन बड़ा सुखद मालूम पड़ता है। तय कर लेना सुखद मालूम पड़ता है। महाराज आप तो कह दो क्या करोगे? शाम को क्या करोगे? कल क्या करोगे? आप तो चार महीने तक का हिसाब बता दो आगे तक का, हम लोगों को इस तरह के बंधन में रुचि है। हम प्रतिक्षण उन्मुक्त होकर के सहज भाव से जीना पसन्द नहीं करते। हम आगे तक का हिसाब बनाकर के उसके बाद वर्तमान में जीने की कोशिश करते हैं। और सारा झगड़ा संसार का इतना ही है। जो वीतरागी हैं वे इस तरह के किसी भी बंधन में पड़ना स्वीकार नहीं करते हैं। इसलिये वे सबके बीच रहकर के भी उससे मुक्त हो जाते हैं।

इसी संसार में रहकर के कोई मुक्त भी हो सकता है। अरहंत भगवान शरीर में रहकर के भी शरीर से मुक्त हैं। जन्म-मरण से मुक्त हो गये और इसी संसार के बीच हैं। हमने उनको एक समवसरण के बीच बिठा रखा है। लेकिन वे समवसरण के बीच गंध कुटी में

भी सिंहासन और कमल से भी चार अंगुल ऊपर सबसे अलग दिखाई पड़ते हैं। वे इस बात का मैसेज देते हैं कि हमेशा इन चीजों से, इनके बीच रह कर भी अलिप्त होने की कोई विद्या सीख लो। चीजें सब ज्यों कि त्यों है, लेकिन हमारी अल्पिता उनके साथ बनी रहे तो फिर चीजें हमें बंधन में नहीं डालती हैं। हम स्वयं बंधन स्वीकार कर लेते हैं।

आचार्य महाराज से जब भी कोई पूछता है, वो बड़े मजे से जवाब देते हैं। किसी ने कहा कि महाराज हम बड़े परेशान हैं हमारी आदत से। क्यों क्या हुआ ? महाराज ! सिगरेट की आदत हमारी पड़ गई है वो छूटती ही नहीं है। क्या करें महाराज, कुछ उपाय बताओ। तो आचार्यश्री ने क्या जवाब दिया अरे तो ज्यादा कुछ नहीं करना है। आप ऐसा कर लिया करें, दोनों उँगलियों को ऐसे जोड़ा मत करें। दोनों उँगलियों को ऐसे खाली छोड़ दिया करें। मतलब क्या है ? सिर्फ इशारा है इस बात का। हमारी मुट्ठी कैसे खुले, हमारे बंधन से हम मुक्त कैसे हों, ये पूछने पर मुट्ठी ही बाँधते क्यों हैं वो तो खुली हुई है। मुक्ति हमारा स्वभाव है, बंधन हमारा स्वभाव नहीं है। जिस दिन हम बंधन छोड़ देवें अपने हाथ से, तो मुक्त तो हम हैं ही। मुक्ति का कोई अतिरिक्त उपाय करने की आवश्यकता नहीं है। वो जो बंधन का हम अतिरिक्त उपाय करते हैं, उस बंधन के उपाय को हम अगर छोड़ देवें तो कोई हमें यहाँ पर बंधन में डाल नहीं सकता। बंधन का कारण एक ही है राग और द्वेष। इसलिये कर्मों में रचो, पचो मत। कर्म तो करो लेकिन कर्म में रचो-पचो मत। उसके फल में भी आसक्त मत होवो। बताइये कितनी आसानी से हमें ऐसे कर्म करने हैं जिससे कि बँधे हुए कर्मों को काटा जा सके, उसकी सलाह दे रहे हैं। सब तो यह कहेंगे कि कर्म मत करो। कर्म किये बिना कर्म के बंधन से मुक्त कैसे होवोगे। एक कर्म वो है जिसके करने से हम और अधिक बंधन में पड़ जाते हैं। एक कर्म वो है जिसके करने से हम अभी तक के सारे कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। कर्म तो दोनों हैं। सामान्य रूप से जो हम सुनते हैं कि कर्म तो हमें ऐसा लगता है जो हमारे साथ बँधे हुए हैं जो हमें बाँध लेते हैं वो कर्म। वर्तमान में जो हम कर्म करते हैं, पूजा करते हैं, पूजा भी एक कर्म है, स्वाध्याय करते हैं, वह भी एक कर्म है, मुनिजनों की सेवा करते हैं, उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते हैं, ये भी एक कर्म है। ये सारे आध्यात्मिक कर्म हैं और हम इन आध्यात्मिक कर्मों को करके अपने सांसारिक बंधन से मुक्त हो सकते हैं।

इतना सीधा सा उपाय है लेकिन क्या करें हमारे अपने जो हमने पहले कर्म किये हैं उनका दबाव हमारे ऊपर इतना है कि वर्तमान के हमारे कर्म जो कि आध्यात्मिक हों या कि सांसारिक दोनों में बहुत मुश्किलें, बहुत बाधाएँ आती हैं। अपन जरा इस चीज को

समझते हैं एक छोटे से उदाहरण से कि कैसे हम अपने हाथ से कर्म के बंधन से बँध जाते हैं और कैसे हम चाहें तो इसके मुक्त हो सकते हैं। मैंने यह उदाहरण शायद पहले भी सुनाया हुआ है पर अपन इसको एक बार रिवाइज कर रहे हैं कि एक छोटा सा बच्चा (बेटा) पहुँचा था साधु बाबा के पास में कि महाराज यहाँ इस संसार में जो है बंधन कैसे होता है और कैसे हम मुक्त हो सकते हैं तो उन्होंने कहा, ठहरो तुम हमारे पास रहो हम बता देंगे। जाओ पहले तुम हमारा काम करो। ये जो सामने पेड़ लगा है, उस पेड़ को तुम जितना तकलीफ दे सको उतनी तकलीफ दो। तोड़ो, उसको पत्थर फेंको। उसके फल सब तहस-नहस कर दो। जितना तुमसे बने उसका अहित उतना करो। उसने कहा ये कौनसा काम सौंपा है? गया वो उससे जितना बना उतना बिगाड़ किया उसका। वापिस लौटा। पूछा कैसा लग रहा है। अच्छा नहीं लग रहा। मन बहुत भारी है। सो जाओ। सुबह उठा, ढंग से नींद नहीं आयी। यही लगता रहा कि कौनसा ऐसा काम मैंने कर लिया। जिससे मन बहुत भारी हो गया। ये काम तो अच्छा नहीं है। दूसरे दिन गुरुजी ने पूछा, रात नींद आयी। बिल्कुल नहीं आयी। बहुत दुःख होता रहा। आपने ऐसा काम क्यों मुझे करने को कहा ? अरे तो जाओ फिर जाकर के उससे क्षमा माँगो कि मैंने जो तुम्हारा बिगाड़ किया था, वो मेरी गलती हो गयी और जरा उसको पानी देवो, पत्तों को सँभालो। उधर जो कचरा फैल गया है उस सबको हटाओ। लग गया वो काम में। माफी माँगी पेड़ से जाकर। रोया खूब पेड़ के पास जाकर के, पत्ते सब ठीक-ठाक किये। फल जो टूट गये थे उनको भी दुरस्त किया। पानी सींचा। बड़ा मन गदगद् हो गया। शाम को लौटा। गुरुजी ने कहा, कैसे लगा ? बहुत अच्छा लगा है, बहुत आनन्द आ रहा है। तो वो जो कल तुमने कर्म किया था उससे थोड़ी सी राहत मिली। बहुत राहत मिली। कल तो मन बिल्कुल भी शांत नहीं था। बड़ा अशांत था। लेकिन आज जब मैंने वृक्ष के प्रति ऐसा व्यवहार किया तो मुझे लगा कि वृक्ष ने मुझे माफ कर दिया होगा। कल के मेरे कर्म को वृक्ष ने माफ कर दिया होगा। कल के मेरे कर्म से, मैं, आज का कर्म करके ऐसा लगता है, जैसे मुक्त हो गया हूँ। कल के मेरे अपराध से आज मुझे मुक्ति लग रही है।

बताइयेगा ये तो एक छोटा सा उदाहरण है। क्या यही उपाय नहीं है अपने बंधन और मुक्ति का। जिस कर्म के करने से हमारे ऊपर जैसे छाती पर किसी ने पत्थर रख दिया हो, सारा दिन व्यथित होता है। वे सारे कर्म हमारे संसार बढ़ाने वाले हैं और वे सब सांसारिक हैं। और जिन से हमारा मन प्रफुल्लित होता है, जिनके करने से हमारा मन प्रसन्न हो जाता है, वे कर्म हमारे उन कर्मों को काटने वाले हैं, अभी उनसे मुक्ति दिलाने वाले हैं, लेकिन संसार से मुक्ति दिलाने वाले नहीं हैं। हमारे पाप से मुक्ति दिलाने वाले हमारे सत्कर्म हैं।

लेकिन संसार से मुक्ति तब होगी जब सद् और असद् दोनों कर्मों के बीच में समता भाव होगा, तब मुक्ति होगी और वो पूछना हो तो उस वृक्ष से पूछ लें। पहले दिन जब चोट पहुँचाई थी तब भी वो वैसा ही खड़ा था। दूसरे दिन जब क्षमा माँगी तब भी वो उतना ही अलिप्त खड़ा हुआ है। क्या ऐसा ही हम हमारे जीवन में किसी क्षण कर सकते हैं। तीनों चीजें हमारे सामने हैं। हम कर्म अशुभ करते हैं, अशुभ का दबाव हमारे ऊपर होता है, तब हम उस दबाव को कम करने के लिये शुभ कर्म करें और कुछ क्षण ऐसे भी हों जब हम शुभ और अशुभ दोनों कर्मों से विश्राम लेकर के, राग-द्वेष से विश्राम लेकर के शांत भाव से अपना जीवन व्यतीत करें। उपाय सिर्फ इतना ही है। हमारे सांसारिक कार्यों में बाधा आती है, हमारे आध्यात्मिक कार्यो में बाधा आती है, कौन डालता होगा ये बाधा ? हम चाहते हैं कि जाकर के और आज तो साधुजनों की, मुनिजनों की सेवा करें। लोगों को दान दें। जो दीनहीन हैं, गरीब हैं, उनकी मदद करें, हमारे मन में ऐसा भाव होता है लेकिन ऐसा भाव हो जाने के बाद भी, सारे सरकमस्टेन्सेस फेवरेबुल हो जाने के बाद भी पता नहीं क्या होता है और मैं दान नहीं दे पाता। मैं सोचता हूँ कि फलानी चीज मुझे मिल जावे। मैं उसके लिये सारा प्रयत्न करता हूँ और अंतिम क्षण में जाकर के वो चीज मिलते-मिलते और मेरे हाथ से फिसल जाती है।

मेरे अपने भोग-उपभोग की सामग्री के साथ भी ऐसा ही है। मैं बहुत प्रयत्न करके खाने की थाली सामने सजाकर के रख लेता हूँ और मुँह में जो बहुत दिन से प्रतीक्षित था मेरे लिये प्रिय रसगुल्ला हाथ में, मुँह में आने को था और उतने में ही मोबाइल पर घंटी बज गई और एक ऐसी खबर जिसने कि उस रसगुल्ले को मुझे वहीं का वहीं रख देने को मजबूर कर दिया और उठकर के मुझे जाना पड़ा। ये मेरे भोग की सामग्री में बाधा किसने डाल दी। मेरे उपभोग की सामग्री में बाधा कौन डालता है। मैं बहुत उत्साहित होकर के किसी धर्म के कार्य को करने के लिये निकलता हूँ और बीच रास्ते में मुझे कोई ऐसी चीज घेर लेती है कि मैं उससे विमुख होकर के वापिस फिर लौट जाता हूँ। सारा उत्साह खत्म हो जाता है। मैं निरुत्साहित हो जाता हूँ, ऐसा कौनसा परिणाम या मेरे भीतर ऐसा कौनसा कर्म पड़ा हुआ है जो मेरी इन सब चीजों में बाधा डालता है ? होगा तो कोई ना कोई ऐसा तो हो ही नहीं सकता। ''विघ्नकरणमन्तरायस्य'' आचार्य भगवन्तों का एक ही सूत्र है, सारे कर्मों में जैसे मोहनीय कर्म अत्यन्त प्रबल है, ऐसे ही सबसे छिपा हुआ और अचानक हमारे सामने आने वाला कर्म अन्तराय कर्म है। ''सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्द रसलीन, सो जिनेन्द्र जयवन्त नित अरिरज रहस विहिन।'' अरि के मायने शत्रु, सबसे बड़ा शत्रु मोहनीय कर्म और धूल के समान हमारे ज्ञानदर्शन को आवरित करने वाला, रज अर्थात्

धूल, ज्ञानावरण और दर्शनावरण और मिस्ट्री (रहस्य) जिसको कहते हैं, कब आयेगा पता नहीं, रहस्य है उसे कहते हैं अन्तराय। अन्तराय अत्यन्त रहस्यमय है। हम सारे इन्तजाम कर लेते हैं और अचानक आल आफ सडन कि 'इनस्पाइट ऑफ मी' (मेरे बावजूद), मेरी सारी तैयारी के बावजूद सब धरा रह गया। वहीं के वहीं करूँ क्या ? अन्तराय के उदय में पता नहीं लगता है कि कब क्या स्थिति बनेगी और वो कर्म भी हमने अपने लिये स्वयं बाँधा है और बाँधते कैसे हैं ये देख लें हम ? तब फिर वो उदय में आकर के अपना फल देता है ये तो दिखाई पड़ता है। लेकिन कब बँध जाता है ये दिखाई नहीं पड़ता और कब फल देगा ये भी दिखाई नहीं पड़ता। जब फल दे चुकता है तब दिखाई पड़ता है। कितनी बार हमारे जीवन में हम ये अनुभव करते हैं, कि कितना मन होता है कि दान दे देवें, चार पैसे हाथ में भी हैं, लेकिन इतनी जल्दी मन बदल जाता है। देने का मन जितनी देर से होता है, नहीं देने का मन उतनी जल्दी हो जाता है। धर्म करने का उत्साह जितनी मुश्किल से होता है, निरुत्साही हम उतनी ही जल्दी हो जाते हैं। जरा सा किसी ने कह दिया। श्रद्धा बड़ी मुश्किल से जमती है और किसी ने जरा सी बात कह दी, श्रद्धा एक मिनिट में टूट जाती है ? ये क्या है ? ये अन्तराय कर्म है। इस पर हमें विचार करना चाहिये।

अगर हमारे जीवन में ये हमें दुःख दे रहा है अन्तराय कर्म तो वो हमारे अपने कौनसे परिणाम होंगे जिससे कि हमारे साथ में बँध गया है ? तब हम आसानी से उन परिणामों से वर्तमान में बचकर के आगे के लिये अपने अन्तराय को टाल सकते हैं। महाराज, कुछ उपाय बताओ, कोई मंत्र दे दो। बड़ी मुश्किल है आर्थिक रूप से बिल्कुल मुश्किल में हैं, दुकान ठीक से नहीं चलती है, जहाँ हाथ लगाओ, तो वहीं पे बिगाड़ होता है। कोशिश तो बहुत कर रहे हैं, पुरुषार्थ तो बहुत कर रहे हैं, लेकिन दो जून का भोजन बामुश्किल मिल रहा है, आप कुछ बताओ तो। भैया, किसी से पूछने जाने की आवश्यकता नहीं है न कोई उसके लिये कुछ मदद कर सकता है। अगर कोई मदद कर सकता है, अगर कोई उपाय हो सकता है तो अपने परिणामों को ही अपन सँभाल लेवें तो हमारे अन्तराय कर्म आसानी से दूर हो जावें। जब सांसारिक चीजों में बाधा आती है तब भी आध्यात्मिक कर्म करने की सलाह दी गई है। अगर आध्यात्मिक कर्मों में बाधा आती है तब और अधिक आध्यात्मिक कर्म करने की सलाह दी जाती है। आचार्य महाराज कहते हैं कि देखो तो दुकान पर हर एक मिनिट के अन्दर सामान देने, उठाने, धरने हेतु सैकड़ों बार उठता है, एक व्यक्ति, और अगर उससे कहा जाये कि खड़े होकर पूजा करो तो कहता है पैरों में दर्द होता है। वाह भैया, अच्छे से बैठकर जाप करो तो कहते हैं नहीं ..... दर्द होता है, हम पाँच मिनिट से ज्यादा बैठ नहीं सकते इसके मायने है कि मैंने ऐसा खोटा कर्म बाँध लिया

है जो संसार को घटाने वाले कार्यों में बाधा डालता है। वो मुझे सलाह देता है, भीतर बैठा-बैठा। जैसा हमने अपना स्वभाव बना लिया होगा वर्तमान में, जिस चीज में हमें रुचि होगी वो चीज आसानी से हम कर पायेंगे। बाकी चीजों में मुश्किलें खड़ी होंगी। ये भी ध्यान रखना। ये मत समझना कि मुश्किलें हमारे पुराने कर्मों से ही खड़ी होती हैं। अपने वर्तमान के कर्मों से भी हम अपने जीवन में मुश्किलें खड़ी करते हैं। ऐसा मत समझना कि हम लापरवाही करें और कर्म को दोष देवें कि क्या करें। हमें बाधा पड़ रही है। जबकि सारे प्रयत्न करने के बाद, सारी सिचुऐशन फेवरेबल होने के बाद फिर काम बिगड़ जाता है तब फिर मानना पड़ेगा कि कोई ऐसा कर्म मेरे साथ जुड़ा हुआ है जो मुझे बाधा डाल रहा है। आज तक मुक्ति दिलाने वाला कोई कर्म नहीं हुआ। है कोई कर्म 148 कर्म प्रकृतियों में जिसके उदय में मुक्ति हो जाये। किसी ने पढ़ा हो तो बताओ । कर्मकाण्ड पढ़ने वाले तो बहुत होंगे यहाँ पर। नहीं, 148 कर्म प्रकृतियों में कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जिसके उदय में मुक्ति हो जाये ? तीर्थंकर प्रकृति का उदय भी हो तब भी बैठे रहो सबको उपदेश देवो, मगर मुक्ति नहीं हो सकती जब तक कि तीर्थंकर प्रकृति का उदय हो । हाँ कोई भी कर्म का उदय मुक्ति नहीं दिलाता, मुक्ति में बाधा जरूर डालता है कर्म का उदय। हम ये सोचें कि हमारी मुक्ति में कोई कर्म का उदय आयेगा। मुक्ति हमारे पुरुषार्थ से होगी, पुरुषार्थ में बाधा डाल सकता है कर्म। तब फिर मुझे क्या करना चाहिये ? जब बाधा डाल रहा है कर्म तब फिर मुझे ऐसा कर्म करना चाहिये जिससे कि इस बाधा को मैं दूर कर सकूँ। बस इतना सा ही उपाय है। अगर अन्तराय कर्म मेरे कामों में बाधा डालता है तो मैं फिर, मैं ऐसा काम करूँ जिससे कि मेरी वो बाधा दूर हो जावे। मैं ऐसी कामना करूँ जिससे कि और अधिक मेरे जीवन में बाधा न आ जावे ।

आचार्य भगवन्तों ने इस सूत्र के लिये व्यवस्था करते हुए अकलंक स्वामी ने तो बहुत सारी बातें लिखी हैं। पूज्यपाद स्वामी ने "विघ्नकरण अन्तराय" कहकर के, उमा स्वामी महाराज के सूत्र की व्याख्या कर दी कि भाई। दानादि जो कार्य हैं उसमें अगर हम बाधा डालते हैं तो हमारा कर्म बँधेगा अन्तराय कर्म और बाद में अगर हम दान, लाभ, भोग, और उपभोग इन सबके लिये जब प्रयत्न करेंगे तब हमारे लिये भी बाधा पड़ेगी और बात खत्म हो गई। अकलंक स्वामी के चरणों में जाकर के बैठे तो वो विस्तार रुचि शिष्यों के लिये समझाते हैं क्योंकि अलग-अलग आचार्यों का अपना अलग-अलग एप्रोच रहा। जो सूत्रों में सारी बात समझ लेते हैं, उमा स्वामी महाराज ने उन्हें सूत्र में कह दीं। थोड़ी सी व्याख्या में जो समझ लेते हैं पूज्यपाद स्वामी ने उन्हें थोड़ी सी व्याख्या करा दी और जो और डिटेल चाहते हैं तो अकलंक स्वामी का स्मरण करना होगा। आचार्य भगवन्तों का

नाम हमें याद रखना चाहिये। इनका उपकार हमारे ऊपर है, बहुत-बहुत उपकार है। बता रहे हैं कि दानादि में विघ्न डालने से स्वयं अन्तराय बँधता है, लेकिन इतना ही नहीं हमारे आगे भी दानादि में हमेशा अन्तराय आता है। दूसरे के दानादि में बाधा डाली है, हम निमित्त बने हैं अन्तराय में, तो आगे के लिये अन्तराय बाँध लेते हैं। उसके तो कर्म के उदय है आपके तो देने पर भी उसके लाभ नहीं हो पा रहा, लेकिन आप उसको नहीं देने का जो विचार कर रहे हैं, उसके दान इत्यादि में बाधक बन रहे हैं, वो आपके भी इसी तरह की सिचुएशन क्रिएट करेगा। ये दोनों चीजें एक साथ चलती हैं। कदम-कदम पर हम लोग दूसरों के दान, लाभ, भोग और उपभोग और वीर्य में बाधक बनते हैं। कदम-कदम पर संसार में, मैं आज विचार कर रहा था कि शायद हम लोग अन्तराय कर्म सबसे ज्यादा बाँधते होंगे। कदम-कदम पर अपने मन की करवाना दूसरे के लिये बाधा ही है। हाँ! अगर विचार करें। ऐसा करो, ऐसा नहीं करो। किसी के भी भले-बुरे के बीच में निमित्त बनना ही मत। चुपचाप रहना जहाँ तक हो सके। नहीं तो संसार ही बढ़ेगा। यहाँ तो सुबह से शाम तक गृहस्थी में इनको सलाह दो, उनको सलाह दो, तुम ये करो, तुम ये ना करो। ये अन्तराय अपने लिये बँधेगा। बहुत सूक्ष्म है मामला। अगर संसार से मुक्त होना है तो जितना कम हो सके संसार के प्रपंच में पड़ना चाहिये। अपने को सुबह-सुबह यही समझ में आया जब मैं विचार कर रहा था इन चीजों पे। लेकिन आपके मन में होगा कि बहुत प्रेक्टिकल नहीं है ये बात। बहुत प्रेक्टिकली पोसिबल नहीं है। बेटा जा रहा है कहीं। कहाँ जा रहे हो ? कोई जरूरत नहीं। हो गया अन्तराय, आपने बाँध लिया। भले ही वो बुरा करने जा रहा हो, आपका उससे कोई मतलब नहीं। बहुत मुश्किल है, बहुत मुश्किल है, कभी सोचना आप। भोग-उपभोग में भी बाधा नहीं डालना। अब क्या करूँ तो फिर ? तो फिर आप जिम्मेदारी दूसरे की काहे को ले रहे हैं ? आप काहे को मुश्किल में पड़ रहे हैं उसको जैसा करना है करने दो ?

एक पण्डित हीरालालजी थे कर्मकाण्ड के बड़े विद्वान। उन्होंने अपने बेटे को जगाना छोड़ दिया था। कहते हैं कि मैं काहे को बेकार में दर्शनावरणी कर्म का बंध करूँ ? तुम्हें सोना हो तो तुम जानो तुम्हारा काम जाने, जब उदय हो तब उठना। अरे तो वो दूसरे का अहित हो जाएगा, वो 10 बजे तक सोता रहेगा, तो कहते हैं हम अपना अहित क्यों करें उसको जगाकर के, हाँ वो अगर मुझसे कहे कि जगा देना तो जगाऊँगा, अन्यथा नहीं जगाऊँगा। हाँ बहुत, आचार्य महाराज आज्ञा नहीं देते, क्यों, अगर तुम मानो तो देऊँ नहीं मानो तो काहे को बेकार मैं व्यर्थ में इसमें बाधक बनूँ और अन्तराय मैं खुद बाँधूँ। जो आज्ञा माने उसके लिये, जो बात माने उसके लिये सलाह देना, वरना अन्तराय स्वयं

बँधेगा। इतना सूक्ष्म मामला है, बहुत विचार करने जैसी चीज है करियेगा विचार आराम से अपन ने तो थोड़ी सी बात कर ली है और फिर 24 घण्टे अपने पास पड़े हैं, जिन्दगी पड़ी हुई है जरूर से विचार करना चाहिये, चुपचाप शांत बैठकर के कि क्या कर रहा हूँ ? क्या कह रहे हैं कि किसी के सत्कार का निषेध करना। बताइये किसी को अगर कोई सत्कार दे रहा है तो उसका निषेध करना मन ही मन, करते हैं, बहुत करते हैं, अपन किसी को वाहवाही मिल रही है, किसी को प्रशंसा मिल रही है, कोई अवार्डेड हो रहा है। अपन बैठे-बैठे कोने में। अरे क्या धरा है इन चीजों में।

एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि महाराज देखो तो कैसा संसार है। बोले हम यहीं खड़े थे और बच्चे लोगों को अवार्ड हो रहा था और एक जनाब बोले, नाम नहीं बताऊँगा। इन सब चीजों में क्या रखा हुआ है ? इन सब चीजों का धर्म से क्या सम्बन्ध है, और दुनिया भर की बातें वो कह रहे हैं कि हमसे तो आपको बताते ही नहीं बन रहा है। वो ऐसा कह रहे थे तो मेरे मन में आया कि देखो, कोई व्यक्ति तो प्रसन्नता पा रहा है और किसी व्यक्ति को ते सम्मान हो रहा है लेकिन हमें ऐसा लग रहा है जैसे हमारा अपमान हो रहा है और उसके सत्कार में बाधा डाल रहे हैं। कल के दिन हम अपने अन्तराय का इन्तजाम कर रहे हैं बैठे-बैठे। ऐसे बढ़ता है संसार और कुछ नहीं, कोई संसार अलग से थोड़े ही बढ़ता होगा, अपने हाथ से हम स्वयं बढ़ा लेते हैं। धर्म के कार्यों में भी बढ़ा लेते हैं, अपना संसार। संसार के कार्यों में तो बढ़ता ही है संसार। ऐसा पढ़ा मैंने सत्कार का निषेध करना। सत्कार किसी का भी हो, एक छोटे से बेटे से भी आप, 'आप' करके बात करेंगे ये उसका सत्कार है और आप डाँट-डपटकर बात करेंगे, ये उसका अनादर है, उसको मिलना चाहिये सम्मान, आपने दिया उसे अपमान। आपने उसके सम्मान में, उसके सत्कार में बाधा डाली। हाँ बहुत कठिन है भैया, मैं आपसे कह रहा हूँ पर प्रेक्टिकली तो बहुत मुश्किल लग रहा है। मैं सबेरे से सोच रहा हूँ कि मैं सब कहूँगा जाकर के तो वो सब कह देंगे कि बिल्कुल पोसिबल नहीं है। मगर यह तो कदम-कदम पर होता है, इसीलिये तो संसार है। इसीलिये तो अपन बैठे हैं संसार में। नहीं तो अभी तक मुक्त नहीं हो जाते। यही होता है, नहीं सँभाल पाते, अपन क्योंकि आदत ऐसी पड़ गई है। कह रहे हैं स्वयं के पास जो वस्तुएँ हैं उनका त्याग करने की भावना नहीं होना। ये अन्तराय का बंध, बताओ किसी के उसमें बाधा नहीं डाली अपन ने सोचो, लेकिन जो चीज अपने पास है वो दूसरे को देने का मन नहीं बन रहा है, इसका मतलब लग रहा है आपके अन्तराय बँधेगा। कोई व्यक्ति अगर त्याग नहीं करे तो अन्तराय कर्म का निरन्तर बंध हो रहा है। ये ध्यान रखना, इसलिये बहुत लोग पूछते हैं कि हम तो रात में खाते ही नहीं हैं तो क्या जरूरी है कि हम

त्याग करें, हम तो वैसे ही नहीं खाते। आप भले ही नहीं खाते, अन्तराय का बंध निरन्तर हो रहा है। त्याग कितना कर सकते थे और त्याग नहीं किया, इसलिये निरन्तर अन्तराय का बंध हो रहा है, भले ही आप नहीं करते। बहुत सी चीजों को अपन नहीं करते लेकिन उनका त्याग करा कि नहीं अपन ने तो कह रहे हैं कि त्याग नहीं करा तो निरन्तर अन्तराय कर्म का बंध होता चला जाता है। बहुत सूक्ष्म है। दूसरे के वैभव को देखकर के विस्मृत होना। सम्यग्दृष्टि दूसरे के वैभव को देखकर के विस्मृत नहीं होगा। वो कहेगा पुण्य का फल है, ठीक है, बढ़िया है, विस्मृत होने की आवश्यकता नहीं है। विस्मृत होने से क्या होता है ? भीतर-भीतर, धीरे-धीरे करके उसके धन पैसे से ईर्ष्या जागृत होती है, फिर बाधा डालने की इच्छा होती है, इसलिये विस्मृत नहीं होना। मुनि महाराज भी जब अपनी तपस्या के फलस्वरूप किसी के वैभव को देखकर, नारायण इत्यादि के वैभव को देखकर विस्मृत होते हैं, मन में विचार आता है कि मुझे भी ऐसा मिले तो सारी तपस्या के फलस्वरूप इतना सा ही फल मिलकर के रह जाता है। जितने नारायण प्रति नारायण के जो पद हैं वे मुनि बन करके अत्यन्त तपस्या करने पर ऐसा निदान कर लेने पर प्राप्त होते हैं ये ध्यान रखना। ये वही है कि दूसरे का वैभव देखकर चकित मत होना, विस्मृत मत होना अन्यथा आप कल के दिन मन में वही चाहेंगे अपनी तपस्या के फलस्वरूप भी और ये अन्तराय के बंध का कारण है। बहुत मिल रही थी, इतनी सी ही मिलकर रह जाएगी। और कह रहे हैं त्याग करने के बाद उस चीज को पुनः ग्रहण करने का भाव हो जाना। भगवान् के सन्मुख जो भी हम भेंट स्वरूप चढ़ा देते हैं, मंत्र बोलकर के, उसको पुनः ग्रहण करने की भावना होना या ग्रहण कर लेना ये अन्तराय के बंध का कारण है। अर्थात् देवधन उस दिन अपन ने पढ़ा था अशुभ नाम कर्म के बंध के कारण में, भगवान् को जो अपन ने धार्मिक कार्य के लिये राशि भेंट की है, उसे रखना। देने में आनाकानी करना। साल भर बाद में दूँगा, ये सब निरन्तर अशुभ नाम कर्म और नीच गोत्र के बंध का कारण बनते हैं और जो सामग्री अपन ने भेंट स्वरूप, उपहारस्वरूप दे दी उसे पुनः ग्रहण करने का भाव हो जाना, काहे को दे दी हमारी है, देने के बाद भी हमारी है, हमने दी थी इनको। देखो तो गिफ्ट दे दी उसको। हमने उनको पेन दिया था, जब-जब उसके हाथ में पेन दिखा ये हमने दिया था इनको। अब बताओ आप अगर दिया था तो दे दिया अभी भी आपको उसके प्रति राग है और वो राग निरन्तर आपके अन्तराय का कारण बन रहा है। बहुत मुश्किल है। चीज़ देख कर अभी तक लगता है ये चीज मैंने दी थी। अभी तक उसके प्रतिराग भाव है वो राग भाव बंध का कारण बन रहा है। दे दी, त्याग कर दी, तो आचार्य भगवन्त वे कह रहे हैं दान की गई चीज के प्रति भी राग भाव ग्रहण करने का भाव बना रहे

तो अन्तराय कर्म बँधता है और इतना ही नहीं द्रव्य के उपयोग में समर्थ होने के बाद भी सदुपयोग नहीं करना, भले ही दुरुपयोग नहीं कर रहे किन्तु उन चीजों का जो हमें मिली हैं, पुण्य के उदय से वस्तुएँ उनका अगर सदुपयोग नहीं करेंगे तो आगे मिलेंगी नहीं, अन्तराय पड़ेगा।

फिर कह रहे हैं कि दूसरे की शक्ति का अपहरण कर लेना। कैसे, अब किसी की शक्ति का थोड़े ही अपहरण कर सकते हैं, अपन किसी की सामर्थ्य का। लेकिन सामर्थ्य का अपहरण कैसे करते हैं ? जैसे कर्ण की सामर्थ्य का अपहरण शब्द ने किया था सारथी बन के। डिसकरेज करना, डिसकरेज कर रहे हैं हमेशा उसको, जैसे ही अर्जुन का रथ सामने आता तो कर्ण का रथ सारथी मोड़ देता। कर्ण कहता कि अरे अर्जुन से सामना करवाओ। तू क्या करेगा, सामना, एक ही बार में मर जाएगा, इसलिये बचा रहा हूँ तेरे को। इतना डरा दिया उसको। ये भी स्वयं के अन्तराय में कारण है, अपन दूसरे को इस तरह से हतोत्साहित करते हैं। उसकी शक्ति को ऐसे छीन लेते हैं, उसकी सामर्थ्य होने के बावजूद भी हतोत्साहित कर देना। अपने बच्चों को अपने हाथ से हतोत्साहित करते हैं, पढ़ते-लिखते हो नहीं फेल होओगे, हो जाना, हमें क्या करना। ये यही कहते कि मेरा बेटा अभी कम पढ़ता-लिखता है, थोड़ा ज्यादा पढ़ेगा-लिखेगा तो देखना कितना होशियार हो जाएगा। पढ़ता-लिखता है ही नहीं, फेल होएगा और क्या एक बार अस्सी परसेन्ट आये थे, अस्सी में क्या होता, 90 प्रतिशत आयेंगे तब होगा। ये नहीं कहेंगे कि 80 आये, शाबास और मेहनत करेगा तो नब्बे आयेंगे। ये भाव कौनसा है, हतोत्साहित करने का है। दूसरे के सामने आप शिकायत कर रहे हैं ये उसका हतोत्साहित करने का काम है, उसे प्रोत्साहन नहीं मिलने वाला है उससे। छोटी-छोटी सी चीजों में आप दिन भर में देखेंगे अगर जो अपने मन का नहीं होता उसके लिये हम दूसरे को हतोत्साहित करते हैं, अरे क्या रखा है उसमें, छोड़ो, उसे क्या करना। अब उसका करने का मन था और आपने उसको हतोत्साहित कर दिया। हमारे अपने अन्तराय के बंध का कारण होगा और कह रहे हैं जो कुशल चारित्र वाले गुरुजन हैं, देवालय हैं उनकी पूजा का निषेध करना। क्या रखा है पूजा में, ये तो जड़ की क्रिया है, इस थाली से उठाकर उस थाली में रखने में कौनसा धर्म है ? अरे अपने परिणामों को सँभालो, पूजा पाठ में कुछ नहीं धरा। ऐसा प्ररूपण कर देना, ये अन्तराय कर्म का कारण है। रोज तो करते हो पूजा, क्या होता है ? आपने उसके पूजा की क्रिया में अन्तराय डाला। ये नहीं कहेंगे कि एक और कर लो। ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि आप समय का उल्लंघन करो, नहीं तो आप कहो कि धर्म के काम में क्या समय

देखना ? अब समय का ध्यान आ गया तो समय तो पूरा हो गया। दो चीजें और बाकी रहीं। दीन-दुखियों को कोई अगर मदद करता है, करुणा दान देता है तो कभी मना नहीं करना। कभी भी दूसरे को दीन-दुःखी की मदद करने से विचलित नहीं करना, आर्गूमेन्ट नहीं देना कि क्या होता है इन सबसे।

एक उदाहरण है जब सत्याग्रह हो रहा था देश में। गाँधीजी के नेतृत्व में तब सत्याग्रहियों के लिये एक वृद्ध बाबा रेल के डिब्बे में चढ़कर के थोड़ा-थोड़ा पैसा माँग रहे थे। तो एक कनस्तर में, खुला हुआ कनस्तर उसके अन्दर जो जितना भी देता था, डाल देता था उसी के अन्दर रसीद रखी थी कि बाबाजी को ज्यादा दिखता नहीं था भैया अपने हाथ से लिख दो, कितने रुपये, सत्याग्रहियों को दिये, पाँच रुपये दिये, पाँच की रसीद अपनी ले लो। उसी में रसीद बनती रहती, उसी में सब पैसा रखा रहता। एक चोर ने देख लिया कि ये तो बढ़िया चीज है, इतने सारे कनस्तर भर एक मिनिट में मिल जाएँगे। बाबाजी को क्या है ज्यादा दिखता भी नहीं है। एक धक्का देंगे सो काम हो जाएगा। अब उसको ये थोड़ी ही मालूम था कि ये पैसा किसलिये एक तो बाधक नहीं बनना चाहिये और बाधक बन जाये तो तुरन्त सँभाल लेना चाहिये कि भैया हमारा भाव ऐसा नहीं है, आपको जैसा करना है वैसा करो। हम क्यों बेकार में बाधक बनें आपके उसमें। छोटे-छोटे से कामों में। खाने-पीने या पहनने-ओढ़ने से लेकर के सब जितने काम होते हैं संसार के सब में। अब उसमें तो उसको देर क्या लगनी थी चोर को बाबाजी जरा यहाँ-वहाँ हुये कनस्तर उठा लिया और उतर गया वो तो ट्रेन में से। अब उसने जाकर के जब देखा तो वह पानी, देखी सत्याग्रह की। मन में बड़ी कचोट हुई अरे यह तो मैंने इतने भले काम में बाधा डाल दी इससे तो पूरे का पूरा इतना बड़ा कार्य ही रुक जाएगा। मुझे तो 100-500 रु. मिलेंगे लेकिन इतना बड़ा कार्य रुक जाएगा अब क्या करूँ ? भाग-दौड़ करके जैसे-तैसे उसी ट्रेन को उसने फिर पा लिया। उसी डिब्बे को ढूँढकर के उस बाबाजी के पास जाकर के वो कनस्तर ज्यों का त्यों धरा और इतना ही नहीं दिन भर में जो जितनी चोरी करी थी वो सब पैसे भी उसी में डाल दिये। आगे से कान पकड़े कि अब चोरी नहीं करूँगा। बताइये आप, कभी-कभी ऐसा कोई कार्य हमारे जीवन में हो जाता है भला कार्य जिससे कि हमारे जीवन के सारे बुरे कर्म भी नष्ट हो सकते हैं। हमें हमेशा इस तरह के कार्यों में, जो कि परोपकार के कार्य हैं उनमें तो बाधा कभी डालनी ही नहीं चाहिये और कभी कदाचित् परोपकार के कार्य में बाधा अपने से पड़ जावे तुरन्त सँभाल लेना चाहिए।

○○○